Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीसवीं शताब्दी : दो दशक

(पत्रपत्रिकाओं का साहित्यिक अवदान)

लेखिका

डॉ० (श्रीमती) कुसुम अग्रवाल

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिष्ठार्थं

पाणिनी महाविद्यालय के

पुस्तकालय को

[illegible]

पाणिनि-प्रज्ञा-आश्रम
लिपि.............
पुस्तक.............
भारती पुस्तकालय
12.54

पाणिनि कन्या महाविद्यालय
तुलसीपुर, वाराणसी-10 (उ.प्र.)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला—८४

बीसवीं शताब्दी : दो दशक

(पत्रपत्रिकाओं का साहित्यिक अवदान)

लेखिका

डॉ० (श्रीमती) कुसुम अग्रवाल

1244

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक
नागरीप्रचारिणी सभा
वाराणसी

प्रथम संस्करण
सं० २०३३
११०० प्रतियाँ

मूल्य १६-००

मुद्रक
नागरी मुद्रण, ना० प्र० सभा,
वाराणसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिथी............
पु०सं०..........
भारती
1244

प्रकाशकीय

नागरीप्रचारिणी सभा ने अपनी हिंदी की जिन ग्रंथमालाओं के द्वारा हिंदी को श्रीसंपन्न बनाने का प्रयत्न किया है उनमें नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला का विशिष्ट योगदान है। प्राचीन ग्रंथों के खोजकार्य का आरंभ होने पर खोज-विवरण के प्रकाशन के साथ ही हिंदी के विशेष लाभ की दृष्टि से सभा ने यह भी अनुभव किया कि खोज में प्राप्त चुने हुए ग्रंथों का प्रकाशन भी हो। उसने संवत् १९५७ वि० (सन् १९०० ई०) से इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये 'नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला' का प्रकाशन आरंभ किया। उस समय इसकी पृष्ठसंख्या ६४ और मूल्य आठ आने स्थिर किए गए। वर्ष में इसके चार अंकों के प्रकाशन का भी निश्चय किया गया था। संवत् १९७६ तक इस ग्रंथमाला के ६४ अंक प्रकाशित हुए। इस समय तक इस ग्रंथमाला के संपादक क्रमशः श्री राधाकृष्णदास (संवत् १९६१ तक), महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी (संवत् १९६५ तक), श्री माधवप्रसाद पाठक (संवत् १९६७ तक) और श्री श्यामसुंदरदास (संवत् १९७६ तक) थे। प्रांतीय सरकार ने इस ग्रंथमाला की उपयोगिता के कारण ३०० रु० वार्षिक की सहायता पाँच वर्षों के लिये संवत् १९६१ में देना स्वीकार किया। फलस्वरूप इसकी पृष्ठसंख्या ८० कर दी गई पर मूल्य आठ आने ही रहने दिया गया। इस ग्रंथमाला में पूरे ग्रंथों का प्रकाशन आरंभ हुआ। अलवर नरेश श्रीमंत महाराज सवाई जयसिंह ने इस ग्रंथमाला के लिये ६००० रु० सभा को प्रदान किया, तब से यह ग्रंथमाला निरंतर प्रकाशित हो रही है और हिंदी के भंडार को संपन्न कर रही है।

इस ग्रंथमाला में अब तक ८३ ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। पृथ्वीराजरासो जैसा वृहद् ग्रंथ सभा ने इसी माला में प्रकाशित किया। इसमें छपे अब निम्नांकित ग्रंथ ही प्राप्य हैं—

१. भक्तनामावली, २. हम्मीररासो, ३. भूषण ग्रंथावली, ४. जायसी ग्रंथावली, ५. तुलसी ग्रंथावली, ६. कबीर ग्रंथावली, ७. सूरसागर, ८. खुसरो की हिंदी कविता, ९. प्रेमसागर, १०. रानी केतकी की कहानी, ११. नासिकेतोपाख्यान, १२. कीर्तिलता, १३. हमीरहठ, १४. नंददास ग्रंथावली, १५. रत्नाकर, १६. रीतिकालीन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवियों की प्रेमव्यंजना, १७. हिंदी टाइपराइटिंग, १८. हिंदी साहित्य का इतिहास, १९. घनानंद : स्वच्छंद काव्यधारा, २०. प्रतापनारायण ग्रंथावली २१. तुलसीदास, २२. हिंदी में मुक्तक काव्य का विकास, २३. रसरतन, २४. नाटक के तत्व : मनोवैज्ञानिक अध्ययन, २५. खालिकबारी, २६. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त खोज विवरण (१९००–१९५५ ई०), २७. तोष और सुधानिधि, २८. द्विजदेव और उनका काव्य, २९. नाटक और यथार्थवाद ३०. उग्र और उनका साहित्य, ३१. भोंसला राजदरबार के हिंदी कवि, ३२. आचार्य शुक्ल के समीक्षासिद्धांत, ३३. कृपाराम और उनका साहित्य, ३४. बिलग्राम के मुसलमान हिंदी कवि, ३५. चिंतामणि, ३६. लक्षदासकृत कृष्ण-रससागर, ३७. विडंबना, ३८. वेदांत दर्शन, ३९. हिंदी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक, ४०. हिंदी और फारसी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, ४१. फ्रेडरिक पिंकाट, ४२. हित चौरासी और उसकी प्रेमदास कृत ब्रजभाषा टीका, ४३. मधुस्रोत, ४४. भारतेंदु की खड़ी बोली का भाषाविश्लेषण, ४५. क्रोचे का कला दर्शन, ४६. आधुनिक हिंदी काव्य पर अरविंद दर्शन का प्रभाव तथा ४७. घनानंद का काव्यशिल्प। प्रस्तुत कृति इस ग्रंथमाला में प्रकाशित होनेवाला ८४वाँ पुष्प है।

इसमें लेखिका द्वारा मुख्यतः सन् १९०१–२० में प्रकाशित पत्रपत्रिकाओं के आधार पर किया गया हिंदी की विविध विधाओं का बड़े श्रम और अध्यवसाय के साथ शोधात्मक सर्वेक्षण है। इस कालखंड का हिंदी साहित्य के इतिहास में अपना विशिष्ट महत्व है, जिसमें पत्रपत्रिकाओं की भूमिका प्रमुख रही है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, रेखाचित्र और आलोचना आदि का जो विवेचन इस ग्रंथ में किया गया है, उसमें लेखिका की पैनी दृष्टि, तथ्यग्रहण के प्रति जिज्ञासु आग्रह और व्यर्थ विस्तार से बचकर समाहार शैली में गंभीर मीमांसा स्पष्ट लक्षित है। इन गुणों के कारण ही परीक्षकों ने इसपर उन्हें 'पी-एच० डी०' उपाधि से संमानित किया है। साहित्यजगत के समक्ष यह ग्रंथ प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है। विश्वास है, हिंदी साहित्य के अनुरागी इस ग्रंथ का उचित समालोचन और मूल्यांकन करेंगे।

प्रबोधिनी एकादशी,
सं० २०३३ वि०

करुणापति त्रिपाठी
प्रकाशन मंत्री
नागरीप्रचारिणी सभा,
काशी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसंधान
तिथी..........
पु०सं०..........
भारती
1244

आशंसा

डा० (श्रीमती) कुसुम अग्रवाल ने 'बीसवीं शताब्दी : दो दशक (पत्रपत्रिकाओं का साहित्यिक अवदान)' नामक इस शोधप्रबंध में इस काल के साहित्यिक विकास को पत्रपत्रिकाओं के माध्यम से दिखाने का बड़ा उत्तम प्रयास किया है। बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दो दशकों का हिंदी साहित्य मुख्य रूप से पत्रपत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ है और पुस्तक रूप में प्रकाशित साहित्य की आलोचनात्मक सामग्री भी इन्हीं पत्रपत्रिकाओं में प्रकाशित हुई है। मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि डा० (श्रीमती) कुसुम अग्रवाल ने उस समय की पत्रपत्रिकाओं का बड़े परिश्रम से अध्ययन करके यह शोधप्रबंध लिखा है। इसपर उन्हें पटना विश्वविद्यालय से 'डाक्टर ऑव फिलासफी' की उपाधि भी प्राप्त हो चुकी है। यह पुस्तक प्रकाशित होकर सहृदय पाठकों के सामने जा रही है। मेरी हार्दिक शुभकामना है कि डा० (श्रीमती) कुसुम अग्रवाल का यह प्रयत्न, जो उनकी प्रारंभिक रचना के रूप में प्रकाशित हो रहा है, हिंदी साहित्य के शोध विद्यार्थियों के लिये प्रेरणादायक सिद्ध हो।

२५।११।७६ हजारीप्रसाद द्विवेदी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरोवाक्

आधुनिक हिंदी साहित्य की मूल प्रवृत्ति का निर्माण बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशकों में ही हुआ है। साहित्यकारों ने इस युग को द्विवेदी युग की संज्ञा दी है। पर हमारे सामने द्विविधा है कि हम युग को छोटा करें या व्यक्ति विशेष को। आज तक इतिहासकारों की दृष्टि में व्यक्ति विशेष का ही महत्व था, पर उस काल की पत्र-पत्रिकाओं के अध्ययन तथा अनुशीलन ने एक नई दृष्टि दी और युग का ही अधिक महत्व दिखलाई पड़ा। इस अवधि में हिंदो जिस सर्वतोमुखी विकास की ओर अग्रसर हुई, उसमें इस काल की पत्रकारिता का बहुत बड़ा योगदान है, क्योंकि इस काल के प्रमुख कवियों तथा लेखकों का परिचय इन्हीं पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ। यही नहीं, गद्य की अनेक विधाओं के विकास में इनका अपूर्व योगदान है। कहानी ने तो इन्हीं पत्रिकाओं के माध्यम से बचपन से प्रौढ़ता तक की मंजिल पूरी की। कविता ने द्विवेदी युग को इतिवृत्तात्मक रचनाओं से छायावाद के सोपान तक पहुँचने के लिए इन्हीं पत्रिकाओं का सहारा लिया क्योंकि पत्रिकारिता का अंग होने के कारण इनके लिये स्वतंत्र रूप से व्यावसायिकता की कसौटी का सामना करने की कोई अनिवार्यता नहीं थी। विविध-विषय-समन्वित पत्रिका के अतिरिक्त इस काल में कुछ विशिष्टीकरणवाली पत्रिकाएँ भी निकलीं। इनका भी अपने क्षेत्र में महत्व है। कुछ लोग 'सरस्वती', 'इन्दु', 'मर्यादा', 'प्रभा' आदि पत्रिकाओं का ही महत्व स्वीकार करते हैं, पर पत्रिकाओं के विश्लेषण से इस निर्धारित स्थापना का निरसन होता है। इन दो दशकों की पत्रिकाओं के तटस्थ अनुशीलन से यह बात स्पष्ट है कि इनके सम्मिलित प्रयास से ही हिंदो साहित्य का नया उत्कर्ष हुआ।

इन पत्रिकाओं का पुनर्परीक्षण करते समय मैंने विरोध की अपेक्षा विकास के सूत्रों पर अधिक ध्यान दिया। मैंने 'सरस्वती' की संचिकाओं में जो कुछ था उसके पीछे आचार्य द्विवेदी का जैसा घोर परिश्रम था उसे स्वीकार करते हुए अन्य उपेक्षित पत्रिकाओं का भी सम्यक् अनुशीलन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। इस युग को अब तक नीतिवादी और इतिवृत्तात्मक कहा गया है। इसमें पौराणिकता की ओर रुझान की प्रधानता बतलाई गई है। भाषा-शैली की रुक्षता, तथ्यवादिता और परोन्मुखी दृष्टि को भी महत्वपूर्ण कहा गया है। लोग इसे भावों की प्रवलता का युग मानने को तैयार नहीं हैं। उनका कथन है कि यह ज्ञानसंपादन और सतर्क अभिव्यक्ति का युग है। इसमें क्लासिकल युग होने की क्षमता नहीं है। इन पत्रिकाओं में मुझे आधुनिक चेतना के विकास के सूत्र मिले जिसकी नये सिरे से स्थापना करने का मैंने प्रस्तुत प्रवंध में प्रयास किया है।

मेरी पहली प्रणति और कृतज्ञता सम्मान्य श्री सुधाकर जी पाण्डेय के प्रति है, जिनके मन में प्रस्तुत प्रवन्ध की योजना उदित हुई और जिसकी क्रियान्विति में अपनी व्यस्तता के बीच समय निकालकर उन्होंने यथासमय मुझे सहयोग प्रदान कर मेरे मार्ग की कठिनाई दूर की।

डा० गोपाल राय (प्रवक्ता, पटना यूनिवर्सिटी) निर्देशन का दायित्व लेकर समय-समय पर सूक्ष्म निर्देशन द्वारा मुझे प्रेरणा प्रदान करते रहे। उसके जिए मैं उनकी हृदय से आभारी हूँ।

शोध कार्य का संशोधन अत्यन्त श्रमसाध्य कार्य है। डॉ० शुकदेव सिंह (हिंदो विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय) ने संपूर्ण कार्य का अवलोकन करने के पश्चात् आवश्यक परिवर्तन तथा परिवर्द्धन कर उसे जो पूर्णता प्रदान की उसके लिए मैं उनकी हृदय से आभारी हूँ।

भारत कलाभवन, काशी; नागरीप्रचारिणी सभा, काशी; बड़ाबाजार पुस्तकालय, कलकत्ता; पटल जी का पुस्तकालय, कलकत्ता; चैतन्य पुस्तकालय; पटना और साहित्य संमेलन पुस्तकालय, इलाहाबाद के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जहाँ बैठकर मुझे सामग्री संकलन करने की सुविधा मिली।

प्रबन्ध का प्रस्तुत रूप निर्माणाधीन अन्वेषण का परिणत स्वरूप है। मेरे निष्कर्षों से अनेक ऐतिहासिक स्थापनाओं पर असर पड़ा है, जानती हूँ। मैं अपने पूर्वज अन्वेषकों-विश्लेषकों के प्रति पूर्णतः विनम्र हूँ। मेरे स्वयं के निष्कर्ष भी कटते चले जायेंगे। प्रभूत सामग्री न मिलनेवाले में अंशों में ऐसी संभावनाएँ तो हैं ही। इसलिये अपने निष्कर्षों के विषय में इदमित्थम् जैसा कोई आग्रह मेरा नहीं है। संकेत और सुझाव का बराबर स्वागत है और मैं प्रणतिपूर्वक नए सुझावों की प्रतीक्षा में हूँ।

—(श्रीमती) कुसुम अग्रवाल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयक्रम

		पृष्ठसंख्या
पुरोवाक्		आरंभ में
प्रास्ताविक :	(रचनात्मक पत्र-पत्रिकाओं का वृत्त विश्लेषण)	१-४५
प्रथम अध्याय :	पत्रपत्रिकाओं में हिंदी कविता	४६-७२
द्वितीय अध्याय :	कहानी का अभ्युदय : पत्रपत्रिकाओं की भूमिका	७३-१०१
तृतीय अध्याय :	रचनात्मक निबन्ध : पत्रपत्रिकाओं के संदर्भ	१०२-१२३
चतुर्थ अध्याय :	रेखाचित्र का साहित्यिक स्वरूप और पत्रपत्रिकाएँ	१२४-१३२
पंचम अध्याय :	आलोचना का विकास : पत्रपत्रिकाओं का योग	१३३-१५६
षष्ठ अध्याय :	उपन्यास विधा और पत्रपत्रिकाओं का जगत्	१५७-१७४
सप्तम अध्याय :	नाटक की पठनीयता में पत्रपत्रिकाओं का सर्जन	१७५-१९१
अष्टम अध्याय :	उपसंहार	१९२-१९७
परिशिष्ट :	सहायक साहित्य	१९८-२०२
	क—पत्र	
	ख—पत्रिकाएँ	
	ग—पुस्तकें	

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रास्ताविक

रचनात्मक पत्रपत्रिकाओं का वृत्त विश्लेषण

०.१.१ सन् १९०० से १९२० तक के काल को एक विशिष्ट साहित्यिक युग की संज्ञा दी जा सकती है। इस युग को नीतिवादी और इतिवृत्तात्मकता प्रधान कहा गया है। उसमें पौराणिकता की ओर रुझान की प्रधानता बतलाई गई है। भाषा शैली की रूक्षता, तथ्यवादिता और परोन्मुखी दृष्टि को भी महत्वपूर्ण कहा गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन लोगों के अनुसार यह युग भावों की प्रबलता का युग नहीं है। यह ज्ञानसंपादन और सतर्क अभिव्यक्ति का युग है। उसमें क्लासिकल युग होने की क्षमता नहीं है परंतु मर्यादा, औचित्य तथा रचनासौष्ठव पर विशेष ध्यान है। इस युग की पत्रपत्रिकाओं के प्रत्येक अंक में हमें आधुनिक साहित्यिक चेतना के विकास के सूत्र मिलेंगे। अनंत संभावनाओं के बीज हमें जिस युग में मिलते हैं उसे अभिनंदनीय ही कहा जायगा। इस युग के पूर्व हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति बड़ी दयनीय थी। प्रथम तो उसके पाठक ही अत्यल्प थे, क्योंकि हिंदी भाषा तबतक उनकी रोटी रोजी से नहीं जुड़ी थी। हिंदी पढ़ने की ओर उनका झुकाव नहीं था। दूसरे, पराधीन देश की पत्र-पत्रिकाओं पर शासक वर्ग का बड़ा नियंत्रण था। फलतः स्वतंत्रतापूर्वक सामयिक समाचार या विचार की अभिव्यक्ति का अभाव था, जो उस समय की नवजागृत चेतना की माँग थी। तीसरे, अधिकांश जनता का अशिक्षित होना भी एक कारण था, दूसरी तरफ शिक्षित जनता अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा पाकर उसके ताने बाने से इस प्रकार बुन दी जाती थी कि हिंदी पढ़ना उनके लिए हीनता का द्योतक हो जाता था। अधिकांश पत्र चार पाँच वर्ष जीवन ढोकर समाप्त हो जाते थे, जब कि उनका मूल्य अत्यंत अल्प होता था। करोड़ों जन समुदाय वाले इस विशाल देश की जनता के मध्य उनकी तीन सौ प्रतियाँ भी बड़ी कठिनाई से बिकती थीं। खरीदने वाले को उसका उतना अल्प मल्य देना भी भारी था; जैसा 'ब्राह्मण' पत्रिका के संपादक प्रतापनारायण मिश्र के इन शब्दों से व्यक्त होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आठ मास बीते जजमान, अब तो करो दच्छिना दान'। 'अबला हितकारक' के संपादकीय में भी यही ध्वनि मिलती है—

'जब से इस पत्र ने सचित्र रूप धारण किया है बराबर चित्र नहीं दे सका। इसके दो विशेष कारण हैं। प्रथम ग्राहकों की लापरवाही अर्थात् अस्वीकृति की सूचना न देना और वी० पी० जाने पर लौटाकर वृथा हानि पहुँचाना[1]। (संपादकीय वक्तव्यं)

०.१.२ इस काल के अनेक पत्रों की संपादकीय टिप्पणियाँ इस प्रकार पाठकों की उदासीनता का दुखड़ा रोती दिखाई देती हैं। यथा 'सार सुधानिधि' की संपादकीय टिप्पणी देखिए—

'अनेक ग्राहक 'सारसुधानिधि' का दाम भेजना भूल गये, और उन लोगों ने हम लोगों को अपदस्थ करने में कसर नहीं रक्खी, क्योंकि कई सूचना और विशेष सूचना दे देकर ग्राहकों को चैतन्य किया वरन् उनमें से बहुतों को चिट्ठी भेजी परंतु उनको क्या थोड़ा सा देना कहीं याद हो सकता है?'[2]

०.१.३ इस युग के प्रमुख साप्ताहिक 'भारतमित्र', 'हिंदी बंगवासी', 'हिन्दवार्ता', 'श्री वेंकटेश्वर समाचार', 'विहार बंधु', 'भारत जीवन' थे। 'हिंदोस्तान' एक दैनिक पत्र था, जो उस समय प्रकाशित होता था। 'छत्तीसगढ़ मित्र', 'सुदर्शन', 'ब्राह्मण' तथा 'हिंदी प्रदीप' उस काल के मासिक पत्र थे। समस्यापूर्तियों के लिए उस काल में 'रसिक वाटिका' थी। इन सब पत्रों में भारतेंदु शैली की प्रधानता थी। भाषा और विषय दोनों ही दृष्टियों से इसमें एक स्वच्छंदता थी। 'साहित्य' के मूल संस्कार का इनमें प्रायः अभाव रहता था। लेखों में किसी रुचि विशेष का परिचय नहीं मिलता था। शैलियों में व्यक्तित्व का अभाव था। पत्र में वस्तु स्थापन तथा क्रम आयोजन में भी कोई सौंदर्य कल्पना नहीं थी। व्यवस्था में सुरुचि देखने को नहीं मिलती। विषय सीमित थे। फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि इस पीढ़ी का हिंदी साहित्य को कोई योगदान ही नहीं है। वस्तुतः युग का सच्चा स्वरूप उन दो पीढ़ियों को लेकर ही बनता है जो एक दूसरे का हाथ थाम कर चलती हैं। इस युग से ही आगे बढ़ने और

---

१. 'अबला हितकारक', मई, १९१२, पृ० ३।

२. 'सारसुधानिधि'।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ाने का प्रोत्साहन मिलने लगता हैं। विविधता की ओर प्रयास के साथ ही अपनी बात कहने की लालसा भी परिलक्षित होती है। और इन सबके साथ एक चुहल की भावना है जो इस काल की प्राणशक्ति है। यथा–

'जापान में एक ८० वर्ष के मनुष्य ने ३६ बार विवाह किया और ३५ स्त्रियों को छोड़ दिया। शाबास, कार्तिकी कूकुर से भी बढ़ गए।'[१]

'गत परसों, बकराईद की रात को यहाँ के एक मुसलमान ने अपनी बीबी को कुठार से मार डाला। मीमाइन की एक मुसलमान से यारी थी। बकराईद की मुबारक रात थी। आशिक माशूक एक चारपाई पर बहार करते थे कि बाहर सगा खतम भी आ हाजिर हुआ। भला किस पर सहा जाय। मीमा कुल्हाड़ी लेकर दौड़ा। आशिक तो भाग गये पर माशूक का किया इश्क ने काम आखिर तमाम।'[२]

साहित्यिक शैली की उस जिंदादिली ने आगे आने वाली पीढ़ी को सामाजिकता का जीवित संपर्क सिखलाया ही साथ ही कथा लेखन की शैली भी दी। तात्कालीन पाठक चेहरे पर दो इंच की मुसकान से लाभान्वित हुआ अलग।

०.१.४ बीसवीं शताब्दी की पत्रकारिता पर दृष्टिपात करते समय जो बात सबसे पहले आकर्षित करती है वह है युग का राष्ट्रीय जागरण। इस शताब्दी में धर्म और समाज सुधार के आंदोलन कुछ पीछे पड़ गए और जातीय चेतना ने धीरे धीरे राष्ट्रीय चेतना का रूप ग्रहण कर लिया। फलतः अधिकांश पत्र साहित्य और राजनीति को ही लेकर चले। इस समय विदेशी सत्ता से संत्रस्त जनता कांग्रेस के नेतृत्व में स्वशासन की माँग करने लगी थी। 'बायकाट' और 'स्वदेशी' की नीतियों के द्वारा विदेशी सत्ता का परोक्ष विरोध भी किया जाने लगा था। ऐसे समय जनता की समाचार तत्व की पिपासा का जागृत होना सहज ही था। ऐसी स्थिति में जातीय पत्र तथा भाषा जो भूमिका निभा सकते थे वह कर सकने में असफल रहे। इसका सबसे बड़ा कारण था शिक्षित वर्ग का अंग्रेजी की ओर झुकाव, क्योंकि अंग्रेजी उच्च शिक्षा की माध्यम थी। इसके अतिरिक्त हिंदी पत्रों के पास ऐसे साधन भी नहीं थे कि वे अंग्रेजी पत्रों

१. 'भारतवर्ष', दिसंबर, १९८०।
२. 'भारतवर्ष', अगस्त, १८८२।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ही भाँति शीघ्रतापूर्वक समाचार मँगाकर छाप सकें। अतः सामयिकता के क्षेत्र में गौण स्थान हो जाने के कारण अधिकांश हिंदी पत्र साहित्यिक प्रयासों की ओर उन्मुख हुए। उस समय पत्रकारिता का जो रूप था उसमें मासिक पत्र ही महत्वपूर्ण थे। साप्ताहिकों की संख्या बहुत कम हो गई थी।

०.१.५ इन बीस वर्षों की अवधि में लगभग बीस हिंदी दैनिक समाचार पत्र निकले, पर इनमें अधिकतर पत्रों का जीवन बड़ा अल्प था। कुछ दैनिक तो केवल महासमर के कारण लोगों की तत्कालीन समाचार-पिपासा-तृप्ति हेतु ही दैनिक बने। महासमर के पश्चात् उनका जीवन या तो समाप्त हो गया या वे मासिक या साप्ताहिक में परिणत हो गए। यथा—'अभ्युदय', 'भारतजीवन', 'श्री वेंकटेश्वर समाचार', 'जयाजी' 'प्रताप', 'आनंद' आदि। 'आज', 'वर्तमान', 'दैनिक प्रताप', 'भविष्य', 'विजय' आदि तो सन् १९२० में निकले, जिनमें 'आज' ही ऐसा पत्र है जो आज तक पूरे यश के साथ हिंदी साहित्य जगत् की सेवा कर रहा है।

०.१.६ 'सिपाही' (१९०३), 'राजस्थान समाचार' (१९०४), 'हिंदोस्थान' (१९०८), 'भारतमित्र' (१९१२), 'हिंदी विहारी' (१९१३) 'कानपुर गजट' (१९१३), 'कलकत्ता समाचार' (१९१४), भी दैनिक रूप में निकले पर इनमें कोई भी दीर्घजीवी न हो सके। इन दिनों समाचार मँगाने की कोई व्यवस्था नहीं थीं, फलतः अधिकतर पत्र अपने समाचार के लिये अंग्रेजी के पत्रों पर ही अवलंबित थे। समाचारपत्र की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह विलंब नहीं सह सकता। हिंदी पत्रों के पास ऐसे साधन नहीं थे कि वे अंग्रेजी पत्रों की ही भाँति शीघ्रतापूर्वक समाचार मँगाकर छाप सकें। पहले की बात और थी जब अंग्रेजी पत्र बहुधा सुलभ नहीं थे। साथ ही अंग्रेजी शिक्षा का उतना प्रसार न था। अब परिस्थिति विपरीत थी। नए शिक्षित वर्ग को अपनी उच्च शिक्षा की भाषा अंग्रेजी में समाचार मिलने लगे थे। अतः ऐसे समय दैनिक निकालना बड़े परिश्रम तथा साहस का कार्य था। दैनिक निकालने के लिये संपादक विचारा किस तरह सहायक विहीन होकर अथक परिश्रम करता था इसका एक चित्र अंबिकाप्रसाद वाजपेयी के शब्दों में ही देखिए—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दैनिक पत्र के लिये कई सहकारियों की आवश्यकता होती है। पर सहकारी एकमात्र पं० वसुदेव मिश्र थे। दिसंबर में दिल्ली दरबार हुआ था और ये इन्हीं दिनों छुट्टी पर काशी चले गए। लाख समझाने पर भी इनकी समझ में नहीं आया कि बाद को छुट्टी ले लें। इनकी अनुपस्थिति में क्या कठिनाई हुई वह भुक्तभोगी के सिवा कोई जान नहीं सकता। मित्रों के परामर्श पर हमने गया के कृष्णराव जी को रखा। परंतु इनका व्यवसाय काशी को सुरती की फेरी करना था और जिस समय भारतमित्र आफिस में काम होता था, प्राय: वही समय इनकी फेरी का भी होता था। फिर भी अभाव की कुछ भी पूर्ति इनसे नहीं हुई यह नहीं कहा जा सकता।

'भारतमित्र आफिस में ही मेरा बिछौना बिछ जाता था, पर सोने को कम मिलता था। स्वास्थ्य बिगड़ने लगा, तथा सोचा गया कि कलकत्ते से बादशाह के विदा होते ही दैनिक संस्करण बंद कर दिया जाय। तदनुसार कोई दो महीने दैनिक चलाकर १७ जनवरी १९१२ से बंद कर दिया गया।'[1]

'सरस्वती' (१९०० ई०)

०. २. १ हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का यह संकटकाल था। उसका समाचार पक्ष अंग्रेजी के समक्ष गौण होता ही जा रहा था, साहित्यपक्ष भी निर्बल न हो जाय इसके लिये सजगता की आवश्यकता थी। ऐसे समय हिंदी साहित्यजगत् में सरस्वती का आविर्भाव इंडियन प्रेस के अध्यक्ष श्री चिंतामणि घोष के संपादकत्व में सन् १९०० में मासिक रूप में हुआ। इसके उद्देश्य तथा विषय के संबंध में प्रारंभ में ही पत्रिका में लिखा हुआ है—

'इसके नवजीवन धारण करने का केवल यही मुख्य उद्देश्य है कि 'हिंदी रसिकों के मनोरंजन के साथ ही साथ भाषा के सरस्वती भंडार की अंगपुष्टि, वृद्धि और यथार्थ पूर्ति हो, तथा भाषा सुलेखकों की ललित लेखनी उत्साहित और उत्तेजित होकर विविध भाव भरित ग्रंथराजि को प्रसव करे।'

'इस पत्रिका में कौन कौन से विषय रहेंगे, यह केवल इसी से

---

१. 'समाचार पत्रों का इतिहास', अंबिकाप्रसाद वाजपेयी, पृ० ३३६।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुमान करना चाहिए कि इसका नाम सरस्वती है। इसमें गद्य, पद्य, काव्य, नाटक, उपन्यास, चंपू, इतिहास, जीवन चरित, पंच, हास्य, परिहास, कौतुक, पुरावृत्त, विज्ञान, शिल्प, कलाकौशल आदि साहित्य के यावत् विषयो का यथावकाश समावेश रहेगा और आगत ग्रंथादि की यथोचित समालोचना की जायगी।

०. २. २ इससे स्पष्ट है कि सरस्वती का उद्देश्य बड़ा व्यापक था। वह संकुचित अर्थ में साहित्यिक पत्रिका नहीं थी। हिंदी के सभी अंगों को पुष्ट करके पाठकों में साहित्यिक अभिरुचि संपन्न करने के साथ ही उन्हें आधुनिक और प्राचीन ज्ञान-विज्ञान संबंधी लेख देकर ज्ञानवर्द्धन करना उसका उद्देश्य था। इसमें एक ओर संस्कृत के महाकवि भारवि और प्राचीन एथेंस के वाग्मी पैरिक्लीज पर लेख थे, तो दूसरी ओर डा० जानसन की उत्तरी ध्रुव यात्रा का वर्णन भी था। फोटोग्राफी, रेलगाड़ी और जंतुओं की सृष्टि पर लेख के साथ ही भारतवर्ष की पुरानी इमारतों, लंका, नागरी अक्षरों आदि पर ज्ञानवर्द्धक लेख थे।

०. २. ३ किंतु उसका सबसे महत्वपूर्ण अंग साहित्यिक लेखों का था। 'हमीरहठ' और 'पं० श्रीधर पाठक की कविता' आधुनिक प्रणाली की समालोचन के हिंदी पत्रों में पहले लेख थे। इसी प्रकार हिंदी में गंभीर साहित्यिक विवाद का श्रीगणेश 'नैषध चरित चर्चा और सुदर्शन' से होता है। प्रसिद्ध विद्वान और अपने समय के शीर्षलेखक पं० माधवप्रसाद मिश्र 'सुदर्शन' के संपादक थे। नैषधचरित की उन्होंने समालोचना की थी, उसी का यह उत्तर था। कविताओं से तत्कालीन रुचि का पता लगता है। अधिकांश कविताएँ प्रकृति से संबंधित हैं। कुछ संस्कृत कविताओं के अनुवाद हैं, किंतु उस व्रजभाषा के युग में भी सरस्वती ने प्रथम वर्ष ही में खड़ी बोली में तीन चार कविताएँ प्रकाशित कीं, और आश्चर्य की बात तो यह है कि सरस्वती में पहली खड़ी बोली की कविता व्रजभाषा के कवि पं० किशोरीलाल गोस्वामी की लिखी हुई थी। दूसरी खड़ीबोली की कविता पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की है। अतएव कविता के क्षेत्र में प्रथम वर्ष से ही सरस्वती ने खड़ीबोली की कविता की, जब कविता में व्रजभाषा की ही प्रधानता थी, प्रोत्साहन देना आरंभ किया। उन दिनों पत्रों में खड़ी बोली की कविता यदाकदा ही छपती थी। नागरी लिपि और हिंदी का प्रचार और प्रसार भी आरंभ ही से सरस्वती का एक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्येय रहा है। नागरी अक्षरों पर एक विद्वत्तापूर्ण लेख तो उसने प्रथम वर्ष में ही प्रकाशित किया। भारतेंदु, राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह के जीवन चरित्रों को प्रकाशित कर हिंदी आंदोलन के प्रमुख व्यक्तियों और साहित्य निर्माताओं के चरित्र वर्णन द्वारा प्रकारांतर से, उसने हिंदी आंदोलन की ओर पाठकों का ध्यान दिलाया।

०.२.४ संपादन और प्रकाशित सामग्री के उच्च स्तर का होते हुए भी आरंभ में सरस्वती को हिंदीजगत से उत्साहवर्द्धक समर्थन नहीं मिला। प्रकाशक को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पर इतना होने पर भी प्रथम तीन वर्षों में ही सरस्वती ने हिंदी संसार में अपना स्थान बना लिया था। उस समय वह हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका मानी जाने लगी थी। उसकी छपाई, सफाई चित्र और अलंकार बेजोड़ थे। लेखों की विविधता और उपादेयता स्वीकार की जा चुकी थी। उस समय के उत्तर प्रदेश और बिहार के अधिकांश प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित हिंदी लेखक उसके साथ सहयोग करने लगे थे। ऐसे समय सन् १९०३ में सरस्वती की कमान महावीरप्रसाद द्विवेदी के हाथों में आई। आरंभ में द्विवेदी जी को अनेक कठिनाइयों का सामान करना पड़ा। पर धीरे धीरे उन्होंने सरस्वती के लेखकों का एक मंडल बना लिया जिसमें विविध विषयों के विशेषज्ञ थे। द्विवेदी जी सर्वदा नई प्रतिभाओं की खोज में रहते थे। वे नये और होनहार साहित्य प्रेमी युवकों को हिंदी में लिखने को प्रोत्साहित करने लगे। वे उनसे लेख लिखवाते, किंतु उनकी भाषा उनके मन की नहीं होती तो उसे फिर से लिख देते थे। प्रसिद्ध व्यक्तियों से सरस्वती में लिखने का आग्रह करते थे।

०.२.५ द्विवेदी जी के साहित्यिक विवादों ने तत्कालीन हिंदी साहित्यिक जगत में एक जीवन उत्पन्न कर दिया था। 'कालिदास की निरंकुशता', 'भाषा की अनस्थिरता' आदि ऐसे विवाद थे जिनसे साहित्यिक क्षेत्रों में चहल-पहल ही नहीं हुई, इनसे लोगों को साहित्यिक समस्याओं पर स्वतंत्र विचार करने तथा दोनों पक्षों के तर्कों का मूल्यांकन करने की भी आदत पड़ गई और इसका स्थायी परिणाम बहुत शुभ हुआ।

०.२.६ भाषा के परिष्कार के क्षेत्र में भी सरस्वती ने बहुत बड़ा कार्य किया। इसके पूर्व भाषा में एकरूपता नहीं थी। व्याकरण की बड़ी शिथिलता थी। द्विवेदी जी ने सरस्वती द्वारा इसका बड़ा विरोध किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती का प्रभाव इतना बढ़ चुका था कि उसके प्रचलित रूपों का प्रचलन हिंदी क्षेत्र में मान्य हो जाता था।

भाषा की एकरूपता के साथ साथ खड़ी बोली की पुष्टि भी सरस्वती की एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। इसके द्वारा आधुनिक खड़ीबोली की कविता को प्रतिष्ठा ही नहीं प्राप्त हुई, उसका आशातीत प्रचार भी हुआ। हिंदी के कितने ही कवियों ने, जो आज हमारे मूर्धन्य कवि माने जाते हैं, इसी के प्रोत्साहन से ही अपनी काव्य साधना में सफलता प्राप्त की। खड़ीबोली कविता का पूरा विकास सरस्वती के अंकों में देखा जा सकता है। महावीरप्रसाद द्विवेदी और रामचरित उपाध्याय की कविताओं से लेकर मैथिलीशरण गुप्त के युग तक पहुँचने का संपूर्ण इतिहास इसके अंकों में अंकित है। पं० नाथूराम शंकर शर्मा, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' आदि कितने हो कवि सरस्वती द्वारा हो चमके।

०.२.७ कहानियों के क्षेत्र में इसकी सेवाएँ अनुपम हैं। वास्तव में आधुनिक हिंदी कहानी का जन्म ही सरस्वती में हुआ। पं० किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती' सर्वसंमति से हिंदी की पहली आधुनिक कहानी मानी जाता है। बंग महिला की कहानियों ने उस नूतन प्रवृत्ति को पुष्ट किया। बाबू वृंदावनलाल वर्मा की पहली कहानी सरस्वती में सन् १९०७ में छपी। पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था', जो कहानी के क्षेत्र में मील का पत्थर मानी जाती है, सरस्वती ही में प्रकाशित हुई। प्रेमचंद की पहली हिंदी कहानी छापने का सौभाग्य भी सरस्वती को प्राप्त हुआ था। उस युग में सरस्वती की कहानियों से अनुप्राणित होकर वे लोग भी जो कवि या गंभीर लेखक थे, कहानी लिखने का प्रयोग करने लगे। उदाहरण के लिए रामचंद्र शुक्ल ने 'ग्यारह वर्ष बाद' और बालकृष्ण शर्मा ने 'संत' नामक कहानी लिखी जो सरस्वती में ही प्रकाशित हुई। फिर तो विश्वम्भरनाथ कौशिक, सुदर्शन, ज्वालादत्त शर्मा आदि सभी लेखक कहानी क्षेत्र में दिखाई देने लगे।

०.२.८ हिंदी जनता को दूसरी भाषाओं की कहानियों से परिचित कराने के लिए सरस्वती ने अन्य भाषाओं की कहानियों के अनुवाद भी प्रकाशित किये। यही नहीं, रवींद्र बाबू की बँगला कहानियों का पहला अनुवाद हिंदी ही में हुआ और वह सन् १९०२ में सरस्वती में छपा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरंभ ही से इसने वैज्ञानिक कहानियों की ओर ध्यान दिया और कितनी ही वैज्ञानिक कहानियाँ प्रकाशित कीं।

०. २. ९ सरस्वती ने विविध ज्ञान विज्ञान विषयक बिखरी हुई चेतना को समेटने का भी कार्य किया। द्विवेदी जी ने इसे विविध विषय समन्वित पत्रिका बनाने का भगीरथ प्रयत्न किया। सबसे महत्वपूर्ण इसकी संपादकीय टिप्पणियाँ थीं, जो विविध विषयों पर होती थीं, पर वे राजनीतिक विषयों पर नहीं होती थीं। सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक शिक्षा संबंधी विषयों पर उनकी टिप्पणियाँ ज्ञानवर्धक और विचारोत्तेजक होती थीं। नियमित रूप से इस प्रकार संपादकीय टिप्पणियाँ लिखना हिंदी मासिक पत्रों में शायद सबसे पहले सरस्वती ने ही प्रारंभ किया था। हिंदी की समस्याओं पर सबकी टिप्पणियाँ विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती थीं, क्योंकि वे सारे हिंदी संसार का प्रतिनिधित्व करती मानी जाती थीं।

०.२.१० सरस्वती ने साहित्यिकता के साथ सामयिकता का निर्वाह भी बड़े सुचारु तथा नवीन ढंग से किया। हिंदी साहित्य की सामयिक अवस्था का चित्रण करने तथा उसका गहरा प्रभाव डालने के लिए इसने सर्वथा एक नया ढंग अपनाया, वह ढंग था व्यंग्य चित्रों का। इन चित्रों की सामग्री साहित्य के विविध क्षेत्रों से ली गई है। 'हिंदी साहित्य में चार लेखक', 'खड़ीबोली का पद्य' में संकर शैली के कवियों पर, 'मातृभाषा का सत्कार' में अंग्रेजी के पढ़े लिखे लोगों के लिए, 'काशी का साहित्य वृक्ष' में काशी के अकुशल उपन्यासकारों पर एवं 'मदरसों में प्रचलित हिंदी और उसके पुरस्कर्ता' में शिक्षा विभाग के अधिकारियों तथा पाठ्य पुस्तक लेखकों पर सीधा और मार्मिक व्यंग्य है। इन व्यंग्य चित्रों के द्वारा संपादक ने हिंदी साहित्य की सामयिक दशा का मार्मिक और प्रभावशाली चित्र उपस्थित किया। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मनुष्य पर उपदेश से अधिक व्यंग्य का प्रभाव पड़ता है। अपनी त्रुटियों पर कटाक्ष सुन वह सजग होता है। सरस्वती के ये व्यंग्य-चित्र इस दिशा में एक सफल प्रयोग थे।

०. २. ११ साहित्यिक दृष्टि से इसने एक और महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके ही माध्यम से बाल साहित्य तथा स्त्री साहित्य को पत्रिकाओं में उचित स्थान मिला। सरस्वती के 'बालविनोद' शीर्षक ने बालकोपयोगी साहित्य का निर्माण कर बालकों में पत्र-पत्रिकाओं के पठन-पाठन में ऐसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय रुचि उत्पन्न करने का प्रयास किया जब कि स्वयं बालक के अंग्रेजी माध्यम से शिक्षित माता पिता तक की हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में रुचि न थी। आदर्श नारी जीवन के चित्रण के साथ आख्यायिका, निबंध आदि के द्वारा महिलोपयोगी साहित्य का भी समावेश इसमें हुआ। यही नहीं, समय समय पर महिलाओं की लिखी रचनाओं को छाप कर लिखने को प्रेरणा भी प्रदान की गई। यह वह समय था जब समाज में स्त्री शिक्षा नगण्य थी। अतः स्त्रियाँ घर की चहारदीवारी तक ही सीमित थीं। उनके पास न तो राजनीतिक जीवन था और न सामाजिक प्रतिष्ठा। पैसा, आभूषण, रूढ़िवादिता ही उनका जीवन था। पर देश राजनैतिक दृष्टि से जागृत हो चुका था। ऐसे समय समाज के एक अंग का पिछड़ा होना दुर्भाग्य का द्योतक था। 'सरस्वती' ने समाज के इस अंधकार युक्त क्षेत्र को प्रकाशित कर एक महत् कार्य किया। उसका अनुकरण कर फिर तो अनेक पत्रिकाओं ने महिलोपयोगी साहित्य की ओर ध्यान दिया। यही नहीं, कुछ ही काल उपरांत अनेक महिलोपयोगी पत्रिकाएँ भी निकलने लगीं।

०. २. १२ 'सरस्वती' ने आरंभ से ही हिंदी के प्रचार और प्रसार का व्रत ले रखा था। भाषा की शुद्धता और सौष्ठव की ओर इसका पूर्ण ध्यान रहा। इसके लिये आवश्यकता पड़ने पर उसने निर्भीक आलोचना का भी सहारा लिया। हिंदी को उसके उचित स्थान पर प्रतिष्ठित कराने और उसे भारत की सार्वदेशिक भाषा स्वीकार कराने के लिए यह अपने जन्मकाल से ही प्रयत्नशील रही। संक्षेप में, शिव और लोकोपयोगी साहित्य सृजन ही उसका लक्ष्य रहा।

बीसवीं शताब्दी की हिंदी पत्रकारिता पर दृष्टिपात करते समय जो बात सबसे पहले ध्यान में आती है, वह है पत्रिकाओं का साहित्य की ओर पूर्ण रूप से झुकाव। उन्नीसवीं शताब्दी का अंत होते होते नए शिक्षित मध्यमवर्ग को अपनी उच्च शिक्षा की भाषा अंग्रेजी में समाचार मिलने लगे। इस कारण सहसा हिंदी पत्रकारिता का एक बड़ा प्राणवान अंश उससे छिन गया। उस समय तक पत्रकारिता का जो रूप रह गया था, उसमें मासिक पत्र ही महत्वपूर्ण थे। साप्ताहिकों की संख्या बहुत कम हो गई थी और विश्वयुद्ध के आरंभ के पूर्व दैनिक पत्र थे ही नहीं। साहित्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की दृष्टि से इस समय चलनेवाली पत्रिकाओं में 'हिंदी प्रदीप', 'भारतमित्र' 'हिंदी वंगवासी', 'भारतजीवन', 'भारत भगिनी' आदि ही थीं। इनमें से 'भारतमित्र' को छोड़कर सव आलोच्य युग के मध्य में ही वंद हो गईं। इन पत्रिकाओं में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, समालोचना, निवंध आदि विविध विषयों का समावेश कर साहित्य के विकास में पूर्ण योगदान करने का स्तुत्य प्रयास हुआ। भाषा, धर्म और सामाजिक प्रश्नों को लेकर अकसर आकर्षक बहसें छिड़ जाती थीं, इससे साहित्य रचना को उत्तेजना मिलती थी। इस प्रकार अनेक नई विधाओं से सम्पन्न नया साहित्य समाचार-तत्व को अपने में समाहित करके आगे बढ़ रहा था।

हिंदी प्रदीप (१८७७-१९०७ ई०)

०. ३. १ पं० बालकृष्ण भट्ट के संपादकत्व में विक्टोरिया प्रेस, प्रयाग से निकलता था। इसमें छपे पं० बालकृष्ण भट्ट के निवंध तत्कालीन निवंध साहित्य के विकास की एक कड़ी ही थे। भट्ट जी ऐसे निबधकार थे जो विरासत में भारतेंदु की परंपरा को लेकर द्विवेदी युग के विकास में योगदान कर रहे थे। इन्होंने 'हिंदी प्रदीप' में सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक विषयों पर निबंध लिखे और भारतेन्दु की व्याख्यात्मक और विचारात्मक शैली को विकसित किया।

०. ३. २ यह विविध विषय समन्वित पत्रिका थी। नाटक, उपन्यास, समालोचना, निवंध, कहानी सभी क्षेत्रों में इसका अपूर्व योगदान रहा। इसमें सद्यः निकलने वाली 'सरस्वती' की अलोचना इस प्रकार की गई है—

'समालोचना (सरस्वती)—इस नाम की सचित्र मासिक हिंदी मेग़जीन काशी नागरी प्रचारिणी के पाँच पंच द्वारा जन्म ग्रहण कर ठीक समय से प्रकाशित होती है. . . .मेग़जीन का मुख्य काम साहित्य की उन्नति का है और साहित्य की उन्नति कविता से होती है तो इसलिए कुछ काव्य भी होना चाहिए पर काव्य में पुराने ढंग का असत् नष्ट काव्य नायिका नायक के झगड़े न हों, रस की कविता से बल्कि उसका न होना अच्छा, अंग्रेजी से जो आख्यायिकाएँ ली जायँ उनका यथातथ्य अनुवाद न हो केवल Plot मात्र लिए जायँ तो अच्छा हो Origine स्व-कपोल-कल्पित इस प्रकार के आख्यान या आख्यायिकाएँ ठेठ हिंदी में लिखे जायँ तो क्या कहना[1]।'

---

१. 'हिंदी प्रदीप', १९०० ई०, पृ० ४०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कहा जा सकता है कि 'हिंदी प्रदीप' से पूर्व हिंदी पत्रकार कला का कोई उज्ज्वल इतिहास नहीं था। सच बात तो यह है कि पत्रकारिता तब जन्म ले रही थी। उसका पालन पोषण कर उसे युवा बनाने और सौंदर्य प्रदान करने का बहुत श्रेय 'हिंदी प्रदीप' को है। पं० बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' के ही माध्यम से आधुनिक आलोचना को जन्म दिया। इसकी संचिकाएँ ऐसे निबंधों से भरी पड़ी हैं जिनका स्वर आलोचनात्मक है।

०.३.३ निबन्ध और आलोचना के अतिरिक्त आलोच्य काल में इस पत्रिका में 'किरातार्जुनीय नाटक,' 'शिशुपाल वध नाटक,' 'सूरत की बेडोल सूरत' आदि नाटक 'घड़ी की कुघड़ी', 'दो चाघड़ों की बातचीत' आदि वार्तालाप, 'भाग्य का फेर,' 'सुन्दरी' आदि उपन्यास भी निकले।

भारत मित्र (१८७८ से आलोच्य काल के उपरान्त भी चलता रहा)

०.४.१ पं० छोटूलाल मिश्र के सम्पादकत्व में कलकत्ता से इसका प्रकाशन हुआ। इसके मुख्य पृष्ठ पर ही इसका उद्देश्य छपा रहता था—

'ज्यो स्तु सत्यनिष्ठानां येषां सर्वे मनोरथा।'

आरम्भ में यह पत्र पाक्षिक था, तत्पश्चात् साप्ताहिक हो गया। १८९७ तक यह दैनिक रूप में निकलने लगा। पर सन् १९१२ से यह स्थायी रूप से दैनिक हुआ। इसके सम्पादन का कार्य अनेक लोगों ने सँभाला। आलोच्य काल में इसका सम्पादन बालमुकुंद गुप्त, पं० अमृतलाल शर्मा, बाबू शिवनारायण सिंह, पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर तथा पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे ने किया।

०.४.२ 'भारतमित्र' एक तेजस्वी राजनीतिक पत्र के रूप में विख्यात हुआ। देश की राजनीति, वाणिज्य भाषा और समग्र जातीय चेतना का विकास ही इसका लक्ष्य था। आलोच्य काल में भी यह पत्र अपने उद्देश्य का निर्वाह कर रहा था। पर इसका उद्देश्य राजनीतिक होते हुए भी साहित्य के विकास में परोक्ष रूप से सहायक ही रहा। इसी के माध्यम से श्री बालमुकुन्द गुप्त ने हिन्दी आलोचना साहित्य का प्रचार एवं सृजन किया। आलोचक गुप्त जी की सबलतम आलोचना का निदर्शन समकालीन लेखकों पर लिखी गई आलोचनाएँ हैं। इस प्रकार की आलोचना में रचना का कलात्मक रूप गौण और रूप की लोकप्रियता प्रमुख है। गुप्त जी ने अपनी आलोचना द्वारा अतिशय शृंगारिकता के पुनरावर्तन का विरोध 'काम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्र,'[१] कुरुचि उत्पादक भद्दी अनुकृति का प्रतिवाद सुशील कवि की 'उजाड़ गाँव,' साधु तथा योगी नामक रचनाओं की समीक्षा[२] द्वारा और क्लिष्ट एवं दुर्बोध साहित्य का निरसन 'तुलसी सुधारक' की अलोचना[३] द्वारा किया।

० ४.३ 'भारतमित्र' के द्वारा गुप्त जी ने चरित चर्चा की एक अभूतपूर्व शैली का विकास किया। 'प्रयाग समाचार' के जन्मदाता पं० देवकीनन्दन तिवारी, साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास, पं० देवी सहाय, पांडेय प्रभुदयाल, बाबू रामदीन सिंह, पं० गौरीदत्त, पं० माधव मिश्र, मुंशी देवीप्रसाद प्रभृति हिंदी के वे लेखक थे जिनके जीवन चरित गुप्त जी ने 'भारतमित्र' में प्रकाशित करके उनको पुनर्जीवित किया।

०.४.४ महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा बालमुकुंद गुप्त के बीच 'अनस्थिरता' संबंधी विवाद का माध्यम भी यही पत्र था। इस वादविवाद से भाषा और व्याकरण को एक नई व्यवस्था मिली। 'भारतमित्र' में ही 'उर्दू कलाकारों का इतिहास', 'हिंदी संवाद पत्रों का इतिहास' प्रकाशित हुआ। दोनों के लेखक गुप्त जी ही थे। वस्तुत: संवादपत्रों का इतिहास प्रकाशन 'भारतमित्र' का एक महत्वपूर्ण साहित्यिक अवदान है।

०.४.५ पत्र लेखन तथा कटाक्षपूर्ण शैली का उत्कृष्ट स्वरूप उस काल में यदि कहीं द्रष्टव्य है तो 'भारतमित्र' के 'शिवशंभु के चिट्ठे' में। यथा–

'आपने माई लार्ड ! जब से भारतवर्ष में पधारे हैं बुलबुलों का स्वप्न ही देखा है या सचमुच कोई करने योग्य काम भी किया। खाली अपना ख्याल ही पूरा किया है या यहाँ की प्रजा के लिए भी कुछ कर्तव्य पालन किया। एक बार यह बातें बड़ी धीरता से मन में विचारिये। आपकी भारत में स्थिति की अवधि के पाँच वर्ष पूरे हो गये। अब यदि आप कुछ दिन रहेंगे तो सूद में मूलधन समाप्त हो चुका। हिसाब कीजिये नुमायशी कामों के सिवा काम की बात आप कौन सी कर चले हैं और भड़कबाजी के सिवा ड्यूटी और कर्तव्य की ओर आपका इस देश में आकर कब ध्यान रहा है।"[४]

---

१. भारतमित्र, ५ फरवरी, १९०५ ई०।
२. वहीं, २१ अगस्त, १८९९ ई०।
३. वही, १९०२ ई०।
४. 'भारतमित्र', अप्रैल, १९०३ ई०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनंद कादंबिनी (१८८१ ई०)

०.५.१ पं० बदरीनारायण उपाध्याय के संपादकत्व में निकलती थी। पत्रिका में अधिकांश कविता और लेख चौधरी जी के ही रहते थे। आलोचना के क्षेत्र में इस पत्रिका का योगदान स्तुत्य है।

भारतजीवन (१८८४ ई०)

०.६.१ रामकृष्ण वर्मा के संपादकत्व में काशी से निकलता था। १९१४ ई० में यह कुछ दिन के लिए दैनिक भी हुआ। यह भी विविध-विषय-समन्वित पत्र था। नाटक, उपन्यास, कहानी, गजल, कवित्त आदि से सज्जित होकर इस पत्र ने हिंदी के विकास में अपना योग देने का प्रयास किया। यह शासकों की दृष्टि में गिरना नहीं चाहता था अतः ऐसे समाचारों से बचता था जिनके द्वारा शासकों के अत्याचार का उद्घाटन होता था।

मित्र (१८८८ ई०)

०.७.१ काशी उपन्यास कार्यालय से बाबू बालमुकुंद वर्मा के संपादकत्व में मासिक रूप में प्रकाशित होता था। आवरण पृष्ठ पर यह संस्कृत श्लोक छपा रहता था—

शोकाराति भय त्राणं, प्रीति श्रम्म भाजनम्।
केन रत्नमिदं सृष्टं, मित्रमित्यक्षर द्वयम्।

श्री अंबिकाप्रसाद वाजपेयी ने पं० दामोदर शास्त्री को इसका संपादक मानते हुए लिखा—

'पं० दामोदर शास्त्री सुलेखक थे। बाबू बालमुकुंद गुप्त ने तो उन्हें विहारबंधु का प्रथम संपादक भी लिख दिया है। यह भी लिखा है कि नाथद्वारे में जो लेखक मंडली थी, उसमें श्री दामोदर शास्त्री जी थे। "मित्र' के संपादक भी वे थे यह शायद गुप्त जी को न मालूम था।"[1]

०.७.२ 'मित्र' में कविता, लेख, उपन्यास आदि विविध विषय निकलते थे। 'झाँसी की रानी', 'लखनऊ की कब्र वा शाही महलसरा' शीर्षक उपन्यास भी निकला। इसमें निकलने वाला 'झाँसी की रानी' संभवतः आगे चलकर वृंदावनलाल वर्मा की 'झाँसी की रानी' का आधार

---

१. समाचार पत्रों का इतिहास, पृ० २०२।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बना क्योंकि इसके कुछ वार्तालापों का ज्यों का त्यों वृन्दावनलाल जी ने प्रयोग किया है। यथा--

'विवाह में वधू वर का गाँठ जोड़ा होना सब में प्रचलित है। सो मनुबाई ने गाँठ जोड़े के समय कहा कि 'जरा मजबूत गिरह देना।' यह सुनकर लोग चकित हुए और जिन लोगों ने इस गूढ़ बात का मतलब समझा वे स्तब्ध हो बैठे।'[1]

समय समय पर तत्कालीन पत्रों पर प्रतिक्रिया भी इसमें निकलती थी।

'बंबईया त्रिभाषी सहयोगी 'भारतधर्म' ने आशातीत उन्नति की है। महाराष्ट्र संपादक के हाथ से संपादित होकर हिंदी में सनातम धर्म का समर्थन करने में वह बड़े जोरदार लेख लिखने लगा है।'[2]

लोगों में हिंदी पत्रों के प्रति रुचि जागृत करने का प्रयास भी परिलक्षित होता है—

'हिंदी समाचार पत्रों से कलकत्तावासियों का बड़ा प्रेम है। हमने देखा है कि छोटे से लेकर बड़े बूढ़े तक बड़े आदर के साथ पत्रों को पढ़ते हैं। हमारे काशी निवासियों को उनका अनुकरण करना चाहिए।'[3]

भारतभगिनी (१८८८ से १९०६ ई०)

०.८.१ श्रीमती महादेवी नामक महिला के संपादकत्व में सरस्वती प्रेस इलाहाबाद से प्रकाशित होती थी। इस पत्रिका में निबंध, कविता, कहानी आदि विविध विषय निकलते थे। पर इसकी भाषा बड़ी अनगढ़ थी। यथा—

'हे पापी जीवों को एक क्षण में विनाश करके पृथिवी का भाड़ कम करने हारे प्रकाश स्वरूप जगदीश्वर।'

संपादकीय लेख[4]।

---

१. 'मित्र', अप्रैल, १९०६, पृ० १३।
२. वही, अगस्त–सितंबर, १९०३, पृ० २।
३. वही, १९०५, पृ० ११।
४. भारत भगिनी, मई, १९०५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी बंगवासी (१८९० ई०)

०. ९. १ पं० अमृतलाल चक्रवर्ती के संपादकत्व में इसका प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इनके संपादकत्व में १८ वर्ष तक यह चलता रहा, इसके पश्चात् बाबू बालमुकुंद गुप्त, बाबूराव विष्णु पराड़कर, अंबिकाप्रसाद बाजपेयी तथा लक्ष्मणनारायण गर्दे ने भी इसके संपादन का कार्य किया था। यह पत्र पूरे आलोच्य काल में हिंदी के विकास में योगदान करता रहा। उस समय यह अपने ढंग का एक नया अखबार था। समाचार के अतिरिक्त इसमें लेख, कहानी, चरित्र-चित्रण, व्यंग्य चित्र आदि भी होते थे। इसकी भाषा पर बँगला का अधिक प्रभाव था।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका (सन् १८९६ से अब तक चल रही है)

०. १०. १ यह त्रैमासिक के रूप में बाबू श्यामसुंदरदास, महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी, श्री कालीदास और राधाकृष्णदास के संपादकत्व में काशी नागरीप्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुई। १९०७ ई० में इसके संपादक श्यामसुंदरदास, रामचंद्र शुक्ल, रामचंद्र वर्मा, वेणीप्रसाद बनाए गए। १९२० में पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, श्यामसुंदरदास, चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' और मुंशी देवीप्रसाद हुए।

०. १०. २ इसमें इतिहास, साहित्य, भाषातत्व, पुरातत्व आदि के बारे में लेख प्रकाशित होने लगे। खोज संबंधी सामग्री भी पाठकों के सामने आने लगी।

०. १०. ३ 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' के प्रकाशन से हिंदी में महावीरप्रसाद द्विवेदी, माधवप्रसाद मिश्र, श्यामसुंदरदास, अंबिकादत्त व्यास और मिश्रबंधु जैसे धुरंधर लेखकों की प्रतिभा को विकसित होने के लिए अवसर मिला तथा द्विवेदी युग के उच्च लेखकों की एक विशाल परंपरा निर्मित हुई। पत्रिका के जून, सन् १८९८ के अंक में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी कृत 'नागरी! तेरी दह दशा', 'श्यामसुंदरदास कृत 'भारतवर्षीय भाषाओं की जाँच' जैसे महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं। अतः पत्रिका के प्रारंभिक अंकों से ही हिंदी साहित्य के विविध अंगों पर विचार होने लगा।

भाषाचंद्रिका (१९०० ई०)

०. ११. १ हरे कृष्ण अगरवाला द्वारा तारा यंत्रालय, काशी से प्रकाशित होती थी। मुख्य पृष्ठ पर यह छंद लिखा रहता था—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोर तमिस्रा-रैन-अविद्या, अंधकार अज्ञान मई ।
कुहू निशी-घन-जल-माया, भारत-नभ-मंडल छाई ।।
मोह, निंद-वश-अचेत आरज पूर्व्व गौरव भुव गई ।
अब जागि देखि ललित भाषा-चन्द्रिका परकाश भई ।।

साथ ही यह भी लिखा है--

'काव्य, उपन्यास, प्रबंध, संदर्भ, संगीत, नाटक, प्रहसन, रंगरस, परिहास, इतिहास, भूतत्व, पुरातत्व, विज्ञान, ज्योतिष, वैद्यक और धर्म संवंधी विविध साहित्य और समालोचना और शिल्प किमिया वा रसायन, इंद्रपाल, कौतुक, मेलकी, भोजबाजी, आग्नेयवाजी, प्रभृत आश्चर्य और कौतूहलवर्द्धिनी विविध-कला-विद्या प्रकाशिनी अपूर्व मासिक पत्रिका ।' ।

'शिल्पकला' शीर्षक लेख द्वारा आधुनिक भारत से शिल्पकला का लोप होने पर क्षोभ व्यक्त करता हुआ लेखक तत्कालीन सभ्यता के अनुकरण की प्रवृत्ति पर एक सुंदर कटाक्ष प्रस्तुत करता है--

'आज जो विशंति मुद्राजीवि मुहर्रिर या सरकारी कर्मचारी हैं, वह भी अपने को सभ्य समझते हैं, और लोक समाज में दिखाने के लिए कोट, पेन्टुलन, ह्याट और घड़ी, दाढ़ीधारी होकर, मयूर पुच्छ भूषित काक के समान शोभा पाते हैं, उन्हें अपने देश की उन्नति और विद्या की चर्या से क्या प्रयोजन है ? मुँह में वाई साड या चुरुट दावे हुए, जेव से दियासलाई की पेटी निकालकर घिसते हैं, और सगर्व्व पीछे के तरफ अल्प टेढ़े होकर मुँह में आग लगाते हुए धुवाँ फेंक रहे हैं। धन्य सभ्यता ! बाबू से एक वार पूछिए तो सही, जिस रोज इंगलैंड वासी यह दियासलाई और चुरुट का आना भारतवर्ष में वंद कर देंगे, उस रोज बाबू का यह सभ्यता कहाँ जायगी ?[१] ('शिल्पकला')

पत्रिका की भाषा आदि से अंत तक त्रुटिपूर्ण है । स्वयं संपादक भूमिका में अशुद्ध भाषा का प्रयोग करते हैं । यथा--

'यदि इसमें परिमल मय फुल होगा तो वायु अवश्य ही उसका सौरभ वहन करता हुआ बहता होगा ।'

---

१. 'भाषा चंद्रिका', सन् १९००, पृ० १५ ।

२

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अब हम अपनी वह दीर्घ भूमिका परिसमाप्त करते हैं। जो कुछ इसमें हमारी ओर भ्रम हो उस महानुभव पाठकगण अपनी उदारता से क्षमा करेंगे।'[१]

छत्तीसगढ़ मित्र (१६०० ई०)

०.१२.१ सर्वश्री रामराव चिंचोलकर और माधवराव सप्रे के संपादकत्व में विलासपुर से यह मासिक पत्रिका प्रकाशित होती थी। तत्कालीन साहित्यिक गतिविधि के प्रति जागरूक इस पत्रिका में निबंध, जीवनचरित्र, कविता, व्यंग्य आदि विषय रहते थे। त्रिमूर्ति जी के 'विद्यारण्य' शीर्षक एक व्यंग्य शैली में लिखे निबंध में तत्कालीन कवियों की अलंकारप्रियता पर कटाक्ष देखिए --

'इधर देख यह जो तेरे सन्मुख एक पुरातन वृक्ष खड़ा है उसकी डालियाँ फूलों के बोझ से लदी हुई कैसी सुमनोहर दीख पड़ती हैं। इन फूलों में स सुधामयी मधुधारा अप्रतिहत बह रही है और रसज्ञ भ्रमरों के झुंड के झुंड इसके चारों ओर जुटे हैं। इस प्रतापी वृक्ष को भाँति-भाँति अलंकार लताओं ने इतना वेष्ठित कर लिया है कि इसका सारा शरीर लतामय हो गया है। कुछ दिनों से तो ये लताएँ (अलकार रूपी) इतनी बढ़ रही हैं कि इस वृक्ष का मूल स्वरूप ही अब दृष्टिगोचर नहीं हाता। इस वृक्ष का नाम काव्यतरु है।'[२]

सुदर्शन (१६०० ई० से १६१६ तक)

०.१३.१ पं० माधवप्रसाद मिश्र तथा बाबू देवकीनन्दन खत्री के संपादकत्व में काशी से निकला। आधुनिक हिंदी आलोचना के सूत्रपात में इसका अमूल्य यागदान रहा।

समालोचक (१६०१ ई०)

०.१४.१ यह मासिक पत्र पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी के संपादकत्व में जयपुर से निकला। १६०३ के दीपावली अंक के मुख्य पृष्ठ पर 'भामिनी विलास' की ये पंक्तियाँ पत्रिका के उद्देश्य को स्पष्ट करने में पूर्ण सहायक हैं—

---

१. वही, पृ० १०।
२. 'छत्तीसगढ़ मित्र', जनवरी १६०२ ई०, पृ० ११।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नीर क्षीर विवेके हंसाऽऽलस्यं त्वमेव तनुषे चेत् ।
विश्वास्मन्न घुनाऽन्द कुलव्रते पालमिष्यति कः ।'

गुलेरी जी के द्वारा संपादित 'समालोचक' अत्यंत महत्वपूर्ण पत्र था। इसके द्वारा गुलेरी जी एक अनूठी शैली लेकर साहित्य क्षेत्र में उतरे। यह पत्र अल्पायु हुआ, किंतु उतने ही समय में हिंदीजगत् पर अपनी छाप छोड़ गया। मूलतः यह साहित्यिक पत्र था। इसमें कविता, लेख, सामयिक समाचार आदि सभी विषय रहते थे। पर समालोचना पर अधिक लिखा जाता था। इसमें सामयिक पत्रिकाओं की उनमें लिखे विचारों पर, भाषा पर तथा उपन्यास, कहानी, आदि पर भी समालोचना रहती थी। यथा—

'सुदर्शन' की सुदृष्टि अब उपन्यासों पर हुई है। लसकी तीन संख्याओं में उपन्यासों की प्रतिष्ठा पर लेखक की आस्था की अवस्था अच्छी तरह दिखाई गई है। यह तो कोई बात नहीं कि पं० माधवप्रसाद ने किसी बात की हिमायत कर दी तो फिर उसकी न्याय्यता में संदेह भी न करना—

'ए अभिमानी मुरलिया, करी सुहागन श्याम।
अरी चलाय सवन पै भले चाम के दाम ॥'[1]

'आषाढ़ के 'सुदर्शन' में ऐयारी की पुष्टि के लिए 'मुद्राराक्षस नाटक' का भी नाम लिया गया है और चंद्रकांता छपती बेर रामायण के सीताहरण को भी ऐयारी कहा गया था...एक और मजे की बात देखिये। कादम्बरी, मैकवेथ, मेरी प्राइस, फास्ट वा मुद्राराक्षस पढ़ने पर क्या स्मरण रहता है? नाटक पात्रों की सजीवता उनकी चेष्टाएँ, उनका चरित्रांकन उनका व्यवहार, कथा का परिणाम, प्रभृति। विचित्र घटनाओं का टाँका अपना काम कर चुका और सारी पोशाक में टाँकों की तरह यह अब दिखाई नहीं देता। चन्द्रकान्ता के प्रेमियों को उसी की शपथ है, उसका पारायण किए बाद क्या याद रहता है? कथा भाड़ में गई, चरित्रांकन की बात ही नहीं, चरित्रों में सजीवता की बात कहाँ, भाषा की भी नहीं, केवल ऐयारी देवी और तिलिस्म जी महाराज। और साथ ही गुण्डे शोधे ऐयार Villain of the play।[2]

---

१. समालोचक, अक्टूबर-नवंबर, १६०३, पृ० ७०।
२. समालोचक, अक्टूबर–नवम्बर, १६०३, पृ० ७५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

०. १४. २ इस तरह पत्रों में दिए विचारों पर कटु कटाक्षपूर्ण समालोचना के अतिरिक्त पुस्तकों की भी समालोचना का एक स्तंभ रहता था। इसी अंक में बाबू देवकीनंदन खत्री के 'काजर की कोठरी' की समालोचना निकली है। यथा–

'यह पुस्तक उपन्यास के लक्षणों से काले कोसों दूर है। उपन्यासों में रहस्यमयी घटनायें उलझेड़े के साथ बहुधा हुआ करती हैं। परंतु अंत में क्रमशः सारी बातें दर्पण सी खुल जाती हैं। कोई बात ग्रंथकार के पेट पिटारे में छिपी नहीं रहती है'।[1]

'सहयोगी साहित्य' स्तंभ में तत्कालीन पत्रों पर संक्षिप्त पर आलोचक दृष्टि से विचार किया जाता था। यथा–

'आजकल समाचार पत्रों में रूस जापान का तिब्बत की लड़ाई के अतिरिक्त प्रायः गंभीर लेख बहुत कम होते हैं। 'भारतमित्र' में उर्दू मासिक पत्रों पर अच्छा लेख लिखा गया है। इसके लेख तथा भाषा से सब मनुष्य प्रसन्न हैं। 'हितवार्ता' के लेख अच्छे राजनैतिक होने पर भी सरल भाषा में न होने के कारण सर्वोपयोगी नहीं हैं। 'हिंदी वंगवासी' में अब गंभीर लेखों का प्रायः अभाव रहता है'।[2]

हितवार्ता (१९०३ ई०)

०. १५. १ पं० कालीप्रसन्न काव्यविशारद के संपादकत्व में निकली। उनके उपरांत बाबूराव विष्णुपराड़कर इसके संपादक हुए। 'हितवार्त्ता' के माध्यम से ही देउसकर जी ने विभक्ति का आंदोलन छेड़ा था। इस आँदोलन में उस काल के सभी नामी पात्रों ने भाग लिया। पं० गोविंद नारायण मिश्र के इस पर विद्वत्तापूर्ण लेख 'हितवार्त्ता' में निकले। उन्होंने 'विभक्ति विचार', और 'प्राकृत विचार' शीर्षक लेखमालाएँ 'हितवार्त्ता' में दी। इन्हीं लेखमालाओं के द्वारा वे हिंदी जगत् में प्रसिद्ध हुए। पं० अंबिकाप्रसाद वाजपेयी के भी २० लेखों की माला इसमें निकली। इसके अतिरिक्त गणेशशंकर विद्यार्थी, मुंशी देवीप्रसाद, उमापतिदत्त शर्मा और विशुद्धानंद जी के भी लेख इसमें निकलते थे।

---

१. वही, पृ० ८९।
२. वही, भाग ३, संख्या २५, पृ० ६।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मी (१९०३ ई०)

०. १६. १ श्री गोरेलाल मंजु के संपादकत्व में यह मासिक पत्रिका गया से निकली। तदुपरांत बनारस के लाला भगवानदीन द्वारा संपादित होने लगी।

यह साहित्यिक पत्रिका थी। इसमें अयोध्यासिंह उपाध्याय, गोविंददास, बंगमहिला, अंबिकाप्रसाद त्रिपाठी, 'सनेही' आदि तत्कालीन अनेक साहित्यकारों की रचनाएँ छपती थीं। कहानी, कविता, लेख आदि विभिन्न विषयों द्वारा इस पत्रिका का भी साहित्य के विकास में योगदान रहा।

अबला हितकारक (१९०३ ई०)

०. १७. १ श्री मित्र जगदीदत्त के संपादकत्व में यह एक स्त्रियोपयोगी सामाजिक पत्रिका निकलती थी। इसका उद्देश्य समाज सुधार था। इसमें आदि से अंत तक उपदेश प्रधान रचनाएँ ही निकलती थीं। इसमें लेख, कहानी, कविता आदि सभी विषय होते थे पर सबकी ध्वनि उपदेशात्मक ही थी।

स्त्रीदर्पण (१९०३ ई०)

०. १८. १ श्रीमती रामेश्वरी नेहरू के संपादकत्व में तथा स्त्रियों के ही प्रबंध से प्रयाग से यह सचित्र मासिक पत्र निकलता था। उस काल के लगभग सभी प्रमुख लेखक लेखिकाएँ इस पत्रिका में लिखती थीं। पर भाषा की दृष्टि से इस पत्रिका का संपादन शिथिल था। लेखकों द्वारा भेजे गए लेख बिना संशोधन के ही छाप दिये जाते थे। यथा—

'पर समाज स्त्रियों के सुधार को रोक नहीं सकती। समाज उन्नति की धारा पर कदापि बाँद बांध नहीं सकती।'[1]

(समाज सुधार, रुद्रदत्त)

०. १८. २ नाटक, कहानी, उपन्यास, कविता, निबंध आदि विविध विषय समन्वित इस पत्रिका में 'सामयिक साहित्य चर्चा' शीर्षक भी एक स्तंभ रहता था, जिसमें तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं की रचनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की जाती थी। परोक्ष रूप से इस स्तंभ ने

---

१. स्त्रीदर्पण, नवंबर, १९१५ ई०, पृ० ३२९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समालोचना साहित्य के विकास में बड़ा महत्वपूर्ण योगदान दिया। 'चतुर्वेदी' पत्र के 'ब्रह्मविचार' शीर्षक लेखक की कटु आलोचना का निदर्शन निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

'किससे कहते हो ? और क्या कहते हो ? 'ब्रह्म विचार' शीर्षक लेख को पढ़कर उत्पन्न होते हैं। यह लेख असाढ़ के अंक से निकल रहा है। विषय तो यह योगियों द्वारा ही प्रतिपादित हो सकता है, और इसलिए हमें अधिकार नहीं कि इसपर हम कुछ निज संमति प्रकाशित करें। परंतु हमें दुख इस बात का है आज संसार में लेखों को नहीं वरन् लेखक देखकर लेख प्रकाशित किये जा रहे हैं और वह भी एक ऐसे पत्र में जो कि जातीय पत्र होने का दावा रखता है। क्या संपादक महोदय स्वयं ही अपने हृदय पर हाथ रखकर बतलावेंगे कि चतुर्वेदी समाज जिसके लिए यह 'चतुर्वेदी' पत्र निकाला गया है इसको कुछ भी आवश्यक समझता है।'[1]

०.१८.३ इस पत्रिका के अंकों में गिरिजाकुमार घोष की 'लक्ष्मी', 'रूपतृष्णा', 'अरबी की यक्ष कथा' आदि अनेक कहानियाँ निकली हैं।

०.१८.४ इस युग में स्त्रियोपयोगी, वालोपयोगी अनेक पत्रिकाएँ निकलीं, जिनमें प्रायः स्त्रियाँ ही लेखिका तथा संचालिका और संपादिका होती थीं। उनमें लेख भी अधिकतर स्त्रियोपयोगी या स्त्रियों की समस्याओं को लेकर ही लिखे जाते थे। इन पत्रिकाओं में मुख्यतः 'कुमारी धर्म', 'नारीधर्म', 'आर्य वनिता', 'वाल प्रभाकर', 'बालमनोरंजन' आदि रचनाएँ थीं।

वैश्योपकारक (१९०४ ई०)

०.१९.१ शिवचंद्र जी भरतिया के संपादकत्व में कलकत्ते के राम प्रेस की ओर से मासिक के रूप में यह पत्रिका प्रकाशित हुई। इस पत्र के प्रथम अंक में प्रकाशित 'आत्मपरिचय' शीर्षक लेख से इस पत्रिका का उद्देश्य 'वैश्यों के कर्तव्य का प्रकाश कर उनकी भलाई करना तथा उनकी जाति को उचित महत्व दिलाना' था। अपने वैश्य बंधुओं का सहायक और उन्नायक होने के साथ ही साथ यह पत्र समाज सुधार के लिये सचेष्ट था। सुधारवादी सामाजिक पत्र होने पर भी इसका साहित्यिक अवदान कुछ कम न था।

---

१. स्त्रीदर्पण, नवंबर, सन् १९१५, पृ० ३७१।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

०. १९. २ समय-समय पर इसमें कविता, नाटक, कहानी, निबंध आदि भी निकलते थे। पद्य में खड़ी बोली का प्रयोग इसके प्रारंभिक अंकों में ही दिखलाई पड़ता है—

'ओ नार छोड़ो सुख की, रईसी।
गीतान्त की बाट न वीर! जो हो,
चाहे घना झाग सुरा दिखावे
प्रकाश में सुंदरी नाचती हो।
प्रसाद छोड़ो, सब छोड़ दौड़ो
स्वदेश शत्रु अवश्य मारो।'[1]

उपर्युक्त पद्य में एक तरफ खड़ी बोली का प्रारंभिक रूप दिखलाई पड़ता है, दूसरी ओर राष्ट्रीय चेतना भी परिलक्षित होती है। साहित्यिक अवदान की दृष्टि से देखें तो आलोच्य युग के कवियों की मानवता का स्वर इस पत्रिका में भी गूँज रहा है—

'राह चलत हंटर हनिबौ कोउ समझत सहज ठठोली है
कोऊ बूट प्रहार करत कोऊ निधरक मारत गोली है।
जबरदस्ती बीसों बिसुवा कोऊ सकत न बोली है।
हा विजयिन! तव प्रजा मात्र में चहुँदिस लागी होली है।'[2]

०. १९. ३ भाषा संबंधी अपनी नीति को स्पष्ट करते हुए प्रथम अंक में ही संपादक कहते हैं—

'इसकी भाषा सरल हिंदी रहेगी परंतु कुछ पन्ने मारवाड़ी भाषा के भी दिये जावेंगे कारण अभी मारवाड़ी समाज बिल्कुल विद्या विमुख है, और विशुद्ध भाषा की पुस्तकें वांचने सुनने में निरुत्साह है, अतः उसके लिए इसकी आवश्यकता समझी गई हैं'।[3]

अपनी इस नीति के प्रतिपादन हेतु 'कनक और सुंदर'[4] शीर्षक मारवाड़ी भाषा मिश्रित एक कहानी निकाली गई है। 'थैंक्यू' शीर्षक एक व्यंग्यात्मक निबंध भी उल्लेख योग्य है।

---

१ 'वैश्योपकारक', आश्विन सं० १९६२, पृ० १७८।
२. वैश्योपकारक, फाल्गुन सं० १९६२, पृ० २०८।
३. वही, सन् १९०४।
४. वही, मार्गशीर्ष, सं० १९६२, पृ० २६७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद में पं० माधवप्रसाद मिश्र के संपादकत्व में यह पत्रिका निकलने लगी। मिश्र जी की सशक्त लेखनी की प्रशंसा बाबू बालमुकुंद गुप्त करते हुए लिखते हैं–

'बड़ी आलोचना लिखने में वह बड़े कुशल हस्त थे। अति तीव्र और जहर में बुझे लेख लिखने पर भी वह हँसी के लेख लिखकर पाठकों के चेहरे पर खुशी ला सकते थे। लिखने में वह बड़े ही निडर और निर्भीक थे। हिंदी इतनी अच्छी लिखते थे कि दूसरा कोई उनके जोड़ का लिखने वाला नहीं दिखाई देता।'[1]

महावीरप्रसाद द्विवेदी तक की आलोचना करनेवाले गुप्त जी द्वारा मिश्र जी की प्रशंसा से इतना तो स्पष्ट है ही कि उनके संपादकत्व में जातीय पत्र होने पर भी 'वैश्योपकारक' किस प्रकार साहित्यिक स्पर्श लिए हुए था।

भारतेन्दु (१९०५ ई०)

०.२०.१ यह मासिक पत्र एक संपादक समिति द्वारा चौखंभा, काशी से निकलता था। इसकी संपादक समिति में बाबू व्रजचंद, श्री शिवप्रसाद जी गुप्त, बाबू राजाराम, मुन्नीलाल गार्ग, गोकुलदास जी, तथा लक्ष्मणदास जी थे। यह मूलतः साहित्यिक पत्रिका थी, जैसा कि इसके नियम में स्पष्ट लिखा है—'इस पत्र में धर्म संबंधी तथा राजनैतिक लेख जिनका कि वर्तमानकाल से संबंध होगा न लिए जाएँगे'।

०.२०.२ पत्रिका में निबंध, नाटक, कहानी, समालोचना आदि सभी विधाओं का समावेश था। आलोच्य युग के कवियों की मानवता इस पत्रिका के पृष्ठों पर भी दिखाई देती है, जबकि तत्कालीन राजनीति से असंपृक्त होने की इसने घोषणा कर रखी थी। यथा—

'हैं प्लेग राज इस देश पै मुंह फैलाये।
लाखों ही प्राणी इसमें जाय समाये॥
होवे अकाल चहुँ ओर न कछु कहि जाई।
खाने को नहिं कछु मिलै अतिहि दुखदाई॥

---

१. माधव मिश्र निबंधमाला, प्रथम खंड, पृ० ४।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्तों को खाकर अपनी भूख बुझावै।
कितने ही नर हा! तरस तरस मर जावें'।।[१]
—'हमारी पूर्वी आशा', ब्रजचंद्र।

०.२०.३ 'काशी की नाटक मंडली की उपयोगिता पर एक वार्तालाप' सभ्य लोगों की बातचीत करके दिया हुआ है, जिसमें नाटकों में समय के सदुपयोग को बताया गया है। इसके अतिरिक्त 'समाचारपत्रों का इतिहास', व्यंग्य लेख, मनोरंजक लेख आदि कई उपयोगी लेख भी निकले। पुस्तक समालोचना के माध्यम से नई प्रकाशित पुस्तकों से पाठक को अवगत कराती हुई उसकी संक्षिप्त पर उपयोगी समालोचना निकलती थी——

'सिद्ध मनोरंजन—पुस्तक का विषय अच्छा है। आपने एक कथानक रूप में यह दिखलाया है कि मनुष्यों का मन कु-वासनाओं के फेर में पड़कर किस तरह सत्य पथ से विचलित होता है और पुनः भगवद् कृपा से सुबुद्धि को प्राप्त करता है और धर्म रथ पर आरूढ हो जाता है। कविता साधारण दोहा चौपाई में हैं। कहीं कहीं बिल्कुल अनर्थक शब्द गढ़ लिए गए हैं जैसे—'पुंटी', 'भोजत' इत्यादि।'[२]

०.२०.४ भाषा सुधार के कार्य में यह पत्रिका भी संलग्न थी, जबकि भाषा सुधार का संपूर्ण श्रेय द्विवेदी जी को ही मिला। देखिए अपनी पत्रिका की रचनाओं का संशोधन किया गया ही है, दूसरी पत्रिकाओं की रचनाओं की त्रुटियों की ओर भी ध्यान दिलाने का प्रयास किया गया है।

'हरिश्चंद्र'—पुस्तक की भाषा कहीं कहीं ग्राम्य तथा भदेस हो गई है, जैसे पेज २४ की ८वीं लाइन 'दिवाली होती थी'। यहाँ इसके लिखने की कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती। हमारे समय में जूवा कोई प्रशंसा की बात नहीं है। और जूवा स्त्रीलिंग भी नहीं है। उसी के ४ लाइन बाद "अमुक अमुक अतर···मिली हुई है' यहाँ अतर स्त्रीलिंग नहीं है इसलिए "मिली हुई है' विचारणीय है। पेज ३८ की ५वीं लाइन में 'लोगों को बड़ी अचंभा हुई' यहाँ हुई का प्रयोग ठीक नहीं है, क्योंकि अचंभा पुल्लिंग

१. भारतेंदु, अगस्त, सन् १९०५, पृ० ३।
२. वही, अप्रैल, सन् १९०६, पृ० १३८।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माना गया है। अचंभा हुआ होना चाहिए। उसी पेज में 'जनेऊ कराई' के स्थान पर 'जनेऊ कराया' अच्छा होगा। पेज २० की १७वीं लाइन में 'श्वसुर बाड़ी आया है' यह शायद बंगला का शब्द है। इसी प्रकार कहीं कहीं त्रुटियाँ रह गई हैं, यद्यपि ये त्रुटियाँ अणु मात्र भी पुस्तक के गौरव को न्यून नहीं करतीं...।'[1]

ऐसी विस्तृत समालोचना की ऐसे समय अत्यंत आवश्यकता थी। पत्रिका ने अपने दायित्व को वहन कर पाठकों को सीधे संपर्क द्वारा भाषा सुधार का जो मार्ग दिखाया वह एक स्तुत्य प्रयास था।

बाल प्रभाकर (१९०६ ई०)

०.२१.१ पं० किशोरीलाल गोस्वामी के संपादकत्व में बनारस से निकली। बालकों के लिए यह एक उपयोगी पत्रिका थी। बंग महिला, कुंवर कन्हैया जू, किशोरीलाल गोस्वामी, हरिदास माणिक, मुंशी देवीप्रसाद, लक्ष्मीधर वाजपेयी आदि इसमें बालसाहित्य लिखते थे। कहानी, कविता, जीवन चरित्र, इतिहास, शिक्षा संबंधी आदि सभी विषयों पर इसमें लिखा जाता था। पर 'विविध' शीर्षक स्तंभ के अंतर्गत बालकों के स्तर को भुलाकर देश की राजनीति, काशी नागरीप्रचारिणी सभा आदि पर टिप्पणी निकला है—

'इस बार की सूरत कांग्रेस का अंत ही हो गया। कुछ लोगों का कहना है कि इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। कुछ राजनीतिक लोगों का कहना है कि इसका परिणाम देश के लिए बहुत ही भला है।'[2]

हिंदी ग्रंथमाला

०.२२.१ हिंदी ग्रंथ प्रकाशक मंडली, नागपुर द्वारा मासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित होती थी। हिंदी भाषा पढ़ने वालों में देशोन्नति के नूतन विचारों की जागृति करना ही इसका उद्देश्य था। विभिन्न विषय समन्वित इस पत्रिका की भाषा शुद्ध और परिमार्जित है। भारत का इतिहास, अन्य देशों का इतिहास, देशी और विदेशी प्रसिद्ध स्त्री पुरुषों के जीवन चरित, ऐतिहासिक नाटक, उपन्यास, आख्यायिका, विज्ञान, समा-

१. भारतेंदु, फरवरी, सन् १९०६, पृ० १२५।
२. बालप्रभाकर, चैत्र, सं० १९६५, पृ० ३०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोचना तथा भारतवर्ष की तत्कालीन राजनीतिक गतिविधि पर बड़े विचार-पूर्ण तथा समालोचनात्मक लेख होते थे।

आर्यवनिता (१९०६ ई०)

०.२३.१ श्रीमती सुमित्रा देवी के संपादकत्व में 'सरस्वती विलास प्रेस' नरसिंहपुर से मासिक रूप में निकलती थी। इसका उद्देश्य भजन और व्याख्यानादि द्वारा स्त्रीजाति का उपकार था। इसमें अधिकतर भजन इस प्रकार निकलते थे——

टेक ॥ सम्हल सम्हल पग धरि मोरि बहना।
देश बिगाने जाना होगा ॥
सास बिगानी ननद बिगानी।
ससुरा कंत बिगाना होगा।
ना बाबुल न वीर लड़ला
किसको रोय सुनाना होगा।

इसी समय लाहोर से 'भारत भगिनी', जालंधर से 'पांचाल पंडिता' और अलीगढ़ से 'वनिता हितैषी' स्त्रियोपयोगी पत्रिकाएं निकलती थीं।'

हिंदी केसरी (१९०७-१९०९ ई०)

०.२४.१ पं० माधवराव सप्रे के संपादकत्व में यह पत्रिका निकली। सन् १९०९ में अपनी राजनैतिक गतिविधि के कारण बंद हो गई। लोकमान्य तिलक के प्रसिद्ध 'केसरी' पत्र के लेखों का इसमें अनुवाद होता था। सन् १९१५ में यह दुबारा पाक्षिक के रूप में निकली। दुबारा इसके निकलने पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए नवनीत ने इसका अभिनंदन इन शब्दों में किया——

'अत्यंत हर्ष का विषय है कि जिस हिंदी केसरी ने मध्यप्रदेश से गर्जना करके एक बार हिंदी भाषा भाषियों में राजनीतिक जीवन का संचार किया था उसका पुनर्जन्म हुआ है। अबके यह पाक्षिक रूप से निकला है। और इसके संपादक कई पत्रों के भूतपूर्व संपादक गंगाप्रसाद गुप्त हैं। वार्षिक मूल्य २ रूपया रखा गया है। हिंदी केसरी का पाक्षिक निकलना हमें पसंद नहीं है। इसको साप्ताहिक रूप से ही निकलना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए था। तथापि 'अकरणान्मंदकरणं श्रेयः' के न्याय से हिंदी केसरी के वर्तमान स्वरूप का ही अभिनंदन करते हैं।'[1]

इसकी भाषा की आलोचना इस प्रकार करते हुए कहा--

'हिंदी केसरी के संपादक हिंदी जानते हैं और उन्होंने अब यह भी प्रमाणित कर दिया है कि हम उर्दू भी जानते हैं, यही नहीं बल्कि हम हिंदी का शब्दशः अनुवाद भी उर्दू में कर सकते हैं। उदाहरणार्थ पहले ही अंक में पहिले लेख के दूसरे कालम की अंतिम पंक्तियों में एक स्थान पर 'कर्तव्यपालन के लिए' ये शब्द आए हैं। हम नहीं समझते कि हिंदी पाठकों को इन शब्दों का भी अर्थ बतलाने की आवश्यकता पड़ सकती है। परंतु आपने इसका भी अर्थ समझाया है, यथा कर्तव्यपालन करने के लिए-- फर्ज अदा करने के लिए।'[2]

०.२४.२ इस पत्र में स्वयं तिलक भी लिखते थे। वे एक तेजस्वी पत्रकार थे। यद्यपि उन्होंने अपनी सशक्त लेखनी का प्रयोग राजनैतिक जागृति के लिए ही किया पर उसकी अच्छी प्रतिक्रिया हुई। हिंदी के लिए यह परोक्ष वरदान हुआ, उससे हिंदी के अनेक लेखकों ने दृढ़ता से सशक्त शैली में अपने विचार स्वतंत्रतापूर्वक तथा निर्भीकता से व्यक्त करना सीखा।

नृसिंह (१९०७ई०)

०.२५.१ पं० अंबिकाप्रसाद वाजपेयी के संपादकत्व में कलकत्ते से यह पत्र निकलता था। यह एक राजनैतिक पत्र था। पत्र का मुख्य उद्देश्य हिंदी पत्रों की विचलित, विशृंखल राजनीतिक आलोचनाओं की यथा-विधि सांगोपांग समालोचना करना और धीर गंभीर भाव से आलोचित विषयों की गूढ़ गवेषणापूर्वक मीमांसा करना था। इसका नाम ही औचित्य विधायिनी शक्ति के प्रतीक के रूप में लिया गया था।

०.२५.२ मुख्य रूप से राजनैतिक पत्र होते हुए भी हिंदी साहित्य को इसका अवदान कुछ कम न था। देश दशा का चित्रण करते हुए 'स्वराज्य की आवश्यकता' शीर्षक निबंध में व्यक्तिप्रधान, भावात्मक तथा चित्रात्मक शैली का नमूना देखिए --

---

१. नवनीत, ज्येष्ठ, सं० १९७२, पृ० ६२।
२. वही।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'...स्वराज्य के अभाव से ही प्रतिवर्ष ४५ करोड़ रुपये इस दरिद्र देश से इंग्लैंड चले जाते हैं, और इसके बदले भारत में एक कानी कौड़ी तक नहीं आती। जहाँ पाँच करोड़ मनुष्यों को साल भर में एक समय भी पेट भर कर भोजन नहीं मिलता, जिसके पास जाड़े में रात को ओढ़ने के लिए कंवल तक नहीं है, जहाँ के करोड़ों किसान अरहर, उड़द, चना और मूंग वोते हैं पर उसके स्वाद से नितांत अनभिज्ञ रहते हैं, जिन्हें टैक्स देने के लिए वाध्य होकर अन्न वेचना पड़ता है...।'[1]

अंग्रेजों की भेदनीति के प्रति आक्रोश व्यक्त करते समय शैली ऐसी कटाक्षपूर्ण की जाती थीं कि एक वार पाठक भारतेंदु युग में पहुँच जाता है—

'प्रारब्ध से सुसराल भी अच्छी मिलती है। आजकल संध्या के पंडित ब्रह्मवांधव उपाध्याय की प्रारब्ध अच्छी नहीं जान पड़ती। क्योंकि उनकी ससुराल से सिविल मिलिटरी गजट के मि० स्टर्लिंग की सुसराल में वड़ा अंतर है। ससुराल में उपाध्याय जी के 'हाथ में खुरपा वगल में खारा' होगा, पर स्टर्लिंग की ससुराल तो निःसंदेह 'सुख की सार' ही होगी। पुलिस कोर्ट के 'वेटिंग रूम' में उपाध्याय को न वैठने देना तथा काले लड़के के खून का अपराध लगने पर भी स्टर्लिंग का फिटन पर चढ़कर जेल जाना इसका पक्का प्रमाण है।'[2]

०.२५.३ राजनैतिक पत्र होने के कारण इसमें अधिकांश ऐसी ही रचनाएँ छपती थीं, जिनका युगीन चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान हो। इस प्रकार की रचनाओं में तत्कालीन अन्य पत्रों में व्यक्त मानवीयता मुखर हो जाती है—

'हा! हा! इन्होंने सब खो दिया है।
तो भी न आती इनको दया है।
भिक्षाटनों से निज तृप्त धार।
'दे दान दाता' कहते पुकार।'[3]

———————

१. नृसिंह, अंक ४, सन् १९०७।
२. नृसिंह, अंक १, सन् १९०७।
३. वही, अंक ३, सन १९०७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नृसिंह' द्वारा देश के लिये एक राष्ट्रभाषा के प्रश्न को भी महत्व दिया गया। देखिए—

'यदि आज समस्त भारत के लिए सार्वजनिक अथवा राष्ट्रभाषा होती तो विदेशी व्यापार में लिप्त मारवाड़ी भी देश की दुर्दशा का समस्त वर्णन अपने कानों सुनकर परिणाम में सत्यानाशी विदेशी वाणिज्य को तिलांजलि दे देते। इसके सिवाय समस्त देश में एकता उत्पन्न करने के लिए जिन तीन बातों की आवश्यकता होती है, उनमें सार्वजनिक भाषा ही प्रधान है।'[1] (राष्ट्रभाषा)

अभ्युदय (१९०७ से १९१८ ई०)

०.२६.१ पं० मदनमोहन मालवीय के संपादकत्व में साप्ताहिक रूप में निकला। पर बाद में राजनीति से अवकाश न मिलने के कारण इसका दायित्व पुरुषोत्तमदास टंडन पर छोड़ दिया गया। बाद में उन्हें भी समय का अभाव हो गया और पं० कृष्णकांत मालवीय 'अभ्युदय' का संपादन करने लगे। 'अभ्युदय' का महत्व राजनीतिक और साहित्यिक दोनों दृष्टियों से है। उत्तर प्रदेश की राजनीतिक जागृति में इसका पूर्ण योग रहा। इसी भाँति हिंदी भाषा और साहित्य का भी कार्य इसने किया है।

(कमला १९०८ ई०)

०. २७. १ पं० जीवनंद शर्मा काव्यतीर्थ के संपादकत्व में कलकत्ते से प्रकाशित होती थी। सन् १९१६ में येह 'श्रीकमला' नाम से भागलपुर से प्रकाशित होने लगी। विषय वैविध्य की दृष्टि से 'कमला' का भी साहित्यजगत् में महत्वपूर्ण स्थान रहा। कहानी, नाटक, जीवनचरित्र, समालोचना, विज्ञान, भूगोल, इतिहास, पुराण आदि सभी विषयों पर इसमें लिखा जाता था। व्यंग्य चित्रों की दृष्टि से तो यह सरस्वती की अनुवर्ती दिखाई देती है। तत्कालीन रईसों पर एक कटाक्षपूर्ण उक्ति निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

'कुरसी से गिर पड़े तो क्या अमीर ही तो हैं,
बट्टा ये अमीरी में लगाना नहीं अच्छा।

---

१. 'नृसिंह', अंक १, सन् १९०७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई तो सखी होवेगा उठलाय ही देगा,
फिर याँ को हला जी को सताना नहीं अच्छा।
गर आप उठ गए तो फिर इज्जत ही रही क्या,
छोड़ो जी पड़े रहने दो जी उठना नहीं अच्छा।'[1]

०.२७.२ साहित्यिक योगदान की दृष्टि से 'कमला' के सामयिक समाचार में भी साहित्यिक तत्व निहित है जो उस काल के संपादकों और लेखकों की शैली ही बन गई है। बालमुकुंद गुप्त की मृत्यु पर शोक समाचार देते हुए इसकी शैली द्रष्टव्य है—

'अरी अभागिनी हिंदी! तुम्हारी कैसी ग्रहदशा आ पड़ी है। तुम्हारे ऊपर न जाने किस शनि की दृष्टि पड़ गई है कि दिन दिन तुम अपने प्यारे सेवकों को खोती ही चली जा रही है।···इसी शिकार में हमारे 'भारतमित्र' के संपादक बाबू बालमुकुंद गुप्त भी पड़ गये। मानो इस सितंबर की १८ तारीख को उस विचारे के लिए काल ने पहले से ही ठीक कर रखा था। दुष्ट काल ने बेचारे को घर पर भी नहीं पहुंचने दिया वह दिल्ली में ही चटकर गया। हाय! हिंदी मुकुट का एक रत्न क्या हो गया? ओः समझा! धर्मराज ने चोरा लिया। इस दुराचारी काल को क्या ये ही प्यारे थे या इन्हीं का खून मीठा था?···सामाजिक लेख आज बेहोश पड़ा है। जा री। हिंदी। जा। तू बड़ी अभागिन है। आज तेरे भाग्य की परीक्षा हो गई।'[2]

देवनागर (१९०७ ई०)

०.२८.१ श्री यशोदानंद अखौरी के संपादकत्व में तथा 'एक लिपि विस्तार परिषद्' के तत्वावधान में मासिक रूप में निकला। इसके मुख्य पृष्ठ पर इसकी विशेषता का परिचय देते हुए यह वाक्य लिखा है—

'भारतीय भिन्न-भिन्न भाषाओं के लेखों से विभूषित एक अद्वितीय सचित्र मासिक पत्र'।

'इस पत्र का उद्देश्य निम्न पंक्तियों में लिखा हुआ है—

इस पत्र का मुख्य उद्देश्य है भारत में एक लिपि का प्रचार बढ़ाना और वह एक लिपि देवनागराक्षर है।···

---

१. 'कमला', भाद्रपद, सं० १९६४, पृ० १२६।
२. कमला, भाद्रपद, सं० १९६४, पृ० १२९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवनागर का व्यवहार चलाने में किसी प्रांत के निवासी का अपनी लिपि का भाषा के साथ स्नेह कम नहीं पड़ सकता। हाँ यह अवश्य है कि अपने परिचित मंडल को बढ़ाना होगा।'[1]

०.२८.२ 'इस पत्र में साहित्य विषयक रोचक लेख तथा विज्ञान आदि विषय के भी उत्तम लेख प्रकाशित किये जायेंगे। कालांतर में उनका भाषांतर भी कर दिया जायगा। प्रत्येक अंक में किसी न किसी प्रांतिक भाषा के व्याकरण संबंधी लेख अवश्य रहेंगे और कुछ शब्द कोश भी। जिनसे अन्य भाषाओं को समझने में सरलता हो और इस पत्र के पढ़ने में पाठकों का चित्त लगे। पहले इस पत्र को पढ़ने में पाठकों बड़ी सरसता जान पड़ेगी किंतु इसकी दूरदर्शिता, उपयोगिता तथा आवश्यकता का विचार कर सहृदय पाठकगण अनंत भविष्यत् के गर्भ में पड़े हुए पचास वर्ष के अनंतर उत्पन्न होने के शुभ फल की आशा से इस क्षुद्र भेंट को अंगीकार करेंगे।'[2]

'देवनागर' ने विभिन्न भाषाओं के लेखों को एक लिपि का आवरण दिया ही, साथ ही व्याकरण और भाषा विज्ञान संबंधी कुछ अच्छे निबंध प्रकाशित किए। इसका देवनागरी वर्णमाला फलक पर्याप्त वैज्ञानिक और आकर्षक ढंग से प्रकाशित होता था। हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि के संबंध में संपादकीय टिप्पणी सहित सूचनाएँ समय समय पर प्रकाशित होती रहती थीं।

०.२८.३ कविता, कहानी की अपेक्षा इसमें विचारात्मक निबंधों को अधिक महत्व दिया जाता था। यद्यपि इसके लेखकों की संख्या कम थी, तथापि इसमें लिखनेवाले विशिष्ट कोटि के लोग थे। भारत के विश्रुत शास्त्रज्ञ महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा, गणितज्ञ डा० गणेशप्रसाद, पं० शिरोमणि अनंतवायु शास्त्री जोशी, संस्कृतज्ञ पं० अक्षयवट मिश्र, श्री कोकिलेश्वर भट्टाचार्य विद्यारत्न, तथा द्विवेदी युग के विशिष्ट कवि पांडेय लोचनप्रसाद शर्मा प्रभृति का सहयोग इसे प्राप्त था।

---

१. देवनागर, वत्सर १, अंक १, सं० १९६४।
२. वही।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंदु (१६०६ ई०)

०.२६.१ पं० अंविकाप्रसाद गुप्त के संपादकत्व में काशी से प्रकाशित हुई । जयशंकर प्रसाद जी ने 'इंदु' का प्रकाशन 'सरस्वती' के संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रति आक्रोश व्यक्त करने के लिए किया जिससे 'सरस्वती' और 'इंदु' की प्रवृत्ति भिन्न दिशाओं की ओर जाती है। आचार्य द्विवेदी ने विचार और भावना दोंनों ही क्षेत्रों में सामाजिकता, आदर्शवादिता और सांस्कृतिक पक्ष का आग्रह किया है । वे कविता का विषय मनोरंजक और उपदेशपरक मानते हैं । उन्होंने साधारण श्रृंगार वर्णन को प्रतिभा का दुरुपयोग कहा । यही कारण था कि निराला ने जब 'जुही की कली' शीर्षक श्रृंगारिक कविता सरस्वती में छपने के लिए भेजी तो उन्होंने उसे छापने से अस्वीकार कर दिया ।

०. २६. २ साहित्य की समस्त प्रवृत्तियाँ मुख्यत: दो प्रकार की विचारधाराओं से अनुप्राणित होती हैं । एक है वैयक्तिकता को महत्व देनेवाली और दूसरी सामाजिकता को प्रमुख समझने वाली । जब साहित्य में वैयक्तिकता का उत्थान होता है, तो आत्मानुभूति भावात्मकता, सौंदर्याकर्षण, प्रणयोन्माद, नवीन प्रयोगों, स्वतंत्र शैलियों और मुक्तक रूप का विकास होता है । जब सामाजिकता का उत्थान होता है तो वाह्य विषयों का चित्रण, इतिवृत्तात्मकता, नैतिकता एवं मर्यादा का प्रतिपादन, प्राचीन नियमों का प्रयोग और प्रवंध शैली का प्रचलन होता है। 'इंदु' द्वारा प्रसाद ने पहली प्रवृत्ति को अपनाया और 'सरस्वती' द्वारा द्विवेदी जी ने दूसरी प्रवृत्ति का पोषण किया और ये ही दो विरोधी धाराएँ इस युग की प्रमुख दोनों पत्रिकाओं द्वारा अपनायी गयीं ।

०. २६. ३ 'इंदु' के प्रथम अंक की प्रस्तावना में ही 'प्रसाद' ने साहित्य के संवंध में अपना आशय व्यक्त करते हुए लिखा--

'साहित्य स्वतंत्र प्रकृति, सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है। वह किसी की परतंत्रता को सहन नहीं कर सकता । संसार में जो कुछ सत्य और सुंदर है वही साहित्य का विषय है ।'[1]

---

१. इंदु, कला, १, किरण १ सन् १६०६ ई० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रसाद' की इस प्रकृति का पूर्ण विकास कर हिंदी साहित्य जगत् को 'प्रसाद' जैसी अमूल्य प्रतिभा से परिचय कराने का श्रेय 'इंदु' को ही है। प्रतिभा के धनी 'प्रसाद' ने द्विवेदी द्वारा ठुकराये जाने पर 'इंदु' की एक-एक किरण द्वारा ऐसा प्रकाश विकीर्ण किया कि संपूर्ण हिंदी जगत् आलोकित हो उठा। 'इंदु' के ही माध्यम से प्रसाद ने अपने काव्य के द्वारा आधुनिक काव्य के विकास में योगदान दिया। कविता को शृंगार की अपेक्षा सुंदर भाव, कल्पना तथा भाषागत माधुर्य द्वारा सर्वप्रथम इन्होंने रसमयता प्रदान की। 'इंदु' के पृष्ठों पर ही छायावादी काव्य को एक प्रशस्त भूमि मिल सकी है जिसका आधार लेकर 'प्रसाद' ने आगे चलकर 'कामायनी' जैसे महाकाव्य की रचना की। यही नहीं, रहस्यवाद का आरंभ भी 'इंदु' के ही पृष्ठों पर मिलता है। यथा—

'इंद्रियाँ दासी सदृश अपनी जगह पर स्तब्ध हैं।
मिल रहा गृहपति सदृश यह प्राण प्राणाधार है।'[1]
—'मिलन', प्रसाद।

०.२९.४ 'इंदु' (सन् १९०७ से १९१६) तक में प्रसाद की लगभग ११८ कविताएँ हैं जिनमें बंगला के पमार, उर्दू की गजल और अंग्रेजी के सानेट छंदों को लेकर 'प्रसाद' ने हिंदी के क्षेत्र में नए प्रयोग किए हैं। ये कविताएँ कुछ तो अतुकांत और कुछ मुक्त छंद में भी हैं। इनकी भाषा ब्रज और खड़ी बोली दोनों हैं। प्रसाद की छः कहानियाँ 'चंदा'[2], 'पंचायत'[3], 'ब्रह्मर्षि'[4], 'गुलाम'[5], 'चित्तौर का उद्धार'[6] तथा 'ग्राम'[7] भी इस काल में 'इंदु' में निकली जो कहानी के विकास की एक कड़ी थी। इन कहा-

---

१. वही, वैशाख सं० १९७१, पृ० ४१३।
२. 'इंदु', सितंबर १९१० ई०, पृ० ८२।
३. वही, जुलाई १९१० ई०, पृ० १२।
४. वही, मार्च १९१० ई०, पृ० १४।
५. वही, जुलाई १९१४ ई० पृ० ४।
६. वही, अगस्त, १९१४ ई०, पृ० १६७।
७. वही।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियों से 'प्रसाद' के प्रारंभिक भावपूर्ण जीवन की एक झलक हमारे सामने आती है। इस काल में 'प्रसाद' के चार नाटक 'सज्जन',[१] 'प्रायश्चित्त',[२] 'राज्यश्री',[३] और 'करुणालय'[४] इंदु में प्रकाशित हुए। 'प्रसाद' के इन प्रारंभिक रूपकों से उनकी रचना पद्धति पर बड़ा प्रकाश पड़ता है। इन रूपकों में नांदीपाठ और भरतवाक्य की योजना हुई है। यद्यपि प्रसाद की ये प्रारंभिक रचनाएँ ही हैं पर इन्हीं रचनाओं पर 'स्कंदगुप्त' और 'चंद्रगुप्त' 'अजातशत्रु' का सौध निर्मित हुआ। साथ ही यह भी नहीं भूलना चाहिए कि यह द्विवेदीयुग था जब साहित्य की विधा का विकास अवरुद्ध था। भारतेंदु के उपरांत यह कड़ी टूटती सी दिखाई पड़ती है। प्रसाद ही वह व्यक्तित्व है जिसने इस कड़ी को मात्र जोड़ा ही नहीं अपितु भविष्य में नाटक के क्षेत्र में युग के साथ अपना नाम जोड़कर उसे अमर कर दिया।

यह तो हुई 'इन्दु' द्वारा 'प्रसाद' के व्यक्तितत्व के विकास की कहानी। पर इस पत्रिका का मात्र इतना ही साहित्यिक अवदान नहीं रहा। 'प्रसाद' के साथ ही साथ राय कृष्णदास, जो प्रसाद के घनिष्ठतम मित्रों में थे, रामचन्द्र शुक्ल, रुद्रदत्त भट्ट, पारसनाथ त्रिपाठी, कृष्णदेव प्रसाद गौड़, विश्वम्भरनाथ जिज्जा, मैथिलीशरण गुप्त, रामदहिन मिश्र, लोचनप्रसाद पाण्डेय, अखौरी कृष्णप्रसाद सिंह आदि को भी प्रोत्साहित किया।

०.२९.५ समय समय पर 'इन्दु' में कविता के अतिरिक्त संस्मरण, रेखा-चित्र शतशः आख्यायिकाएँ, नाटक, समालोचना तथा इतिहास, विज्ञान, समाजशास्त्र संबंधी अनेक लेख निकले। पत्रिका होने के नाते समाचार तत्व का भी अभाव नहीं था। साथ ही पुस्तक परिचय, विविध विषय संबंधी स्तंभ भी थे। इनके द्वारा तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों पर अपने विचार भी व्यक्त किये जाते थे। कभी-कभी इनमें बड़ी कटु आलोचना भी दिखाई देती है। पुस्तक परिचय स्तंभ में 'हिंदी-सर्वस्व' का परिचय देते हुए उसमें छपे एक लेखकी आलोचना करते हुए लिखा है—

'चैत्र का अंक मेरे सामने है। स्थान स्थान पर कई एक छोटी मोटी भूलें रह गई हैं। नहीं जानता वे भूलें लेखकों की हैं या छापने वालों की। कहीं

१. वही, १९१०–११, पृ० ३३९।
२. वही, १९१४ ई०, पृ० ३९।
३. वही, १९१४ ई०, पृ० ७७।
४. वही, १९१५ ई०, पृ० १२०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'निवेदन' स्त्रीलिंग हो गया है तो कहीं 'स्त्रियें' 'कानों पर डाला' इत्यादि। ऐसे ही और भी कई एक भूलें हैं जिन्हें दिखाना मैं व्यर्थ समझता हूँ।...इन सभों को छोड़कर अब मैं आप लोगों को 'बस आज से अशुद्ध लिखना छोड़ दो' शीर्षक लेख की ओर ले चलता हूँ...इस लेख में लिखा है—'संस्कृत सी भाषा और देवनागरी लिपि आज सारे ब्रह्मांड भर में ढूंढ़ने पर भी न निकलेगी। इसकी प्रतिष्ठा इसी कारण हुई कि जैसा लिखा जाता है वैसा पढ़ा जाता है। लेखक महोदय, लिखा जाता है और पढ़ा जाता है क्रियाएँ किसके अनुसार हुईं[1] ?'

भाषा पर कटु आलोचना कर परोक्ष रूप से भाषा परिष्करण में भी 'इन्दु' का योगदान रहा।

गृहलक्ष्मी (१९०९ ई०)

०.३१.१ पं० सुदर्शनाचार तथा श्रीमती यशोदादेवी के संपादकत्व में मासिक रूप से निकलती थी। यह मुख्यतः स्त्रियोपयोगी पत्रिका थी, जिसमें स्त्रियों के जीवन चरित, गृहप्रबंध, पाकशास्त्र, स्वास्थ्य रक्षा, शिशुपालन, सीना-पिरोना, संगीत, कला, देशविदेश की बातें, विज्ञान की कहानी, मनोरंजक पहेली आदि अनेक उपयोगी स्तंभ थे। स्त्री क्षेत्र में इस पत्रिका का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इन पत्रिकाओं में अपनी रुचि के विषय मिलने के कारण स्त्रियों ने भी पत्रिकाओं में रुचि लेनी प्रारंभ की। घर की चहारदिवारी के घेरे में रहनेवाली अधिकतर स्त्रियाँ शनैः शनैः पढ़ने और लिखने दोनों की ओर प्रोत्साहित हुईं। इस तरह साहित्यिक जगत् का घेरा पुरुषों से स्त्रियों की ओर बढ़ा। यही नहीं, वे पत्रिकाओं का संपादन भी करने लगीं। 'अबलाहितकारक' ने निम्नलिखित पंक्तियों में उन्हें प्रोत्साहित करते हुए कहा—

'हिंदी भाषा में स्त्री-शिक्षा विषयक सर्वांग सुन्दरी उच्चश्रेणी की सबसे सस्ती सचित्र मासिक पत्रिका है।[2]'

चाँद (१९०९ ई०)

०.३१.१ लाला चरणदास के संपादकत्व में लाहौर से मासिक रूप में निकली। विविध विषय समन्वित इस पत्रिका में अधिकतर कहानी पर जोर

१—'इन्दु' १९१५ ई०।
२—अबलाहितकारक, मई १९१२ ई०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जाता था। कहानी, उपन्यास, रेखाचित्र, गद्यगीत कविता आदि से सज्जित इस पत्रिका ने प्रेमचन्द की 'बड़े घर की बेटी[1]' शीर्षक कहानी छापने का सौभाग्य प्राप्त किया है। इसके अतिरिक्त हेमन्तकुमारी चौधरानी, ज्वालाप्रसाद, बालाप्रसाद, शिवनारायण द्विवेदी आदि भी इसमें कहानी लिखते थे।

प्रताप (१९१० ई०)

०.३२.१ श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के संपादकत्व में कानपुर से साप्ताहिक रूप में निकला। मुख्यतः यह राजनैतिक पत्र था। इसका उद्देश्य देश के स्वाभिमान तथा उसकी स्वाधीनता के लिए सर्वस्व निछावर करनेवाले कार्यकर्त्ता पैदा करना था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए तत्कालीन राष्ट्रीय भावना वाले कवियों की रचनाएँ भी देता था। इन कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी प्रमुख हैं। प्रेमचन्द की कहानियाँ भी इसमें निकलती थीं। सन् १९२० में यह दैनिक हो गया।

साधु (१९१० ई०)

०.३३.१ श्री आत्माराम जी के संपादकत्व में बड़ौदा से वैष्णव धर्म का यह मासिक निकलता था। इसमें धार्मिक, शिक्षाप्रद, नीति, विज्ञान, विद्योन्नति, उपदेश प्रश्नोत्तरी आदि विषय रहते थे। साहित्यिक अवदान की दृष्टि से समालोचना के क्षेत्र में परोक्ष रूप से इसने महत्वपूर्ण कार्य किया। उपलब्ध अंक में 'ब्राह्मण सर्वस्व' की आलोचना की गई है। स्थान-स्थान पर कहावतों का प्रयोग द्रष्टव्य है—

'इस समय क्या आपको वृद्धायकाल अधिक प्राप्त होने से 'साठी बुद्धि नाठी' का कलंक लगाया जाय, या आपका कुछ गूढ़ रहस्य है या आप इस बात को टटोलना चाहते हैं कि आज दिन भारतवर्ष में धार्मिक उत्तेजना पर कौन-कौन बद्ध परिकर हैं[2]।'

आजकल जो चित्र प्रायः प्रचलित हैं उनमें पूने के छपे रविवर्मा के और विदेश के छपे होते हैं। परन्तु वर्तमान चित्रों में भाव की बहुत कमी रहती है।

१—चाँद, मई सन् १९११, पृ० २५।
२—साधु, सं० १९६८, पृ० २४९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रकारों में से रविवर्मा के चित्र बहुत प्रसिद्ध हैं। उनमें भी अधिकांश स्त्रियों के हैं। अधिकांश चित्र ऐसे हैं कि जिनमें भाव की गंध भी नहीं है[1]।'

मर्यादा (१६११ ई०)

०. ३४. १ प्रारंभ में पं० कृष्णकान्त मालवीय के सम्पादकत्व में अभ्युदय प्रेस, प्रयाग से यह मासिक निकली। बाद में काशी का ज्ञान मंडल प्रेस इसे प्रकाशित करने लगा। यद्यपि यह पत्रिका 'सरस्वती' के उपरान्त हिन्दी-जगत् में आई, पर शीघ्र ही इसने भी 'सरस्वती' के समान ही अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। यह भी विविध विषय समन्वित पत्रिका थी। उस युग के लगभग सभी प्रमुख लेखक इसमें अपनी रचनाएँ देते थे। महावीर प्रसाद द्विवेदी, चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी,' अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण, मिश्रबन्धु, बालकृष्ण भट्ट, गिरिजाकुमार घोष, बंगमहिला आदि तो लिखती ही थीं, इसके अतिरिक्त मोहनदास करमचंद गांधी, लाला लाजपत राय, सरोजिनी नायडू, रामेश्वर नेहरू, प्रोफेसर यदुनाथ सरकार, मिसेज एनि बेसेन्ट, पुरुषोत्तमदास टंडन आदि उद्‌भट राजनीतिज्ञ भी लिखते थे।

०. ३४. २ इस युग तक आते आते विकास शृंखला में हिन्दी पत्रकारिता कुछ आगे बढ़ी। उसकी विकास की दिशाएँ अधिक स्पष्ट हुईं। धीरे-धीरे परिस्थिति बदली और हिन्दी पत्रकारिता भी साहित्य और राजनीति के क्षेत्र में समान रूप से नेतृत्व करने लगी। भारतेन्दु जी द्वारा चलाया हुआ स्वदेशी भाषा का आन्दोलन इस पत्रिका द्वारा विकसित हुआ। पुरुषोत्तमदास टंडन ने 'भाषा का सवाल'[2] पर एक सशक्त लेख लिखा। देश की परिस्थिति के अनुकूल शिक्षा दी जाने पर जोर देते हुए गांधी जी ने लिखा—

'स्वराज्य का मार्ग शिक्षा में होकर है। चाहे राजनैतिक नेता मि० मांटेग्यू की सेवा में उपस्थित होते रहें पर वास्तविक शिक्षा प्रचार के बिना कोई प्रयत्न सफल नहीं हो सकता।'... ....

...............'वर्तमान शिक्षा पद्धति में हमारी कुटुम्ब प्रथा की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता। शायद संचालक स्वभावतः ही हमारी आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान नहीं देते। मेकाले हमारे साहित्य को घृणा

१—वही, पृ० २१५।
२—मर्यादा, दिसम्बर १६१६ ई०, पृ० २६३।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की दृष्टि से देखता था और यहाँ के निवासियों को धर्मान्ध समझता था……१।'

गांधी जी तथा उनके सहयोगियों के विचारों की स्वतन्त्रता का यह महायज्ञ निरन्तर चलता रहा। इस सर्वतोव्यापी सक्रिय राष्ट्रीयता का प्रभाव इस समय के साहित्य पर भी पड़ा। इसी हलचल में इस समय का सम्पूर्ण साहित्य पनपा। मर्यादा के अंकों में अधिकतर इसी प्रकार का साहित्य आया।

भास्कर (१९११ ई०)

०.३५.१ भास्कर प्रेस, मेरठ से निकलता था। इसके प्रकाशक रघुवीरशरण दुबलिस थे। पत्रिका के मुख्य पृष्ठ पर अक्षरों में 'हिंदी का सर्वोपयोगी मासिक पत्र' लिखा रहता था। धर्म, विज्ञान, शिक्षा और सुधार सम्बन्धी लेख ही इसमें अधिकतर रहते थे। उपलब्ध अंक के लगभग सभी लेख सम्पादक द्वारा ही लिखे गए हैं। कुछ लेख 'चित्रमय जगत' और 'हिन्दू' से लिए गए हैं।

चित्रमय जगत (१९११ ई०)

०.३६.१ पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी के सम्पादकत्व में चित्रशाला प्रेस, पूना से मासिक रूप में प्रकाशित होता था। यह विविध विषय समन्वित पत्रिका थी। पत्रिका का स्तर अच्छा था। कविता, कहानी, गद्यगीत, रेखाचित्र, संस्मरण आदि सभी विषय इसमें निकलते थे। 'आर्त अपील' शीर्षक निम्नांकित कविता में तत्कालीन मानवीयता द्रष्टव्य है—

नहीं रो रहा 'अन्न' 'अन्न' कहता लघु बालक
नहीं पास कुछ रहा, करें क्या उनके पालक
नहीं पेट में अन्न दूध क्यों स्तन में होवे।
मृत बालक ले गये, प्राण जननि न खोवे।'[२]

(जगन्नाथ शर्मा)

बालगंगाधर तिलक के देहावसान पर निकली निम्न कविता भी पत्र के स्तर पर पूर्ण प्रकाश डालती है—

---

१. वही, अक्टूबर, १९१९, पृ० १४५।

२. चित्रमय जगत, अप्रैल-मई १९२० ई०, पृ १०८।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हा ! हन्त !!
क्यों काँप उठी बसुधा दिगन्त ?
क्यों शिथिल पड़ा सागर अनन्त ?
क्यों प्रभाहीन दीपक ज्वलन्त ?
क्यों विलप रही जनता अनन्त ?
क्यों भारत माँ हत ज्ञान व्यस्त
क्या कहा ! 'बाल' रवि हुआ अस्त ?[1]

०.३६.२ जिस समय 'मर्यादा', 'सरस्वती' और 'इंन्दु' जैसी पत्रिकाओं द्वारा हिन्दी साहित्य द्रुत गति से विकास के पथ पर बढ़ा जा रहा है, उपर्युक्त ढंग की कविताओं, अनेक आख्यायिकाओं तथा लेखों के द्वारा 'चित्रमय- जगत' का भी योगदान महत्वपूर्ण रहा ।

मनोरंजन (१९१२ ई०)

०.३७. १ पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा ने शाहाबाद से मासिक रूप में निकाला। यह शुद्ध साहित्यिक पत्रिका थी। अपने समय में बड़ी लोकप्रिय भी थी । इसके दो विशेषांक भी निकले । तीन वर्ष निकलकर यह बंद हो गई ।

प्रभा (१९१३ ई०)

०.३८.१ श्रीयुत् कालूराम जी गंगराठें के संपादकत्व में खंडवा से मासिक रूप में निकलती थी । सन् १९१७ से इसका प्रकाशन श्री गणेश-शंकर विद्यार्थी तथा देवदत्त शर्मा के सपादकत्व में 'प्रताप' प्रेस से होने लगा। यह भी विविध विषय समन्वित पत्रिका थी । इस काल के प्रायः समस्त प्रमुख लेखक इसमें लिखते थे। सन् १९२० में 'निराला' तथा 'इलाचन्द्र जोशी' से भी इसके अंकों के माध्यम से हिंदी जगत परिचित हुआ ।

नवनीत (१९१३ ई०)

०.३९.१ पं० लक्ष्मण नारायण गर्दे के संपादकत्व में ग्रंथ प्रकाशन समिति, काशी से मासिक रूप में निकली । द्विवेदीयुग के साहित्य का विवेचन करने वाले अधिकांश लोगों ने इस युग की मुख्य पत्रिका के रूप में 'सरस्वती', 'इंदु', 'मर्यादा', 'प्रभा' आदि को लिया। साहित्य के विकास में योगदान की दृष्टि से 'नवनीत' का भी कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं है । प्रासंगिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार तथा साहित्य स्वागत शीर्षक पत्रिका के दो स्तंभ बड़े उपयोगी थे। प्रासंगिक विचार में तत्कालीन राजनीति तथा सामाजिक दशा पर स्वतन्त्र दृष्टि से विचार प्रस्तुत करने का 'नवनीत' का अनूठा ढंग था। यथा--

'वेतन की उपयुक्तता पर विचार करने के लिए ही सम्राट ने कमिशन नियुक्त किया था। पर सिविलियनों का वेतन बढ़ाने में इसका मत जानना ही आवश्यक हो गया। कमिशन केवल गरीब भारत सन्तानों के लिए है। इस प्रदेश में प्राथमिक तथा अन्य प्रकार की शिक्षा का प्रचार कुछ भी नहीं हुआ है। यहाँ तक कि जंगली सीमान्त प्रदेश भी स्त्रीशिक्षा के संवंध में युक्त प्रदेश से आगे बढ़ा हुआ है। पर शिक्षा प्रचार के लिए सरकार के पास रूपये नही हैं और सिविलियनों की विलासिता बढ़ाने के लिए हमारी सरकार प्रतिवर्ष ७०।८० हजार रूपये अधिक खर्च करने के लिए तैयार है। यदि अपने मन की ही करनी थी तो सम्राट से कमीशन नियुक्त कराने की क्या आवश्यकता थी।'[1]

०.३६.२ प्रासंगिक स्तम्भ के अतिरिक्त इसमें राजनीतिक लेख भी निकलते थे जिनमें निर्भीकतापूर्वक लेखक अपने विचारों को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र थे। इन लेखकों में बाबूराव विष्णु पराड़कर, सम्पूर्णानंद, गांधी जा आदि थे।

०.३६.३ पुस्तक समीक्षा स्तम्भ के माध्यम से हिंदी जगत को बढ़ाकर तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं तथा पुस्तकों से अवगत कराने का इस पत्रिका ने महत्वपूर्ण कार्य किया। इस स्तम्भ के अंतर्गत पत्र पत्रिकाओं या पुस्तकों के गुण दोषों का विवेचन इस प्रकार किया गया कि पाठक गुणों से परिचित होकर उसे पढ़ने के लिये उत्सुक हों और अपने दोषों से अवगत हो सम्पादक या लेखक उनके परिहार का प्रयास करें। यथा--

'शिक्षादान। इसका दूसरा नाम है 'जैसा काम वैसा परिणाम' लेखक स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट।

भट्ट जी के विचार उनकी भाषा और उनके कार्य से जिन्हें परिचय नहीं ऐसा मनुष्य हिंदी सुशिक्षित समाज में नहीं है। उन्हीं भट्ट जी की पुस्तक की प्रशंसा हम क्या करें, सभी लोग कर रहें हैं। हम इतना अवश्य

१--नवनीत, वैशाख सं० १९७१, पृ० ५५५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहेंगे कि जिन्हें हिंदी की प्रकृति का परिचय पाना हो वे भट्ट जी की पुस्तक अवश्य पढ़े [1]।'

०.३६.४ इस काल के साहित्यिकों को साहित्य का एक प्रकार का नशा छाया हुआ था, यह नशा भी साहित्य के भविष्य के लिए बड़ा मंगलदायक हुआ। शोक संवेदनाएँ तक लोग साहित्यिक भाषा में ही व्यक्त करते थे। यथा––

'इस काल का कोई भरोसा नहीं है। आज हम आपसे बात कर रहें हैं, आगे के मनसूबे बाँध रहे हैं, कल क्या हो जायगा, किसको खबर है? हाय री निर्दयी आशा! तेरे भरोसे आदमी क्या क्या उद्योग करता है, पर तेरे अन्दर इतनी निठुराई भरीं हुई है कि आज जिस हृदय में तू फल फूलकर आनन्द उद्यान लगा देती है उसी को एक एक क्षण में आग लगाकर स्मशानभूमि बना डालती है। कल जिसके नाम पर सारे हिन्दुस्तान को फ़ख्र था आज वह कहाँ है? कहाँ है वह चिराग जो कल बोल रहा था और जिसकी रोशनी में एक दल का दल अपना बीहड़ रास्ता तै कर रहा था ? क्या वह चिराग गुल हो गया? हाँ! जिसपर हमारे देश का दिमाग था वह यहाँ से चल दिया? वह मातृभूमि का सच्चा सेवक हम सबको रुलाकर सदा के लिए चला गया। वह सुहावनी सूरत नैनों की ओट हो गयी। वह चमकता हुआ सितारा अस्त हो गया[2]।'

०. ३६.५ भाषा संबंधी नवनीत का दृष्टिकोण निम्नांकित पंक्तियों में द्रष्टव्य है––

'अपनी मातृभाषा पर प्रेम करना और उसके विषय में अभिमान करना सीखिये। 'यंग मेन्स इण्डियन असोसिएशन' ने देशी - भाषा में एकाध समाचार पत्र निकाले। भाषा सरल हिंदी होनी चाहिए। जहाँ तक हो सके संस्कृत और फारसी शब्दों का प्रयोग करना छोड़ दीजिए। कठिन भाषा लिखने का मोह मत कीजिए। आपके हृदय में जो भाव जैसे उत्पन्न हों उन्हें वैसे ही स्वभाविक रीति से लिखिये––बनावट की जरूरत नहीं। किसी का भी अनुकरण मत कीजिये। कालेज के विद्यार्थियों से उनकी मातृभाषा (हिंदी)

१–वही, पृ० ८२०।
२–नवनीत, फाल्गुन सं० १९७१, पृ० ६५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में छोटे छोटे लेख लिखवाइये। आपकी पाठ्य पुस्तकों में जो कोई चित्ताकर्षक कल्पना और गंभीर विचार आपको दृष्टिगोचर ों उन्हें अपनी मातृभाषा में व्यक्त करने की कभी कभी चेष्टा कीजिये।'[1]

ज्ञानशक्ति (१९१४ ई०)

०.४०.१ श्री शिवकुमार शास्त्री के संपादकत्व में गोरखपुर से मासिक रूप से निकलती थी। इसमें वेदान्त, योग, विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, मेस्मेरिज़्म आदि पर लेख निकलते थे। इसके अतिरिक्त एक 'गल्प' तथा स्त्रीशिक्षा पर एक लेख होता था। स्वतंत्र विचारों वाली इस पत्रिका में तत्कालीन राजनीतिक गतिविधि पर निर्भीकतापूर्वक अपने विचार व्यक्त किये जाते थे। गांधी जी द्वारा चलाए जाने वाले असहयोग आन्दोलन की निरर्थकता सिद्ध करने का प्रयास निम्न पंक्तियों में देखिए--

'असहयोग के सिद्धान्त में यह बहुत बड़ा दोष है कि पहले ही अपने को निर्बल मानना पड़ता है। प्रकृति निर्बलों की रत्ती भर भी सहायता नहीं करती। लोग कहते हैं कि हमलोग एकता के बिना निर्बल हैं। पर बिना एकता के असहयोग भी नहीं ोगा। पर विचार यह कहता है कि एकता और असहयोग में ३६ का संबंध है[2]।'

विश्वमित्र (१९१६ ई०)

०.४१.१ बाबू मूलचंद्र अग्रवाल ने कलकत्ता से दैनिक रूप में निकाला। युग के साथ साहित्य की प्रगति बनाए रखने में इस पत्र ने प्रशंसनीय कार्य किया।

ललिता (१९१८ ई०)

०.४२.१ श्री मुरालीलाल मांगलिक के संपादकत्व में मेरठ से मासिक रूप में निकली। इसका उद्देश्य मुख्य पृष्ठ पर ही लिखा है--

ललिता का है यह उद्देश्य।
हिंदी का प्रेमी हो देश॥

विषय वैविध्य की दृष्टि से इस पत्रिका का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। सिंहावलोकन स्तम्भ में हिंदी की तत्कालीन दशा पर विचार करते हुए भाषा और प्रवृत्ति को लेकर अच्छा कटाक्ष किया गया है--

---

१--नवनीत, माघ सं० १९७१, पृ० २१।
२--ज्ञानशक्ति, नवबंर १९२० ई०, पृ० २७९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'.... कोई व्याकरण का बहिष्कार करता है तो कोई कोष का कायाकल्प करता है। कोई हिंदी की चिंदी निकालता है तो कोई काव्य कलेवर को कलुषित करता है। कोई वर्णविन्यास का विपर्यय करता है तो कोई शैली का सत्यानाश करता है। उल्था करने में भी उलट पलट का चर्खा चलता है। बंगाली की बू, मराठी की महक और गुजराती की गंध से हिंदी का होशहवास गुम है। अंग्रेजी के अंधड़ ने तो और भी आफत ढाई है। मुहावरों का मुँह इस तरह मूड़ा जाता है कि उन्हें मुँह दिखाने का मौका ही नहीं मिलता। नाटक का फाटक बंद है पर उपन्यास का उपद्रव बढ़ रहा है। कोई हिन्दी में बिन्दी लगाता है तो कोई विभक्ति का विच्छेद करता है। कोई खड़ी बोली करता है और कोई ब्रजभाषा का नामोनिशान मिटाने का सामान जी जान से करता है। कोई संस्कृत के शब्दों की सरिता बहाता है और कोई ठेठ हिन्दी का ठाठ बनाता है। मतलब यह कि सब ही अपनी अपनी धुन में लगे हैं। कोई किसी की नहीं सुनता। नाई की बारात में सब ही ठाकुर हो रहे हैं।[1]

(जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी)

ब्रजभाषा के कवियों की शब्दाडम्बर प्रियता की आलोचना करते हुए खड़ी बोली के पक्ष का समर्थन निम्न पंक्तियों में देखिए—

यह ब्रजभाषा के लब्धप्रतिष्ठ कवियों की कविता है। इनका समझना सहज नहीं है। पूर्वजन्म के पुण्य उदय हों तो यह समझ में आ सकती है, अन्यथा नहीं।

तुपक्कै तड़क्कै धड़क्कै महा है। प्रलैचिल्लिकासी
खड़क्कै खरीबैरि छाती भड़क्कै। सड़क्कै गये सिंधु मज्जै गड़क्कै।

भला इसमें वाह्याडंबर, घटाटोप कृत्रिमता के अतिरिक्त और क्या है? राष्ट्रीयता और व्यापकता के लिहाज से बोलचाल की भाषा में कविता लिखना विशेष उपयोगी है। खुशी की बात है कि इसका प्रचार दिनोंदिन बढ़ रहा है और इसके विरोधियों की संख्या घट रही है। जो लोग खड़ी बोली की कविता को योग्य नहीं समझते और पुरानी भाषा में ही—जिसे खड़ी बोली वाले चाहें पड़ी बोली कह सकते हैं—कविता किये जाने का आग्रह करते हैं वे सच पूछिये तो हमारी राष्ट्रभाषा के जानी दुश्मन हैं।[2]

१. ललिता, अक्टूबर १९१८ ई०, पृ० २३४।
२. वही, पृ० २३५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज (१९२० ई०)

०.४३.१ बाबू श्रीप्रकाश जी के संपादकत्व में ज्ञानमंडल प्रेस, काशी से यह पत्र दैनिक रूप में श्री शिवप्रसाद गुप्त जी ने निकाला। आलोच्य काल की बदलती और अग्रसर होती पत्रकारिता में इसने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इस वर्ष अनेक दैनिक पत्रों का आविर्भाव हुआ, जिनमें 'स्वतंत्र', 'वर्तमान', 'दैनिकप्रताप', 'कर्मवीर', 'देश' (साप्ताहिक) 'भविष्य' 'स्वार्थ', 'स्वराज्य' (अर्द्धसाप्ताहिक), 'साम्यवादी', 'लोकमत', 'भावनामा' प्रमुख हैं।

१९०० से १९२० तक की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं का यहाँ संक्षिप्त क्रमवद्ध परिचय प्रस्तुत किया गया है। आलोच्यकाल की बदलती और अग्रसर होती पत्रकारिता की महत्ता इस दृष्टि से है कि इसने अपनी शक्ति और संपन्नता के कारण हमारे विचार और साहित्य में अभिनव क्रान्ति का सृजन किया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम अध्याय

पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी कविता

१.१ कविता

१. १. १. कविता के क्षेत्र में भी आलोच्य-काल के प्रथम दो दशकों को 'भारतेन्दु-युग' का ही प्रसार मानना उपयुक्त होगा। इसलिए कि आधुनिक साहित्य-चेतना का उद्भव भारतेन्दु के 'कवि-वचन-सुधा' पत्र (सन् १८६७ई०) से हुआ था और इन दो दशकों की पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा उस चेतना का विकास हुआ। भारतेन्दु और उनके मंडल के कवि देश और युग की परिस्थितियों, समस्याओं और त्रुटियों से पूर्णतः परिचित थे। उनकी पद्य रचनाओं में युग की समकालीन संवेदना प्रतिध्वनित हुई। इस युग के साहित्य में सुधारों की पुकार है, आर्थिक उत्पीड़न की वेदना है, नैतिक आदर्शों का स्थापन है, राजनीतिक दासता के प्रति असंतोष है, प्राचीन संस्कृति की गरिमा को स्मरण दिलाने का प्रयत्न है, और मनुष्य को उन्नत बनाने वाली नवीनता के ग्रहण का आग्रह है। परिणाम है कि परम्परागत वर्ण्य विषयों की संकीर्ण कारा से काव्यचेतना क्रमशः उन्मुक्त और स्वतंत्र होती गयी। साहित्य के क्षेत्र में आज जिन विचारों का विकास दिखाई पड़ रहा है, देशकाल की परिस्थिति के अनुकूल उसका अंकुर उसी युग में उग चुका था। आलोच्यकाल में प्रस्फुटित नई प्रवृत्तियाँ इसी अंकुर का पल्लवन हैं। भारतेन्दु युग का यह अंकुर इसमें पल्लवित हुआ और यही वृक्ष आगे चलकर छायावाद के रूप में पुष्पित हुआ। इस युग को मात्र इतिवृत्तात्मक रचनाओं का युग कहना तर्कसंगत नहीं है। छायावाद इतिवृत्तात्मक रचनाओं का विरोधात्मक रूप नहीं अपितु विकास है।

१. १. २ कविता की दृष्टि से इस काल की पत्र-पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान है जिसे 'सरस्वती' ने व्यापक स्तर पर पूरा किया। काव्य अब तक गोष्ठी का विषय था पर अब पत्र-पत्रिकाओं के आविर्भाव से वह जनसंपर्क में आया। जनसम्पर्क में आने पर कविता जनता की भी वस्तु बन सकी। पाठक के सुख दुख का भागीदार बनकर ही कवि पाठक के साथ तादात्म्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापित कर सकता है। जब कविता पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जन-जीवन के मध्य आई तो कवियों को विशाल साहित्य क्षेत्र मिल गया। आकस्मिक नहीं है कि इस युग के आरम्भ की मुख्य प्रवृत्ति सुधारों की थी। सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक सभी क्षेत्र में इस समय सुधार की प्रशस्ति पाई जाती है। जनता में देश के प्रति प्रेम तथा विदेशी सत्ता के प्रति क्षोभ के भाव भी प्रकट होने लगे थे। जनसम्पर्क की ओर उन्मुख यह सामग्री हमें नाटकों, कहानियों तथा निबन्धों में भी मिलती है। लेकिन अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम कविता ही थी। कविता को अपनी पुरानी रूढ़ियों से भी अलग होना था। इसकी ध्वनियाँ हमें उन सारी पद्य रचनाओं में मिलती हैं जो लोकतत्व से समन्वित होकर जनसम्पर्क की ओर उन्मुख थीं। इस युग में मनुष्य की सच्ची प्रतिष्ठा पहली बार आँकी गई, जिससे जनवादी विचारधारा का उद्रेक हुआ। इस 'उद्रेक' को पत्र-पत्रिकाओं ने व्यावहारिक स्तर पर आगे बढ़ाया। इन्हीं के माध्यम से गुप्त जी और प्रसाद जी क्रमशः 'सरस्वती' और 'इन्दु' के माध्यम से अधिक जाने गये। केवल 'गुप्त जी' और 'प्रसाद जी' ही नहीं, उस काल के अधिकांश कवियों का परिचय पत्रिकाओं के माध्यम से ही हुआ। परिचय ही नहीं, इनके विकास में भी इन पत्रिकाओं तथा इनके सम्पादकों का बहुत बड़ा हाथ था। श्री रामनरेश त्रिपाठी के इन शब्दों से तत्कालीन पत्रिकाओं तथा उनके सम्पादकों का योगदान पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है--

१. १. ३ 'सरस्वती ही से मुझे पहले पहल खड़ीबोली हिंदी में कविता लिखने की प्रेरणा मिली थी। जब मैं गाँव के मदरसे में दर्जा ४ में पढ़ता था, तब प्रधानाध्यापक के पास 'सरस्वती' आती थी। प्रधानाध्यापक कवि थे और ब्रजभाषा में समस्यापूर्ति किया करते थे। ब्रजभाषा ही उन दिनों की भाषा थी, जो कविता करनेवालों को आप से आप आ जाती थी। मैं भी ब्रजभाषा में समस्यापूर्तियाँ करने लगा था, जो कविता के तत्कालीन मासिकों, जैसे कवींद्र-वाटिका, रसिक रहस्य आदि में छपती थीं। 'सरस्वती' ही में पहले - पहल मैंने 'भारत-भारती' की कविता पढ़ी और मैं भी खड़ीबोली की कविता लिखने को उत्सुक हुआ था। ब्रजभाषा में मुख्यतः शृंगार रस की कविता होती थी। समस्याएँ भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायः शृंगार रस ही की दी जाती थीं। 'भारत-भारती' ने जैसे मुझे हाथ पकड़कर एक नये रास्ते पर खींच लिया।'[1]

१.१.४ इस प्रकार हम देखते हैं कि उस काल में पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से कवियों का जनता में सीधा संपर्क हुआ, जिससे उनमें मानवता के प्रति सहानुभूति जगी और जनता की रुचि से प्रेरणा प्राप्त कर उनका विकास हुआ और उनके काव्य से प्रेरणा प्राप्त कर नये-नये कवियों का निर्माण हुआ, यथा प्रसाद, निराला, पंत, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, राय कृष्णदास आदि।

१.१.५ आलोच्यकाल की पत्र-पत्रिकाओं की कविताओं में प्रयुक्त विषय ही आगे के कवियों का प्रेरणा स्रोत रहा, यथा मानवता की भावना। यही मानवता यदि ध्यान से देखा जाय तो प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रेरणा स्रोत बनी। यथा—

कर रहे नित ही उपवास हैं
विलखते शिशु वालक बालिका।
अति क्षुधावश या स्तन से अहो!
निकलता इक बूंद न क्षीर है।[2]

'हमारी दशा'—कृष्णदास

सामाजिक जीवन के वैषम्य को देखकर आज का प्रगतिवादी कवि भी इसी प्रकार अपना आक्रोश इन शव्दों में व्यक्त करता है—

'श्वानों को मिलता वस्त्र दूध, भूखे वालक अकुलाते हैं।
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़ों की रात विताते हैं॥
युवती की लज्जा वसन वेच, जव व्याज चुकाए जाते हैं।
मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य वहाते हैं।
पापी महलों का अहंकार देता मुझको तव आमंत्रण॥[3]

—दिनकर

बंगाल के अकाल का चित्र उपस्थित करते हुए निराला की वाणी का प्रेरणा स्रोत निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है—

---

१. सरस्वती हीरक जयंती, पृ० ४८।
२. इन्दु, माघ, सं० १९७१, पृ० ११३।
३. हुंकार, दिनकर।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वाप वेटा वेचता है, भूख से वेहाल होकर ।
धर्म धीरज प्राण खोकर, हो रही अनरीति वर्बर ।
राष्ट्र सारा देखता है'

—निराला

'कहीं रो रहा 'अन्न' 'अन्न' कहता लघु वालक ।
कहीं पास कुछ रहा, करें क्या उनके पालक
नहीं पेट में अन्न दूध क्यों स्तन में होवे ।
मृत वालक ले गये, प्राण जननि न खोवे ।'[1]

—जगन्नाथ शर्मा

यही मानवता हमें इस काल के उन कवियों में तव भी दिखाई देती है जब वे विधवा-दुर्दशा से व्यथित, वाल विवाह से खिन्न, स्त्री अशिक्षा से असंतुष्ट और दहेज प्रथा के नाशकारी फल से क्षुब्ध दिखाई पड़ते हैं । यथा——

ठंढी भ्रू कर जन्मपत्र की विध मिलवाई जाती है ।
वर कन्या के बदले में हुण्डी दिखलाई जाती
पूछो तो थैली से थैली 'परणाई' जाती
अपने सुख के लिए बिचारी सुता सताई जाती

'बड़ी के वड़े भाग'[2]

मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, 'हरिऔध', नाथूराम शंकर शर्मा, गोपालशरण सिंह, रूपनारायण पांडेय, सियारामशरण आदि सभी कवि इसी मानवता से संपृक्त दिखाई पड़ते हैं । उनकी यह मानवीय चेतना जीवन के अनाचार, भूख की पुकार और पीड़ितों के हाहाकार से व्यथित हो मुखर हो उठती है——

'कोई आधी सुखी रोटी खाके, दिन को देत बिताय ।
जिनकी आकृति देखि दयालू, दुख के आँसू देत वनाय ।।'[3]

---

१. चित्रमय जगत, अप्रैल-मई, १९२०, पृ० १०८ ।
२. वैश्योपकारक, चैत्र १९६१, पृ० ४९ ।
३. औदुम्बर सं० १९६९, पृ० २९० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विविध रोग पुनः दुख दे रहें
ज्वर तथा क्षय प्लेग विशूचिका
उदर में फिर भूख कराल है
वसन गेह, मलीन महान है ।'[1]

'हमारी दशा', कृष्णदास

मानवता की यही प्रवृत्ति शोषित के ऊपर होते अनाचार को भी देख विक्षुब्ध हो उठी—

'राह चलत हंटर हनिबो कोउ समझत सहज ठठोली है।
कोउ बूट प्रहार करत कोऊ निधरक मारत गोली है।
जबरदस्त की बीसों बिसुवा कोऊ सकत न बोली है।
हा विजयिन ! तव प्रजा मात्र में चहुँ दिस लागी होली है।'[2]

१. १. ६ उपर्युक्त पद्यांशों में चित्रित मानवीयता की जो एक और विशेषता द्रष्टव्य है, वह है इसकी सामाजिक चेतना। इन पद्यों में व्यक्त वेदना सामाजिक है, व्यक्तिगत नहीं। आगे आने वाले युग में छायावाद तथा प्रगतिवाद दोनों में वेदना का चित्रण हुआ है। प्रगतिवाद की वेदना सामाजिकता की ओर झुकी हुई है जबकि छायावाद में उसका वैयक्तिक रूप अधिक है। आलोच्य काल की रचनाओं में प्रगतिवाद की इसी सामाजिक वेदना का बीज अन्त-निहित है। इनकी यह सामाजिकता उस समय और स्पष्ट होती है जब समाज कल्याण में रत किसी नेता की मृत्यु होती है। बाल गंगाधर तिलक के निधन पर कवि की आकुल अन्तरात्मा फूट निकली—

'हा ! हन्त !!
क्यों काँप उठी वसुधा दिगन्त ?
क्यों शिथिल पड़ा सागर अनन्त ?
क्यों प्रभा हीन दीपक ज्वलन्त ?
क्यों विलप रही जनता अनन्त ?

१—इन्दु, माघ १९७१, पृ० ११३।
२—वैश्योपकारक, फाल्गुन १९६२, पृ० २०८।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों भारत माँ हत ज्ञान व्यस्त ?
क्या कहा ! 'बाल' रवि हुआ ग्रस्त ?'[१]

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के दारुण निधन पर प्रगतिवादी कवि भी इसी प्रकार अपनी वेदना व्यक्त करता है—

बापू मेरे...
अनाथ हो गई भारत माता
अब क्या होगा·······।'

१.१.७ इस युग के काव्य में जन-जीवन की प्रतिष्ठा हुई जिससे कवि समाज के कटु यथार्थ के सामने ऐश्वर्य, विलास को तुच्छ समझने लगा। उसने भारतेन्दु युग के व्यंग से मिश्रित एक ऐसे काव्य की सृष्टि की जिसने आगे आने वाली पीढ़ी के लिए एक नया मार्ग ही खोल दिया। यथा—

'है यद्यपि राजा बाबू अपने आवास में।
खस की टट्टी लगी हुई है द्वार पास में।।
है गुलाब जल से सिंचित पंखा भी चलता।
तद्यपि किसी तरह से भी है चैन न मिलता।।'[२]

'खड़ी दुपहरिया', मुकुन्दी लाल

तत्कालीन आधुनिक बाबू का चित्रण करते हुए कवि समाज के मध्यम वर्ग का खोखलापन स्पष्ट शब्दों में व्यक्त कर रहा है—

'यदि भर पेट मिला वस्त्र की तंगी ही रही।
आप बन ठन चुके तो श्रीमती नंगी ही रही।'[३]

जीवन के अनाचार, भूख की पुकार और पीड़ित की हाहाकार से उस युग के कवि का भी हृदय व्यथित हो उठा था—

'उपज फाटै धरती की दिन दिन नाज निर्ताहि महँगाई।
कहा खाय त्यौहार मनावे, भूखे लोग लुगाई।।
सब धन ढोयो जात विलायत, रह्यो दलिद्दर छाई।
अन्न-वस्त्र कहँ सब जन तरसैं होरी कहाँ सुहाई।।'[४]

१—चित्रमय जगत, अगस्त १९२०, पृ० २०३।
२—इन्दु, ज्येष्ठ १९७०, पृ० ५०१।
३—सारस्वत खत्री, सन् १९१८, पृ० ९।
४—वैश्योपकारक, सन् १९०५, अंक १२।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१.१.८ जिस देश में देशभक्त राजद्रोही समझे जाते थे। जहाँ लिखने और बोलने की स्वतन्त्रता नहीं थी वहाँ कवि की मानवता ही इतने स्पष्ट शब्दों में देश दशा का चित्रण करने की सामर्थ्य रखती है—

'सम्पत्ति मेरे घर से अपार
हैं ले गये लूट अनेक वार ॥
रोती न हूँ मैं इस वात से भी।
वो हैं मुझे ख्याल न स्वप्न में भी ॥
ये बाल मेरे मरते अकाल।
होता मुझे है इनका ही ख्याल ॥'[1]

\+ \+ \+

हा ! हा ! इन्होंने सब खो दिया है। तो भी न आती इनको हया है।
भिक्षाटनों से निज तृप्त धार। 'दे दान दाता' कहते पुकार।
है वृत्त ऐसी नित ही जिन्हों की। हो मुक्ति कैसे दुख से उन्हों की।[2]
'जननी की पुकार'

मानवीयता से युक्त यथार्थ चित्रण और जनतन्त्रीकरण की इस प्रक्रिया में पौराणिक कथाओं के निर्वाह में अतिमानवी और चमत्कारी तत्वों से जान बूझकर वचा गया है। 'प्रियप्रवास' में गोवर्धन धारण की व्याख्या से कवि का यथार्थ भूमि पर मानवता की प्रतिष्ठा की ओर झुकाव स्पष्ट है। उस युग में कवियों ने परंपरा से चली आई कथाओं को यदि तोड़ा मरोड़ा तो केवल मानवता से संपृक्त करने के लिए ही। फलतः 'साकेत' में वर्णित राम का स्वरूप एक आदर्श महापुरुष का है, मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम का नहीं।

१.१.९ इस युग के कवियों की मानवता ने युग-युग से सामन्तवाद की कारा में बद्ध वन्दिनी के रूप में पड़ी नारी को भी समाज में अपना स्थान दिलाने का प्रयास किया। 'यशोधरा' और 'प्रियप्रवास' में नारी का महत्व अधिक आकर्षक है। युग युग से उपेक्षित नारी काव्य की नायिका बनकर अपने उत्कर्ष की आभा बिखेरती दिखाई देती है। 'साकेत' की उर्मिला भी आगे चलकर इसी रूप में प्रतिष्ठित की गई।

१—नृसिंह, सन् १९०७।
२—नृसिंह, अंक ३, सन् १९०७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१.१.१० जनतन्त्रीकरण के साथ-साथ सामान्य मानवता के चित्रण के सहारे व्यक्ति का आभ्यन्तर जो शनैः शनैः साहित्य में प्रतिष्ठा पाता जा रहा था, वह प्रकृति के साथ एकाकार होकर पुष्टतर तथा समृद्धतर हुआ। हिंदी साहित्य के आदि युग से ही प्रकृति प्रेम उपेक्षित रहा। प्रकृति की गोचर इन्द्रिय-साक्ष्य-सुषमा को मानव-प्रेम के आलंवन रूप में कवि उपेक्षित करता आ रहा था। इस काल के कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा यह संकेत किया कि अनन्त और चिर सुन्दर प्रकृति में मानव हृदय को आकृष्ट करने की अगाध शक्ति है और कवि का भावुक हृदय यदि उससे दूर रहता है तो वह काव्य के एक प्रमुख आवश्यक वर्ण्य विषय का तिरस्कार करता है। इस काल के अनेक कवियों ने इस वर्ण्यविषय की ओर कला रसिकों का ध्यान आकृष्ट करके काव्य-क्षेत्र में नए पथ का संकेत किया, जो आगत भविष्य में नवीन साधनों और उपादानों के योग से अतीव उत्कृष्ट रूप में विकसित हुआ। श्रीधर पाठक, हरिऔध, प्रसाद, गुप्त जी, रामचंद्र शुक्ल, रामनरेश त्रिपाठी आदि अनेक कवियों ने प्रकृति प्रेम के आकर्षण से अभिभूत होकर उससे रागात्मक संबंध स्थापित किया। अब प्रकृति उद्दीपन मात्र न रहकर आलंबन के रूप में चित्रित होने लगी। ऐसे स्थलों पर द्विवेदी युग का वस्तु-नाम वर्णन मात्र नहीं है, वरन् मानव हृदय का अनुराग प्रकृति को आत्मीय वनाने में संलग्न है। यथा—

'विकलता उसकी अवलोक के, रजनि भी करती अनुताप थी।
निपट नीरव ही मिस ओट के, नयन से गिरता बहु वारि था॥
विपुल नीर बहा कर नेत्र से, मिस कलिन्द कुमारि प्रवाह के।
परम कातर हो रह मौन ही, रुदन थी करती बृज की धरा॥'
'प्रियप्रवास'

यहाँ प्रकृति मानव हृदय के साथ सहचरी बनकर सहानुभूति प्रकट करती हुई हमारे सामने प्रस्तुत है। सन् १९०३ में ही रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रकृति के मानवीकरण का प्रथम प्रयास दिखाई देता है -

करि सिर उच्च कदम्ब रह्यो तू व्यर्थ निहारी,
नहीं गोपिका कृष्ण कहीं तुम छाँह बिहारी।
रे रे निलज सरोज! अजहुँ निकसत लखि मानहिं।
देश-दुर्दशा जनित दुःख चित नेकु न आनहिं॥'[१]

१—सरस्वती, १९०३, सं० ३, भाग ५, पृ० ८१, ८२।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी-कभी इन कवियों द्वारा प्रकृति का बड़ा ही सजीव चित्र उपस्थित किया गया है। यथा—

आयो एक भ्रमर विकसित सरोज पास,
मंजु मकरन्द के सनेह जाल परि के।
तौलौं कुसुमार दिवाकर विदा ह्वै गयो,
मुँदिगो सरोज भौंर ठौरे रह्यो डरि कै।
बीतैगी विभावरी प्रकाश भानु दैहैं तब
जैहौं कहूँ बाहर सुपासों हौं निकरि कै।
सोंचत ही रहिगो उपाय इमि जौं लौं वह
तौ लौं गज तोर्‌यो आय पाँखुरी पकरि कै।[1]

सन् १६०७ में खड़ीवोली में शुक्ल जी का एक प्रकृति-चित्रण और द्रष्टव्य है—

'पीले वसन पर लहराती
अलकैं कपोलों से छुई
कोमल सुमनमय अंग से
छवि छूट कर पड़ती चुई।
जानै नहीं किस धार में
सुध बुध पथिक की बह गई।
बीते अचल दृग से उसे
तो ताकते ही छन कई।'[2]

'वसंत पथिक', रामचंद्र शुक्ल

प्रकृति चित्रण द्वारा विज्ञान और पुराण तथा वीररस और शान्तरस का मेल देखिए—

'मारतंड बानन से वेधित ह्वै वारिधि ने,
कोप कै प्रचंड पौन बाहन बनायो है।
तरल तरंगन को मेघ में बदल दल
बादल को सूर सौंह लड़न पठायो है।

१—मर्यादा, जून १६१५, पृ० ३०४।
२—कमला, चैत्र १६६४, पृ० ३५५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्ग के प्रभाव से सो सीतल ह्वै के
वसुधा के बीच सुधा वारि बरसायो है ।
विग्रह न कीने ते कुबेर यश फैलो जैसे
मेघहु को सुयश चहुँधा छिति छायो है।'[१]

'पावस पंचक' (भगवानदास जायसवाल)

आधुनिक 'नई कविता' के रूप तथा उपमान का संकेत निम्नलिखित पंक्तियो में देखिए—

'ग्रीषम में यह रुक्ष पवन,
ले धूल उड़ाता फिरता था ।
आवारा लड़कों की भाँति
गली गलो टकराता था ।'[२]

'चपला पवन सभोग', महाराष्ट्र महिला

पन्त की भाषा की ध्वन्यात्मकता का रूप निम्नांकित पक्तियो मे निहित प्रतीत होता है—

'सररररर चालै मन्द मन्दा समीरा ।
थरररररर कम्पें तीस मीता शरीरा ॥
घररररर गर्जे मेघ आकाश माही ।
अररररर तभी तू शीत ! यहाँ से न जांही ।'[३]

'शरद स्वागतम्', गुरुदत्त शर्मा, खेतड़ी

१.१.११ इस प्रकार हम देखते है कि इस काल में प्रधान वर्ण्य विषय प्रकृति बन गई । कभी-कभी तो प्रकृति का रम्य रूप कवि को इतना मुग्ध कर लेता है कि वह गद्य में कविता करने लगता था । यथा—

'और यह क्या ? हे देवि । यह कैसा अद्भुत दृश्य ? कहाँ वह श्याम घन में सौदामिनी माला, कहाँ स्वच्छ नील गगन मे पूर्ण चन्द्र, अहा, यह मुझे ही भ्रम हुआ, यही तो तुम्हारा शारदीय स्वरूप है ।'[४]

'प्रकृति सौन्दर्य', प्रसाद

१—मर्यादा, जून १९१२, पृ० ३४३ ।
२—वही, जनवरी १९१३, पृ० १९९ ।
३—वैश्योपकारक, मार्गशीर्ष १९६२, पृ० २६७ ।
४—इन्दु, सन् १९०९, पृ० ९ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सृष्टि की शोभा सुखकारी रसीली ऋतु वसन्त का समागम हो गया। नवीन रचना, नवीन शोभा के नवीन सुखमा की संपत्ति का स्रोत सारे चराचर में बह उठा–शीतल मन्द सुगन्ध पवन का सुखवाही स्पर्श शुभ्र गात्र को आनन्द का पात्र बना चला। निराशा की शीतलता से ठिठुरे और कर्त्तव्य विमुख तुषार के सताये, आलस्य की कुहू में सर्वत्रोभाव से कर्मकारिता का विस्मृति रूपी आच्छादन ओढ़े जो विमुख व्यक्ति थे उनके हेतु प्रभात सी छवि दरसाता, उत्तेजना व उद्दीपन की धीमी गुदगुदी सी लगाता, नैराश्य की निराशा छुड़ाता, प्राचीन दोष का पतझड़ सा कराता सुरस ऋतुराज आज 'अवनि से अंबर से, सकल दिगन्तन से बागन से वन से वसन्त बरसौ परै।'[1] ('वासन्ती शोभा')

१.१.१२ एक ओर इस युग के कवियों के प्रकृति प्रेम ने अवश्य ही आने वाले युग के कवियों में प्रकृति की अनन्त सुषमा को देखने और उसमें रमने की प्रवृत्ति का सर्जन किया, और इसी माध्यम से उनकी वैयक्तिक अनुभूतियों को महत्व दिया, जो छायावादी कवियों की मुख्य विशेषता ही बन गई, दूसरी ओर पराधीनता की कारा में आवद्ध शोषण की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई जटिलता के कारण कवि के अन्तर्जगत् की निराशा ही छायावाद काव्य की विद्रोहिणी स्वच्छन्द धारा के रूप में फूट निकली। कुछ लोगों का मत है कि हिन्दी साहित्य में स्वच्छन्दतावादी भावना का विकास अंगरेजी के प्रभाव से हुआ है। यह भावधारा केवल पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से विकसित हो रही थी, ऐसा नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः प्रारम्भ के सुधारवादी आन्दोलनों से प्रेरणा ग्रहण करने के बाद काव्य जीवन के अधिक व्यापक स्तर पर उतरने लगा। इस युग का साहित्य -जिस मध्य वर्ग से सम्बन्धित है, वह अपनी भावनाओं, आकांक्षाओं तथा आदर्शों को साहित्य में अभिव्यक्त कर रहा था। इसमें प्राचीन परम्पराओं तथा रूढ़ियों के प्रति विरोध की भावना पाई जाती है। कवि और साहित्यकार का ध्यान जीवन के नवीन मूल्यों, आदर्शों की ओर आकर्षित हो रहा था, जिनकी अब तक अवहेलना की गई थी। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, रामचरित उपाध्याय तथा सियारामशरण गुप्त आदि कवियों ने प्राचीन पौराणिक तथा ऐतिहासिक चरित्रों की

१–मर्यादा, नवम्बर १९११, पृ० १४७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवतारणा राष्ट्रीय गौरव की दृष्टि से की है। जिन चरित्रों को सामाजिक आधार पर लिया गया है, वे भी नवीन आदर्शों के अनुरूप हैं। इस काल का अधिकांश काव्य वर्णनात्मक तथा प्रबंधात्मक है, परंतु जैसा देखा जा चुका है कि जीवन और प्रकृति के प्रति कवि का दृष्टिकोण शनैः शनैः बदल रहा था जिसने आगे आने वाले स्वच्छंदतावादी काव्य की भूमिका का कार्य किया। इसका कलात्मक पक्ष आगे के छायावादी काव्य के युग में विकसित हुआ। 'सरस्वती' द्वारा पनपी यह स्वच्छंदतावादी भावना 'इंदु' में मुखर हो उठी। सन् १९०९ ई० में 'इंदु' के प्रथम अंक में ही 'प्रसाद' के स्वच्छंद व्यक्तित्व ने इन शब्दों में आने वाले काव्य की प्रवृत्ति की सूचना दे दी—

'साहित्य का कोई लक्ष्य नहीं होता है और उसके लिए किसी विधि का निबंधन नहीं है, क्योंकि साहित्य स्वतंत्र प्रकृति सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है। वह किसी की परतंत्रता को सहन नहीं कर सकता। संसार में जो कुछ सत्य और सुंदर है वही साहित्य का विषय है। साहित्य केवल सत्य और सौंदर्य की चर्चा करके सत्य को प्रतिष्ठित और सौंदर्य को पूर्ण रूप से विकसित करता है। आनन्दमय हृदय के अनुशीलन में और स्वतंत्र आलोचना में उसकी सत्ता देखी जाती है।'[1]

'प्रसाद' का ही यह साहस था कि उन्होंने ऐसी स्पष्ट तथा विद्रोही वाणी में ऐसी क्रांतियुक्त उद्घोषणा की, जब कि उसी युग में बालमुकुंद गुप्त ने भी स्पष्ट तथा विद्रोही वाणी नहीं पाई थी पर वे भी परिस्थिति की दुर्निवारिता से त्रस्त हो कंसकते दिखाई पड़ते हैं—

'भारत में अब कवि भी नहीं हैं, कविता भी नहीं है। कारण यह है कि कविता देश और जाति की स्वाधीनता से संबंध रखती है। जब यह देश देश था और यहाँ के लोग स्वाधीन थे, तब यहाँ कविता भी होती थी। उस समय की जो बची-खुची कविता अब तक मिलती है, वह आदर की बस्तु है और उसका आदर होता है। कविता के लिए अपने देश की बातें, अपने देश के भाव और मन की मौज की दरकार है। हम पराधीनों में ये बातें कहाँ। फिर हमारी कविता क्या और उसका गुरुत्व क्या? इससे इसे तुकबंदी कहना ही ठीक होगा। पराधीन लोगों की तुकबंदी में

१. इंदु, १९०९, अंक १।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ तो अपने दुःख का रोना होता है, और कुछ अपनी गिरी दशा पर पराई हँसी आती है।'

पर 'प्रसाद' में ऐसी विवशता की भावना नहीं है, उनमें कार्य प्रारंभ करने का दृढ़ संकल्प है। देखिए, निम्नलिखित पंक्तियों में संकल्प कैसे दृढ़तापूर्वक व्यक्त किया गया है--

'शृंगार रस की मधुरता का पान करते करते आपकी मनोवृत्तियाँ शिथिल हो गई हैं, इस कारण आपको भावमयी, उत्तेजनामयी, अपने को भुला देने वाली कविताओं की आवश्यकता है। अस्तु, धीरे-धीरे जातीय संगीतमयी वृत्तिस्फुरणकारिणी आलस्य को भंग करने वाली आनंद बरसाने वाली धीर गंभीर पद विक्षेपकारिणी, शांतिमयी कविता की ओर हम लोगों को अग्रसर होना है।'[1]

१.१.१३ इस प्रकार प्रथम दशक के कवियों का इष्ट शिवं 'प्रसाद' तक आते आते सत्यं और सुन्दरम् बन गया। बंधमुक्त व्यक्तित्व की स्थापना उसका लक्ष्य हुआ। भाव के आनंद से आकुल हृदय के अनुशीलन एवं जीवन और जगत् के बंधनहीन आलोचन में काव्यसत्ता का उन्मुक्त विकास ही उसका कवि-कर्म होगा। भारतेन्दु युग ने रीतिकाल की प्रवृत्ति से हटने का प्रयास किया पर उससे मुक्त न हो सका। बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में 'सरस्वती' के कवियों ने रीतिकालीन बंधनों को छिन्न भिन्न किया पर उसमें काव्यात्मक चारुता और रमणीयता की सृष्टि न कर सके, फलतः कवि की स्वानुभूति व्यक्तित्व-प्रकाशन के लिए यथेष्ट न हो पाई। इस दिशा में नवयुग प्रवर्तक के रूप में कार्य किया 'इंदु' ने। फिर 'इंदु' के पास एक सशक्त शक्ति थी, वह थी 'प्रसाद'। 'प्रसाद' में पथ निर्देशन की अद्भुत क्षमता थी।

१.१.१४ कविता को शृंगार की अपेक्षा सुंदर भाव कल्पना तथा भाषागत माधुर्य द्वारा सर्वप्रथम इन्होंने ही रसमयता प्रदान की। इसके साथ ही यहाँ छायावादी काव्य को एक प्रशस्त भूमिका मिल सकी है जिसका आधार लेकर आगे आने वाली पीढ़ी द्वारा छायावाद का भवन निर्मित हुआ है। प्रसाद की कल्पना की सहज सुकुमारता किस प्रकार आगे आनेवाली छायावादी पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त करती है इसका रूप 'महाराणा के

१. इंदु, सन् १९१०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्व' में ताराओं का हार पहने शाही महल से उतरती चंद्रमुखी चाँदनी के चित्र में देखिए—

'जैसे कोई पूर्ण सुंदरी प्रेमिका।
मंथर गति से उतर रही हो सौध से।'[१]

'महाराणा का महत्व'

प्रसाद की इस प्रारम्भिक क्षमता को देखकर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने भी कहा है–उनकी भावना आरंभ से ही अधिक सूक्ष्म और शृंगारी कवियों की अपेक्षा अधिक परिष्कृत और जिज्ञासामय है। यह जिज्ञासा ही आगे उनके विकास में सहायक हुई।[२]

प्रसाद का कवि हृदय कविता को आनन्द का स्रोत प्रारंभ से ही मानकर चला—

'कविता के आस्वाद करने वाले के हृदय में एक अपूर्व आह्लाद होता है और वह कैसा है? यह व्यक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि जो भावुक है वह अपने अनुभवों को प्रतिवर्तन करने से वा तदनुकूल कविता पाठ करने के समय अपने हृदय को एक वाह्य ज्ञानशून्य होकर एक अथाह आनन्द सिंधु में छोड़ देता है।'[३]

'कवि और कविता' शीर्षक लेख में कवि पुरानी परिपाटी की कविता के प्रति अपना विक्षोभ व्यक्त करता; आ कहता है—

'सामयिक पाश्चात्य शिक्षा का अनुकरण करके जो समाज के भाव बदल रहे हैं उनके अनुकूल कवितायें नहीं मिलतीं और पुरानी कविता को पढ़ना तो मानो महादोष सा प्रतीत होता है, क्योंकि उस ढंग की कविता बहुतायत से हो गई है।'

आगे और कहते हैं—

'हम मानते हैं कि देव और तुलसी की कविता में आप मधुरता विशेष पाते हैं, पर उन्मादकारिणी तथा आपे से बाहर कर देने वाली कविता, आपको कहीं नहीं दिखाई देती। किंतु ठहरो, देखो जब मनुष्य की आंतरिक शक्ति का

१—इंदु, सन् १९१४, पृ० ५६६।
२—'जयशंकर प्रसाद', पृ० ६६।
३—इन्दु, कार्तिक १९६७, पृ० १२३।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ह्रास होता है, तब वह नशा इत्यादि से अपने हृदय को वेगवान बनाना चाहता है[१]।'

१.१.१५ प्रसाद की प्रारंभिक रचनाएँ ब्रजभाषा में ही हैं पर शनैः शनैः उनमें किस प्रकार विकास हुआ इसकी कहानी 'इंदु' की फैलती किरणें बताती हैं। 'इंदु' के इन अंकों द्वारा प्रसाद के काव्य के विकास के साथ कविता के विकास की कहानी भी बताती चलती है। कविता के विकास में इन पत्रिकाओं का कैसा महत्वपूर्ण योगदान है यह भी स्पष्ट होता है। ब्रजभाषा की पुरानी परिपाटी पर चलती हुई कविता किस प्रकार रहस्यवाद और छायावाद के पथ पर आई और इन कविताओं से प्रेरणा ग्रहण कर पंत, निराला, माखनलाल चतुर्वेदी, राय कृष्णदास, सुभद्राकुमारी चौहान आदि भी इस क्षेत्र में अपनी प्रतिभा विकीर्ण करने लगीं यह एक अद्भुत कहानी है।

१.१.१६ 'इंदु' के श्रावण मास १९६७ के संस्करण में 'सांध्यतारा' पर एक कविता निकली जिसमें प्रकृति को काव्य का विषय तो बनाया पर परिपाटी पुरानी है--

'संसार तरंग लखि भीत तिमिजन
निराश हृदय धरि संतापित मन।
शान्ति निशा महिषी को राजचिह्न रूप
तुमहि लखत संध्या तारा शुभ रूप।'[२]

आगे विकास युग में पंत ने भी सांध्य तारा पर ही एक कविता लिखी जो उनके रहस्यवादी रूप का निखार बन गई। प्रसाद और पंत की कविताएँ भाव और भाषा की दृष्टि से कविता ने विकास की कितनी मंजिल तय की इसकी सूचना देती हैं।

१.१.१७ 'इंदु' के दूसरे अंक में भी कवि ब्रजभाषा से मुक्त न हो सका पर क्रमशः प्रकृति चित्रण में प्रौढ़ता आती जा रही है--

'हरित भूमि संकुलित शस्य सों सुरस रम्य बन
तिनमंह विहरत इतउत इंद्र वधूटी गनधन

१--इंदु, श्रावण १९६७, पृ० २३,२४।
२--वही, पृ० ४।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेघ मंडली मंडित अम्बर शुचि राजत
तिनमें दामिनी घटा सलोनी सुघर विराजत।'[१]
'नीरद'

प्रकृति चित्रण करता हुआ कवि शनैः शनैः प्रकृति का मानवीकरण भी करने लगता है—

'टक लाइ सबै दृग फूलन ते
मकरंद भरे असुवाँ कन ते।
तुम देखति हौं केहि आस भरी।
नहीं बोलिति हौं तरु पास खरी।'[२]
'लता'

इस वर्ष कवि खड़ीबोली में भी कविता करने लगता है—

किस धीवर ने यह जाल निराला डाला ?
सीपी से निकली है मोती की माला।
उत्ताल तरंग पयोनिधि में खिलती है
पतली मृणाल वाली नलिनी हिलती है।'[३]

१.१.१८ क्रमशः खड़ीबोली का यह प्रयास सफल होने लगता है। कवि 'हिमगिरि के उत्तुंग शृंग' के सजीव चित्रण में तल्लीन दिखाई पड़ता है—

हिमगिरि का उत्तुंग शृंग है सामने।
खड़ा बताता है भारत के गर्व को॥
पड़ती इसपर जब माला रवि रश्मि की।
मणिमय हो जाता है नवल प्रभाव में॥[४]
'भरत'

१.१.१९ जनवरी १९१५ तक आते आते कवि की लेखनी खड़ीबोली में मँज जाती है और वह 'मधुकर बीत चली अब रात' जैसे गीत का सृजन करता है। साथ ही 'इंदु' के इन्हीं पृष्ठों के द्वारा कवि के रहस्यवादी बन जाने की ध्वनि भी आने लगती है। यद्यपि यह ध्वनि १९१३ से ही शनैः शनैः गूँजने लगी थी। देखिए—

१—इंदु, भाद्रपद १९६७, पृ० ६१।
१—वही, कार्तिक १९६७, पृ० १४५।
३—वही, भाद्रपद १९६७, पृ० ५७।
४—वही, पौष १९६९, पृ० ८५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जिस मन्दिर का द्वार सदा उन्मुक्त रहा है
जिस मन्दिर में रंक नरेश समान रहा है
जिसका है आराम प्रकृति का कानन सारा
जिस मन्दिर के दीप इंदु दिनकर औ तारा
उस मन्दिर के नाथ को
निरुपम निरमय स्वस्थ को
नमस्कार मेरा सदा
पूरे विश्व गृहस्थ को।'[1]

पर प्रियतम का यह अलगाव १९१४ तक मिलन में परिणत दिखाई देता है—

'इन्द्रियाँ दासी सदृश अपनी जगह पर स्तब्ध हैं।
मिल रहा गृहपति सदृश यह प्राण प्राणाधार है।'[2]

१.१.२० इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद और रहस्यवाद दोनों का आरम्भ 'इन्दु' के ही पृष्ठों से प्रारम्भ हुआ। मैथिलीशरण, गोपालशरण सिंह, सियारामशरण सिंह, मुकुटधर पांडेय आदि अन्य कवि भी 'इन्दु' तथा दूसरी पत्रिकाओं द्वारा इस प्रवृत्ति के विकास में सहयोग दे रहे थे। सियारामशरण की 'विनय' तथा 'आत्मसमर्पण' की पंक्तियों में रहस्यवाद की स्पष्ट झलक है। मुकुटधर पाण्डेय भी परम सत्ता की झलक पाने के लिए यत्र-तत्र विकल दिखाई देते हैं। इसी प्रकार की भावना मैथिलीशरण जी में भी कहीं-कहीं उन दिनों व्यक्त होती दिखाई पड़ती है।

सन् १९१८ के पश्चात् कुछ वर्षों तक हिन्दी काव्य-क्षेत्र में इस प्रवृत्ति का चतुर्दिक् प्रसार होने लगा। यथा रायकृष्णदास जी की इस कविता को देखिए—

'आओ उसे लगावें सिर वह है पुनीत कर स्पर्श त्वदीय,
अटल प्रेम योगी होने में होगी वही विभूति मदीय।
फिर इतना संकोच व्यर्थ क्यों बतलाओ जीवन अवलम्ब।
'खुला द्वार' हो भीतर आओ मानो कहा, न करो विलम्ब।'[3]
'खुला द्वार'

१—इन्दु, जुलाई १९१३, पृ० १०५।
२—वही, वैशाख १९७१, पृ० ४१३।
३—वही, माघ १९७१, पृ० १९८।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१.१.२१ किसी प्रेम-पात्र के प्रति प्रेमी हृदय की वेदना के शब्द चित्र गद्य में भी इस युग में व्यक्त करने की परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार के गद्यकाव्य के आविर्भाव और विकास का भी योगदान इन दशकों के हिन्दी साहित्य को रहा। आरम्भिक प्रयासों के रूप में द्विवेदी जी के 'लैंगस्तव राग', 'समाचार पत्रों का विराट रूप' और 'तुम हमारे कौन'[1] गद्य गीत लिखे गये, पर यह आरम्भिक प्रयास मात्र थे। सन् १९०७ में लक्ष्मण गोविन्द आठले का एक ऐसा ही प्रयास देखिए––

'अब प्रकृति देवी ने दूसरा ही रंग पलटा। आपने उस गुलाबी रंग की साड़ी को सितार बजाते-बजाते त्यागना शुरू किया और थोड़ी देर में पीली साड़ी पहनी, फिर क्रम-क्रम से काली साड़ी पहिनना आरम्भ किया। अहा हा, काली सुन्दर चिकनी साड़ी पर सितारे लैस में जड़े थे। मन मुग्ध मतवाले की तरह हम यह प्रकृति का कौतिक देख रहे थे। विरही चन्द्रमा ने भी लाल-लाल आँखें कर मेरी ओर लपकना शुरू किया।'[2]––'प्रकृति देवी का सौंदर्य।'

सन् १९१३ में तोताराम पारगीर में थोड़ी परिपक्व शैली दिखी। साथ ही भावानुभूति भी मार्मिकता प्राप्त करती है––

'हाँ! वह सुन्दर मुख! अहाहा! संध्या समीरण के हिलोरों में आन्दोलन पाने वाली वासन्ती लता के समान शोभायमान वह मोहक मुख···अज्ञान दशा वाले निद्रित बालक के अधर पर सुख स्वप्न से उत्पन्न होने वाले मृदु-मधुर मन्द हास्य लीलोत्सव के समान वह स्वर्गीय सुख··· ·'।[3]

––'पवित्र प्रेम'।

सन् १९१५ की 'इन्दु' में अनेक गद्यगीत दिखाई पड़े। यथा श्री 'अनन्य' की विरह वेदना की अभिव्यक्ति रीतिकालीन परम्परा पर देखिए––

'प्रातःकाल का मन्द पवन मुझे काट रहा है। प्रचण्ड सूर्य का आतप जले पर निमक छिड़क रहा है, दिनभर की तपी हुई धरणी भी मुझे धारण करना नहीं चाहती, शय्या शरण देने में हिचकिचाती है, चन्द्रदेव क्या सचमुच अनल कण गिरा रहे हैं।[4]"

––'विरह धुन'

१––सरस्वती, भाग ५, पृ० ११८।

२––कमला, मार्गशीर्ष १९६४, पृ० २१७।

३––प्रभा, अक्टूबर १९१३, पृ० ३९७।

४––इन्दु, सन् १९१५, पृ० ५४७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी शैली में तत्कालीन देश प्रेम की अभिव्यक्ति जानकी प्रसाद मिश्र ने किया है—

'आज तुम दीन हीन हो गये, तुम्हें अपने पैरों आप खड़े रहने की शक्ति नहीं रही, तुम्हें आज दूसरों का मुंह जोहना, तुम्हें आज लाठी की शरण लेनी पड़ी। तुम्हारी तैंतीस करोड़ सन्तान आज दिन निर्धन है भूखों मर रही है, इसे देख तुम्हें लाज तो अवश्य आती होगी, पर यह दोष तुम्हारा नहीं। दोष है तुम्हारी सन्तान का। तुम्हारे शरीर पर इस समय फटे वस्त्र हैं, पैरों पनही नहीं है, सिर की पगड़ी फटी है, तुम्हारा आज जगह-जगह निरादर होता है, तुम्हारे साथ प्रेम करने वाला नहीं रहा,—ऐसी शोचनीय दशा में, तुम्हें आज देव, तुम्हें चाहने वाले किस देश पुत्र का हृदय शोक से द्रवीभूत नहीं होता होगा? तुम्हारे पुत्र तुमसे प्रेम करना नहीं जानते, वे भोग विलास की वैदेशिक घृणित-वास में लिप्त हो रहे हैं।[1]'—'भारत स्वागत'।

पं० जानकी प्रसाद मिश्र का अलौकिक प्रेमयात्रा के प्रति आत्मनिवेदन निम्नलिखित पंक्तियों में दिखाई पड़ता है—

'इस छोटे से पुष्प को तोड़ लें। देर मत कर। ऐसा न हो कि वह सूख कर झड़ जावे और नष्ट हो जावे। कदाचित् तेरे हार में उसे स्थान न मिले। तू अपने हस्त स्पर्श का कष्ट उठाकर उसे तोड़ ले व इज्जत दे। मुझे यह डर है कि कहीं ऐसा न हो कि दिनान्त होकर पुष्पों के चढ़ाने का समय निकल जावे'।[2]

—गीतांजलि, ब्रजमोहनलाल वर्मा।

१.१.२२ इस युग के अधिकांश गद्यकाव्य किसी प्रेम पात्र के प्रति हृदय की वेदना के ही शब्द चित्र हैं। इस प्रेम का आलम्बन कहीं शुद्ध लौकिक है और कहीं कहीं यह प्रेम पारलौकिकता की ओर उन्मुख है। इन गीतों में गद्य-भाषा की छन्दहीनता, वाक्यविन्यास और व्याकरण संगति है, परन्तु साथ ही पद्य की सी लय और काव्यमय उपस्थापना भी है।

१.१.२३ भाषा, छन्द, शैली :—इस युग की पत्र-पत्रिकाओं की सबसे वड़ी उपलब्धि थी काव्य में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा की। अब तक गद्य के लिए खड़ी बोली तो स्वीकृत हो चुकी थी, पर पद्य के लिए ब्रजभाषा का ही प्रयोग हो रहा था। भारतेन्दु युग के उदारदृष्टि कवि जो गद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली का प्रयोग कर रहे थे, काव्य के लिए भी खड़ीबोली के महत्व को समझने लगे

१—इन्दु, पृ० ५४०।

२ [इ]न्दु, सन् १९१५, पृ० ५५३।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। फलतः कभी-कभी खड़ी बोली में काव्य रचना हो जाया करती थी। अतः कहा जा सकता है कि काव्य के लिए खड़ीबोली का प्रयोग भारतेन्दु युग में ही प्रारम्भ हो गया है, पर उसको पूर्ण स्थान प्राप्त हुआ बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही।

१.१.२४ इस युग में कविता दरबारों और गोष्ठियों से निकल पत्र-पत्रिकाओं तथा कवि सम्मेलनों के माध्यम से सीधे जनता तक पहुँचने लगी थी। अतः उसे जनभाषा अपनाना पड़ा। ब्रजभाषा का क्षेत्र छोटा होता जा रहा था। जीवन से द्रवीभूत काव्य इस युग में आकर मानव-जीवन, देश तथा समाज की समस्याओं को निकट से देखने तथा सुधारने में लगा हुआ था. ऐसे समय ऐसी भाषा की आवश्यकता थी, जो सामान्य जनता तक आसानी से पहुँच सके। पहले इसको अनेक लोगों के विरोध का सामना भी करना पड़ा। पर इस विरोध का परिणाम अच्छा ही हुआ। पहला तो इससे भाषा का निश्चित रूप लोगों के समक्ष आया; दूसरा लोगों के भाषा विषयक इस विवाद में रुचि लेने के कारण पत्रिकाओं को महत्व मिला, उनके पाठकों की संख्या बढ़ी। साथ ही कवियों को खड़ीबोली में कविता लिखकर भाषा की तथा अपनी क्षमता दिखाने का अवसर मिला, जो भाषा के परिष्कार की दृष्टि से उपयोगी ही रहा। भाषा विवाद में 'सरस्वती', 'भारतमित्र', 'हिन्दी बंगवासी', 'समालोचक' तथा 'वैश्योपकारक' ने मुख्य भूमिका निभाई जिससे भाषा के स्थिरीकरण में अप्रत्यक्ष रूप से इनका महत्व भी प्रतिपादित होता है।

१. १. २५ काव्य के क्षेत्र में खड़ीबोली को स्थापित करने के पश्चात् इस युग के कवियों के समक्ष दूसरा महत्वपूर्ण कार्य आया भाषा के परिष्कार का। इस क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण योगदान था 'सरस्वती' का और उसके माध्यम से महावीर प्रसाद द्विवेदी का। द्विवेदी जी के भाषा सुधार के विषय में डा० उदयभानुसिंह का मत है—'द्विवेदी जी ने चार प्रकार से भाषा-सुधार करके खड़ीबोली के परिष्कृत और परिमार्जित रूप की प्रतिष्ठा की। सम्पादक पद से 'सरस्वती' के लेखकों की रचनाओं का संशोधन किया और कराया। अपने पत्रों, सम्भाषणों, भाषणों, भूमिकाओं और सम्पादकीय निवेदनों द्वारा कवियों और लेखकों को उनके दोषों के प्रति सावधान किया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और साहित्यकारों के ग्रंथों की भाषा का भी समय-समय पर संशोधन किया'।[१] इसमें कोई सन्देह नहीं कि आचार्य द्विवेदी ने भाषा सुधार के कार्य में एक युगान्तरकारी महत्व का कार्य किया। 'सरस्वती' में छपने आने वाली रचनाओं का संशोधन देखकर उनके परिश्रम का आकलन भी हो जाता है। पर यहीं पर एक बात और ध्यान देने की है कि भाषा सुधार में जितना योगदान 'सरस्वती' का था उससे कम 'भारतमित्र' का नहीं था। 'भारत-मित्र' के द्वारा बालमुकुन्द गुप्त ने आचार्य द्विवेदी का ध्यान उन त्रुटियों की ओर आकर्षित किया जो 'भाषा और व्याकरण' नामक उनके प्रसिद्ध लेख में रह गई थीं। साथ ही यह भी ध्यान देने की बात है कि आचार्य द्विवेदी ने जिस समय भाषा सुधार का कार्य आरम्भ किया था, उस समय भी उनकी लेखनी से प्रायः वे त्रुटियाँ हुआ करती थीं, जिनके सुधार का कार्य वह स्वयं प्रारम्भ कर चुके थे यथा 'दृष्टी', 'सजुआ', 'निरमाण', 'शोच-विचार', 'निकलैगा', 'मिलैगा' आदि। यदि गुप्त जी ने श्रद्धावश द्विवेदी जी का अन्धानुकरण किया होता और व्याकरण विषयक त्रुटियों की ओर उनका ध्यान आकर्षित न किया होता, तो बहुत सम्भव है कि द्विवेदी जी इतनी तत्परता से न तो अपनी भाषा के सुधार में संलग्न होते और न दूसरों की। इस तरह आचार्य द्विवेदी के भाषा-सुधार के कार्य को पूर्णता तक पहुँचाने का बहुत कुछ श्रेय गुप्त जी को भी है। एक तरफ इन दोनों पत्रिकाओं में वाद विवाद द्वारा भाषा का रूप निश्चित हो रहा था दूसरी तरफ इस युग की अन्य पत्रिकाएँ भी इसमें योगदान दे रही थीं। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो भाषा के स्थिरीकरण तथा रूप निर्धारण में इनकी भी देन कम महत्वपूर्ण नहीं है। यदि सन् १९०० से १९२० तक की विभिन्न पत्रिकाओं के पृष्ठों को उलटा जाय तो स्पष्ट परिलक्षित होता है कि उस काल की पत्रिकाओं के सम्मिलित सहयोग से ही खड़ीबोली परिष्कृत, परिमार्जित होकर काव्य में अपना प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर सकी। 'सरस्वती' के प्रथम वर्ष में ही पं० किशोरीलाल गोस्वामी की खड़ीबोली की कविता छपी जिसमें बोलचाल की भाषा का रूप द्रष्टव्य है---

'मधुर मनोहर हास्य-राशि को
लूट किधर से लाए हो ?

१--महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग, पृ० २०८।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो आए तो बैठो प्यारे !
कहो किधर से आए हो?"[१]

'मलयानिल'

उसी वर्ष छपी द्विवेदी जी की कविता की संस्कृत गर्भित सामासिक पदावली का रूप देखिए—

'भारविरूपी कवि सविता की
कविता विद्वज्जन की प्राण,
अति उद्‌भट, अति अगम, मनोहर,
महाअलौकिक–अर्थ–निधान ।
मुझ अतिशय अल्पज्ञ अज्ञ कृत
यह उसका जघन्य अनुवाद ।'[२]

'द्रौपदी-वचन वाजावली'

१९०१ में 'हे कविते' शीर्षक कविता की भाषा और संस्कृतनिष्ठ तथा सामासिक हो गई–

सुरम्यरूपे ! रस–राशि–रंजिते !
विचित्र वर्णाभरणे ! कहाँ गई ?
अलौकिकानन्द विधायिनी महा—
कवीन्द्र-कान्ते ! कविते ! कहो कहाँ ?[३]

१.१.२६ एक तरफ 'सरस्वती' द्वारा खड़ीबोली की कविता का प्रचार किया जा रहा था, दूसरी तरफ अन्य पत्रिकाएँ भी इस महत् कार्य में पीछे नहीं थीं । उनमें खड़ीबोली के प्रचारार्थ लेख आदि भी निकलते थे। जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ललिता के सिंहावलोक स्तंभ में ब्रजभाषा के कवियों की शब्दाडम्बर प्रियता की आलोचना करते हुए बोलचाल की भाषा खड़ीबोली का पक्ष लेते हुए कहते हैं–

'यह ब्रजभाषा के लब्धप्रतिष्ठ कवियों की कविता है । इनका समझना सहज नहीं है । पूर्व जन्म के पुण्य उदय हों तो यह समझ में आ सकती है, अन्यथा नहीं ।

१– सरस्वती, सन् १९०० ।
२– वही ।
३– सरस्वती, सन् १९०१, पृ० १९९ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुपक्के तड़क्के धड़क्के महा है । प्रलैंचिल्लिकासी भड़क्के जहाँ है ।
खड़क्कै खरी बौरि छानि भड़कै । सड़क्के गये सिंधु मज्जे गड़क्कै ।।

भला इसमें बाह्याडम्बर घटाटोप कृत्रिमता के अतिरिक्त और क्या है? राष्ट्रीयता और व्यापकता के लिहाज से बोलचाल की भाषा में कविता लिखना विशेष उपयोगी है । खुशी की बात है कि इसका प्रचार दिनोंदिन बढ़ रहा है और इसके विरोधियों की संख्या घट रही है । जो लोग खड़ीबोली को कविता के योग्य नहीं समझते और पुरानी भाषा में ही—जिसे खड़ीबोली वाले चाहे पड़ी बोली कह सकते हैं—कविता किये जाने का आग्रह करते हैं ।'[1]

यही नहीं वे पत्रिकाएँ बराबर खड़ीबोली की रचनाओं को अपने अंकों में स्थान भी दे रही थीं जिससे अनेक होनहार कवियों को प्रेरणा मिली पर उनकी रचनाओं के संपादन का कार्य शिथिल था । उनकी भाषा की शिथिलता स्पष्ट परिलक्षित है—

'ज्योनार छोड़ो सुख की रईसो ।
गीतांत की बाट न बीर ! जाहो,
चाहें घना भाग सुरा दिखावे
प्रकाश में सुंदरि नाचती हो ।
प्रासाद छोड़ो, सब छोड़ दौड़ो
स्वदेश शत्रु अवश्य भागे ।'[2]

—'झुकी कमान' ।

सं० १९६४ की 'कमला' में भाषा का थोड़ा मँजा और परिष्कृत रूप दिखाई देने लगा—

'जब अथाह सागर उत्थापित
और तरंगित गुर्राता
अंधड़ आशंका से माझी
सिंधु यान में डर जाता
जलचरावली लहरन में उठ
हाय हाय धीरज खोती

१. ललिता, अक्टूबर १९१८, पृ० २३५ ।
२. चन्द्रधरशर्मा 'गुलेरी', वैद्योपकारक, आश्विन १९६२, पृ० १७८ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निविड़ अँधेरे में मेघों की
रह रह आशंका होती ।'[1]

'आशा' ।

सन् १९११ की मर्यादा में विरहिणी नायिका का परंपरा से हटकर खड़ीबोली में किया गया चित्रण भी द्रष्टव्य है—

तजी हैं फूलों की सेज सुन्दर
बन में आसन जमा रही हूँ
यह बाल यौवन विरह में पीके,
विलाप कर कर गमा रही हूँ ।

× × ×

वियोग के दुःख सहे न जावे
'पिया पिया' कर फटे है हीया
मुझे मेरी मा ने क्यों जन्मते ही
ज़हर का प्याला पिला न दीया ।[2]

'विरहिणी बाला' ।

१. १. २७ इस समय तक आते आते काव्य में भाषा की द्विधात्मक स्थिति समाप्त हो चली, उसमें नये भावों, नई चेतना को प्रश्रय मिला । भाषा की सामर्थ्य और सूक्ष्म से सूक्ष्म दृश्यों और भावों और रूप चित्रण करने की क्षमता 'इंदु' के माध्यम से 'प्रसाद' में दिखाई दी । यथा—

कँपी सुराही कर की, छलकी वारुणी
देख ललाई स्वच्छ मधूल कपोल में
खिसक गई डर से ज़रतारी ओढ़नी,
चकाचौंध सी लगी विमल आलोक को,
पुच्छमर्दिता वेणी भी थर्रा उठी ।
आभूषण भी झन-झन कर बस रह गये ।[3]

इससे पूर्व की रचनाओं में यह भाषा प्रवाह एवं लाक्षणिकता नहीं मिलती, जो हृदय के स्वच्छन्द भावों की अभिव्यक्ति में सहायक हो सके । 'इन्दु' के

१. कृष्ण जी सहाय, कमला, वैशाख १९६४, पृ० ३८३ ।
२. रूपकिशोर शर्मा, मर्यादा, मार्च, १९११- पृ० २२५ ।
३. महाराणा का महत्व, इंदु, १९१४, पृ० ५६६ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंकों में 'प्रसाद' उसके लिए प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं। भाषा में लाक्षणिकता का प्रवेश प्रकृति और मानवीय भावनाओं के पारस्परिक आदान-प्रदान के समय 'प्रसाद' ने बड़ी सफलता से किया है–

'विस्तृत तरु-शाखाओं के वीच में
छोटी सी सरिता की, जल भी स्वच्छ था,
कल–कल ध्वनि की निकल रही संगीत–सी,
आकुल को आश्वासन-सा देती हुई।'[1]

१.१.२८ यदि ध्यान से देखा जाय तो भाषा के परिमार्जन के कार्य में 'इन्दु' का योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं, क्योंकि 'इन्दु' ने ही 'प्रसाद' की प्रतिभा को अभिव्यक्ति का अवसर दिया। सम्भव है यह यश भी 'सरस्वती' को ही मिला होता यदि इसने निराला की 'जूही की कली' का तिरस्कार न किया होता। खड़ीवोली के विकास की शृंखला में इस समय तक प्रसाद का योगदान नगण्य था। वे इस समय तक अधिकतर ब्रजभाषा में ही काव्य रचना कर रहे थे। पर 'इन्दु' ने उन्हें अपनी प्रतिभा के विकास का पूर्ण अवसर दिया। 'इन्दु' ही वह प्रयोगशाला है जिससे होकर 'प्रसाद' 'कामायनी' के चरमोत्कर्ष तक पहुँच सकने में समर्थ हुए। सन् १९०९ से १९२० तक के 'इन्दु' के अंक काव्य-भाषा की दृष्टि से उन विविध सोपानों को प्रस्तुत करते हैं जिसका चरम विकास आगे आने वाले छायावादी युग में दिखलाई पड़ता है। टी०एस० इलियट ने 'क्लासिक' पर विचार करते हुए भाषा के सम्बन्ध में लिखा है कि 'किसी युग में भाषा रूपायित होते-होते एक विन्दु पर पहुँचती है, और श्रेष्ठ कवि में चरमोत्कर्ष प्राप्त करती है, क्योंकि वह अपनी प्रतिभा से भाषा की तद्युगीन सम्भावनाओं को निःशेष कर देता है।' भाषा के चरमोत्कर्ष की इस दृष्टि से प्रसाद की 'कामायनी' एक क्लासिक कही जायगी।

१.१.२९ काव्य कला की दृष्टि से भी इस युग की पत्रिकाओं का योगदान कम नहीं है। इस युग में काव्य साहित्य के तीनों प्रमुख अंगों—प्रवन्ध, मुक्तक और गीति—का विकास हुआ। इस युग के काव्य को उसकी सम्पूर्णता में देखा जाय तो सबसे प्रधान स्वर सामयिकता का ही मिलेगा। देश का अतीत गौरव और वर्तमान दुर्दशा लगभग सभी कवियों की विषयवस्तु थी। यह भारतेन्दु युग की मूल्यवान विरासत थी। कवियों ने इसे काल-प्रवाह के प्रसंग में देखना और

१–'महाराणा का महत्व', इन्दु, १९१४, पृ० ५६६।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझना प्रारम्भ किया था। 'हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी' में हमें नवयुग में आई आनुक्रमिकता सहज ही देखने को मिल जाती है। इसी कारण यह आकस्मिक नहीं था कि छोटी बड़ी कथाओं को लेकर इस युग में पर्याप्त प्रबंध रचना हुई।

१.१.३० इस युग में मुक्तक सम-सामयिकता और नई नैतिकता के स्वर से झंकृत थे। रीति काल में मुक्तकों की प्रधानता थी। 'रीतिकाल में यह दरबारों के लिए लिखा जाता था, उन्नीसवीं शताब्दी में कवि सम्मेलनों और कवि दरबारों की यह शोभा थी और बीसवीं शताब्दी में मासिक और साप्ताहिक पत्रों में इसके दर्शन होते हैं[1]।' इससे यह निष्कर्ष निकालना सहज है कि इस युग में जिस नये मुक्तक की सृष्टि हुई वह श्रीमंतों की वाहवाही लूटने के लिए नहीं, बल्कि कवि और पाठक में सम्बन्ध स्थापन के लिए थी। स्वतन्त्र रूप से प्रकृति वर्णन, युगबोध, और जीवन की विलष्ट भावनाओं को अभिव्यक्ति देने के विचार से इन कवियों ने मुक्तकों का प्रयोग किया जिसमें प्रायः गीत तत्व भी रहता था। ये कवि इन गीत मुक्तकों के माध्यम से शुद्ध सात्विक प्रेम, लौकिक और पारलौकिक दोनों को ही, अपना काव्य विषय बना रहे थे। गीति का विकास कवि व्यक्तित्व के विकास का अगला सोपान है। वह साहित्य में जनतन्त्रीकरण की प्रवृत्ति की उस मंजिल की सूचना देती है, जहाँ कवि प्रकृति और परम्परा को आत्मसात् करके अपनेपन की खोज में तत्पर होता है और अपने एक निश्चित व्यक्तित्व के निर्माण का प्रयत्न करता है। यहीं से वास्तविक स्वच्छन्दतावाद का प्रारम्भ होता है जो परवर्तीकाल की प्रवृत्ति है। हिन्दी-क्षेत्र का लोक मानस सदा से पदों, गानों, गजलों और राग-रागिनियों से तरंगायित रहा है। इन्हीं में काट छाँट कर इन कवियों ने अपने लिए एक नया मार्ग निकाला जो कि अध्यांतरिकता का आश्रय पाकर उत्तरोत्तर प्रशस्त होता गया।

१.१.३१ छन्द की दृष्टि से इस काल में अनेक प्रयोग हुए। जहाँ एक ओर खड़ीबोली में कवित्त, सवैयों के द्वारा पूर्ण रस बोध कराने का प्रयास हो रहा था, वहीं परम्परा विहित छन्दों में ही सत्यनारायण 'कविरत्न' और 'रत्नाकर' के द्वारा नया भावोन्मेष ले आया जा रहा था। प्रसाद ने एक तरफ कवित्त और सवैयों को अपनाया तो दूसरी ओर बंगला के 'पयार' और 'त्रिपदी' छन्दों का प्रयोग किया। यही नहीं, उन्होंने उर्दू की गजल और अंग्रेजी के सानेट का भी प्रयोग किया। यथा—

१—डा० कृष्ण लाल, 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास', पृ० ९२।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिशिर कणों से लदी हुई, कमली के भींगे हैं सब तार
चलता है पश्चिम का मारुत लेकर भी बर्फों का भार
भींग रहा है रजनी का भी, सुन्दर कोमल कबरी भार
गर्म किरण सम कर से छू लो, खोलो प्रियतम खोलो द्वार।[1]

'खोलो द्वार'

छंदों के इन विभिन्न प्रयोगों के द्वारा इस युग में जो काव्य कला का संस्कार हुआ भविष्य के छायावादी कवियों ने उसका पूर्ण लाभ उठाया।

१– 'इन्दु', पौष १९७१, पृ० ५८।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय अध्याय

कहानी का अभ्युदय : पत्रपत्रिकाओं की भूमिका

२. १. १ बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशक हिन्दी कथा-साहित्य के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इस संक्षिप्त काल में ही हिन्दी साहित्य की इस विधा की जो वेगवती, अप्रतिहत एवं बहुमुखी प्रगति हुई वह अभूतपूर्व है। घटना-प्रधान तथा कथा–प्रधान कहानियों से प्रारम्भ करके सूक्ष्मतम चरित्र तथा भाव सृष्टि की मजिल तक पहुँचाने का महत्तम कार्य इन्हीं दो दशकों की पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा हुआ। इन कहानियों में देशकाल के स्थूल इतिवृत्तात्मक वर्णनों से आगे आकर वातावरण का सजीव संश्लिष्ट चित्रण किया गया है। आज मात्र कहानियों द्वारा ही वर्तमान जटिल जीवन के विभिन्न पक्षों की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक सफलता एवं यथार्थता के साथ सरसतापूर्ण ढंग से सम्भव हो सकी और यह तथ्य सर्वस्वीकृत सा हो गया है कि सामयिक जीवन का प्रतिनिधित्व चन्द मिनटों में मनोरंजनात्मक ढग से प्रस्तुत करने की क्षमता साहित्य के इसी रूप को उपलब्ध है।

वस्तुतः वह परिवर्तनकालीन समाज में उपजा कला-रूप है। बदलने और बीतने की अनुभूति ने आधुनिक कहानी को जन्म दिया है। उसका घटना तत्व विना वास्तविक जीवन से संयुक्त हुए कोई मूर्त रूप नहीं ले सकता। इसी विन्दु पर वह उपन्यास के साथ आवश्यक रूप से जुड़ी हुई है। उपन्यास विस्तृत जीवन के परिवर्तन और गति को व्यजित करता है जबकि कहानी किसी एक स्थिति के बीतने या रूपांतरित होने की सूचना देती है। इसीलिए कहानी जैसा चुटीला अन्त न सदैव संभव है न आवश्यक।

२. १. २ हिंदी कहानी की उत्पत्ति तथा विकास बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों की पत्र-पत्रिकाओं में हो चुका है। हिंदी की प्रथम कहानी किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'इंदुमती' (सन् १९०१),[1] रामचंद्र शुक्ल कृत

१. सरस्वती, भाग १, संख्या ६, १९०० ई०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ग्यारह वर्ष का समय' (१९०३)[1] तथा वंग महिला कृत 'दुलाई वाली' (१९०७)[2] से लेकर राधिकारमण सिंह की 'कानों में कँगना' (१९१३)[3], विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' की 'ताई' (१९२०)[4] तथा चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की 'उसने कहा था' (१९१५)[5] तक की मंजिल इन्हीं पत्र पत्रिकाओं में पूर्ण हुई। इस स्थूल तथ्य में बहुत सी सूक्ष्म बातें निहित हैं। प्रथम तो यह कि पत्रिका का अंश होने के कारण कहानी को स्वतंत्र रूप से व्यावसायिकता की कसौटी का सामना नहीं करना पड़ा। 'सरस्वती' और 'इंदु', मूलतः जिनके माध्यम से कहानी का विकास हुआ, विविध विषय संबंधित पत्रिकाएँ थीं और अपनी समग्र सामग्री के आधार पर शिक्षित समाज में आदर के साथ पढ़ी जाती थीं। कहानीकार इस अर्थ में प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र थे। बरबस मनोरंजकता की झड़ी लगाना या सीधे उपदेश करना उनके लिए आवश्यक नहीं था। दूसरी बात यह है कि पत्र-पत्रिकाओं के ग्राहक नियमित पाठक होते थे, अतः वे शिक्षित थे। इन्हीं शिक्षित पाठकों की प्रेरणा के फलस्वरूप ही 'गुलेरी' जी की 'उसने कहा था' जैसी श्रेष्ठ कलात्मक कहानी की रचना संभव हो सकी। तीसरी बात यह थी कि निबंध, नाटकों और वाद-विवाद की रंगस्थली रह चुकने के कारण पत्र-पत्रिकाओं की भूमि कहानी के संचरण के लिए बहुत स्वाभाविक थी। फलतः इस काल की लगभग सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं—इंदु, मर्यादा, सरस्वती, स्वदेश बान्धव, हितकारिणी, प्रभा, चाँद, कमला, श्रीकमला, लक्ष्मी, ज्ञानशील, अबका हितकारक, चित्रमय जगत, बालप्रभाकर, प्रताप, भारत जीवन, भारतभानु, भारतेंदु, वैश्योपकारक, सारस्वत खत्री, मनोरमा, स्त्री दर्पण आदि—में कहानियाँ निकलती थीं जो इस बात का भी सूचक है कि पाठकों में उस प्रारंभिक युग में ही साहित्य की इस विधा की ओर कितनी रुचि थी।

---

१. वही, १९०३ ई०।
२. वही, १९०७ ई०।
३. इंदु, कला ४, खंड २, किरण ५।
४. सरस्वती, १९२० ई०।
५. वही, १९१५ ई०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. १. ३ यद्यपि माना यह जाता है कि हिंदी में संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी तथा बँगला के प्रभाव से कहानी का आविर्भाव हुआ है, यही नहीं, कुछ लोगों की तो यह भी मान्यता है कि किशोरीलाल गोस्वामी कृत हिंदी की प्रथम कहानी 'इंदुमती' पर शेक्सपियर के 'हैमलेट' की छाया है, पर उस काल की लगभग १००० पत्रिकाओं में लिखित (जितनी मुझे उपलब्ध हो सकीं) लगभग २५० कहानियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि उस युग में पाठकों की कहानियों के प्रति रुचि थी जिसने अनेकानेक लेखकों को भी लिखने की प्रेरणा दी। पर इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इसके पहले पाठक कहानी से अनभिज्ञ थे और एकाएक किसी एक नई चीज के प्रति आकर्षित थे। कहानी कहने सुनने की प्रवृत्ति शायद मानव में आदिकाल से ही चली आ रही है। विगत में घटित किसी घटना के कार्यकारण के प्रति जिज्ञासा मानव की सहज प्रवृत्ति है। अभी भी बालक में यह सहज प्रवृत्ति देखी जा सकती है। कभी यह घटना बाह्य होती है, कभी आंतरिक भी हो सकती है। दोनों के प्रति ही सहज कौतूहल स्वाभाविक है। और यही कौतूहल की भावना है कहानी के उद्‌गम का मूल कारण। हिंदी साहित्य के आरंभ में पद्य की प्रधानता के कारण इस विधा का अभाव था। फिर भी परोक्ष रूप से लोकजीवन में यह धारा विद्यमान थी। इस धारा को हम लोकजीवन में प्रचलित रूपकथा, हास्यकथा, व्रतकथा, गीतकथा आदि में देख सकते हैं। ये कहानियाँ उपदेशात्मक तथा मनोरंजनात्मक अधिक थीं। इनमें देवता, पृथ्वी, आकाश, आत्मा तथा परलोक, शकुनों, अपशकुनों, भविष्यवाणियों, आकाश-वाणियों तथा कभी कभी भूतप्रेतों तथा अन्य शक्तियों को लेकर काल्पनिक कथाएँ भी गढ़ी गई हैं, पर इसके द्वारा एक बड़े तथ्य की पुष्टि होती है कि कहानी मानव जीवन के मनोरंजन का साधन आदि काल से ही रही।

२. १. ४ बीसवीं शताब्दी के आरंभ में प्रेस, संचार, यातायात आदि की सुविधा से जब हिंदी जगत् के लोगों का संपर्क अंग्रेजी, बँगला तथा अन्य भाषाओं के साहित्य से हुआ तो साहित्य की इस विधा को भी रूप मिला, पर प्राणशक्ति मिली इन्हीं लोक-कहानियों से ही। इस समय प्रायः समस्त हिंदी कहानीकारों की पहली मौलिक रचनाएँ इन्हीं लोक-कहानियों की प्रतिमाएँ थीं; उदाहरणार्थ लाला पार्वतीनंदन की कहानियाँ 'प्रेम का फुआरा', 'जीवनाग्नि', 'भूतों वाली हवेली', 'नरक गुलजार' आदि स्पष्ट रूप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से इन्हीं लोककहानियों की प्रेरणा शक्ति से लिखी गई हैं। 'प्रेम का फुग्रारा' में प्रेम का चमत्कार है। लोक कहानियों की भाँति इसका भी विकास जादू और कौशल से किया गया है। 'जीवनाग्नि' में लोक कहानी के राजा रानी, राजकुमार शैली की प्रेरणा हैं। 'भूतों वाली हवेली' और "नरक गुलजार' में भूत-प्रेतों और अंधविश्वासों के धरातल पर निर्मित कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ लोक कहानियों के बहुत समीप हैं। इसी तरह जासूसी कहानियों के भी उद्गम के सूत्र इन्हीं लोक-कहानियों में हैं। शुक्ल जी की 'ग्यारह वर्ष का समय' भी प्रेमात्मक लोक-कहानियों से बहुत प्रेरित है— दो अनजाने, बिछड़े हुए पति-पत्नी का एकाएक खडहर में मिलना, कहानियाँ कहना, पहचान जाना और दोनों का आदर्श संयोग, ये सब लोक-कहानियों के तत्व हैं। इस प्रकार सामाजिक आदर्श, स्नेह, करुणा के मूलमंत्रों की दीक्षा इन्हीं कहानियों ने हिन्दी के आदि कहानीकारों को दी हैं। लोक कहानियों से विशुद्ध कलात्मक प्रेरणा हिन्दी कहानियों को भले ही न मिली हो लेकिन विशुद्ध भावात्मक प्रेरणा इसे निश्चित रूप से मिली है।

२.१.५ आधुनिक कहानी इस दिशा में इतनी विशाल परम्परा की उत्तराधिकारी होकर भी अपने पैरों पर खड़ी होने का दावा कर सकती है। अपने शैशव काल में इसने थोड़ा विजातीय सहारा लिया पर शनैः शनैः इसमें एक सर्वथा नई पद्धति का विकास हो गया। हिन्दी की प्रारम्भिक कहानी में एक साथ ही संस्कृत महाकाव्यों की वर्णन-परम्परा, उर्दू का चुलबुलापन तथा वृहत् कथानकों की ढीली विलम्बित शैली देखने को मिलती है। नासिकेतोपाख्यान या 'प्रेमसागर' की कृष्ण-सम्बन्धित कहानियाँ अपनी वस्तु तथा अभिव्यंजना में परम्परा प्राप्त थीं, इनके लेखकों में किसी भी प्रकार की मौलिकता का अभाव है। इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' पर पौराणिक शैली की जगह मध्यकालीन किस्सागोई की छाप थी, कहानी में प्रवाह का पूर्ण अभाव है। कुछ लोगों ने इसे हिन्दी की प्रथम कहानी माना है। रामबहोरी शुक्ल ने अपनी स्वकृति देते हुए कहा—

'रानी केतकी की कहानी' के आठ पृष्ठ भूमिका के हैं और कम से कम छः सात पृष्ठ गीतों और पद्यों के निकल जाते हैं। इस प्रकार यह कहानी भी यदि आधुनिक ढंग से कही जाय तो बीस पृष्ठों में आ जाएगी। जहाँ तक पुरानेपन का विचार है, प्रेमचन्द की कहानियाँ भी बहुत सी इसी शैली में लिखी गई हैं। अतः हमें यही मानना चाहिए कि यह मौखिक परंपरा थी—जो परम्परा बड़ी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीर्घ है—लिखित कहानी है, परन्तु है वह कहानी ही उपन्यास नहीं है, क्योंकि अनेक और विविध कथानकों का उसमें समावेश नहीं और न परिस्थियों के ही चित्रण की व्यापकता है। अतः हिन्दी कहानी के लिखित रूप का प्रारम्भ 'रानी केतकी की कहानी' से ही मानना चाहिए।[1]

२.१.६ इन कहानियों में सामाजिक तटस्थता तथा तत्कालीन स्थितियों से एक बिलगाव व्यक्त होता है। यह बिलगाव दूर हुआ भारतेन्दु युग में। इस युग में यद्यपि 'कहानी कला' जैसी किसी वस्तु का प्रादुर्भाव नहीं हुआ, किन्तु लघु कथानकों की वस्तु में आश्चर्यजनक परिवर्तन दृष्टिगत होने लगता है। राधाचरण गोस्वामी की 'यमलोक की यात्रा', भारतेन्दु की 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न', 'महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर को दिया गया उत्तर', 'चूमा पैगम्बर' आदि रचनाएँ अन्योक्ति पद्धति की सफल कहानियाँ थीं, जिनकी कथावस्तु पूर्णतः नवीन आधारों पर गठित हुई है। यहाँ हम आधुनिक कथा को एक साथ ही महाकाव्यों तथा पुराणों की परम्परा से अलग नवीन दिशा में बढ़ते देखते हैं। कलाकार का स्थिति से बिलगाव दूर हुआ और वह उसका मुखर हो उठा। पुरानी उपदेशात्मकता तथा गम्भीरतम आकृति के स्थान पर स्वच्छ व्यंग्य का आविर्भाव हुआ जो युग की सबसे बड़ी विशेषता थी। अन्योक्ति पद्धति पर कही गई कथा यद्यपि थी यमलोक की या स्वप्नलोक की, किन्तु सचाई यह थी कि लेखक एक क्षण के लिए भी दुनियाँ के कटु यथार्थ से तटस्थ नहीं हुआ था।

२.१.७ जिस अर्थ में बाद में कहानी को लिया गया उसमें ये कथाएँ अब भी आती नहीं थीं। शैली की दृष्टि से अब भी हिन्दी कहानी आधुनिक अर्थ में पीछे थी। इस दृष्टि से पाश्चात्य कहानी काफी आगे थी, चरित्र विकास की जगह वहाँ जीवन के खण्डों पर प्रकाश डालने की बात जोर पकड़ रही थी। वस्तुतः कहानी के छोटे कलेवर का ध्यान रखते हुए उसे उपन्यासों या प्रबन्ध काव्यों की कथात्मक पूर्णता के विशाल कार्य से पृथक् रखना ही था। शैलियों की अपनी क्षमता के अनुसार अपने प्रकटीकरण के तरीके होने चाहिए, यह बात विश्वास के साथ वहाँ मानी जाने लगी थी। इसीलिए एच०जी०वेल्स ने जब कहा कि कहानी भयकर, रोमांचक चाहे जो कुछ भी हो पर उसे यह सब बीस मिनट में ही होना है, तब उसका तात्पर्य कथा से अधिक उसमें निहित धक्के से ही था। ऐसी हालत में कथा उतनी महत्वपूर्ण नहीं रहती जितनी कही जाने की बात। पश्चिम में चरम की यह प्रतिक्रिया कहानी के उन निर्माताओं के

१–हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, पृ०२९१-९२।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरुद्ध थी जिन्होंने उपन्यासकार की आँख से इसे देखा था। स्काट, डिकेन्स आदि कहानी लेखक पहले उपन्यासकार थे, कथाकार बाद में, कहानीकार तो वे एकदम अन्त में थे। इसलिए कहानी से अनपेक्षित आशाएँ उन्होंने कर ली थीं। इन्हीं में एक आशा चरित्र-चित्रण की भी थी। यही गलती बाद के मनोवैज्ञानिक तथा 'चेतना का प्रवाह' लेकर आने वाले लेखकों ने भी की। वर्जीनिया वुल्फ तक यह बात दुहराई गई थी। इसके प्रतिक्रिया में चेख़व ने एक स्थान पर कहा कि 'लेखक को मालूली चीजों के बारे में ही लिखना चाहिए। किस तरह पीटर सेमिओनोविश ने शादी की, बस।' कहना यदि है तो उसे कहीं भी कहा जा सकता है। प्राचीन रोमांचक कथानकों तथा उच्चवंश प्रभव नायकों की प्रतिस्पर्धा में यह वहुत बड़ा पग नई पीढ़ी ने उठाया था। व्यक्ति के स्थान पर वस्तु की स्थापना पूर्णत: नई चीज थी। शैली की दृष्टि से यह उपन्यासों से भी आगे एक पग था। 'जीवन मर्म' के उद्घाटन की जितनी सुविधा कहानी में थी उतनी सम्भवत: अन्य स्थानों पर नहीं थी। कविता तब पूर्णत: यथार्थोन्मुखी होकर सब्जेक्टिव बनी हुई थी। नाटक की अपनी सीमाएँ थीं, वह बीच में रुक नहीं सकता था। उपन्यास का एक अलग कर्त्तव्य था, उसे वह अपनी मन्थर शैली में पूरा करता था। ऐसी हालत में शीघ्रता से भागती इस दुनिया की झलक केवल कहानी ही अपने अन्दर उतार सकती थी।

२.१.८ द्विवेदी युग की पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से विकसित होकर ही हिन्दी कहानी अपने उपर्युक्त दायित्व का भार उठाने में समर्थ हो सकी। कहानी को इस तरह सक्षम बनाने का श्रेय मुख्यत: इस काल के कहानीकारों—किशोरीलाल गोस्वामी, बंग महिला, 'प्रसाद', चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा, ज्वालादत्त शर्मा, विश्म्भरनाथ जिज्जा, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', चतुरसेन शास्त्री, राजा राधिकारमण सिंह आदि को है। कुछ लोग सम्भवत: इनमें से कुछ कहानीकारों को महत्व नहीं देंगे पर, जिस प्रकार एक भवन निर्माण करने का श्रेय मात्र एक शिल्पी को ही नहीं दिया जा सकता यद्यपि उसका योगदान प्रमुख होता है पर उसके सहयोगियों का भी कम महत्व नहीं होता, क्योंकि गारा, मिट्टी, चूना और पानी ढोने वालों का भी उसमें कम योगदान नहीं होता। इसी प्रकार बीसवीं सदी के कहानी शिल्प के विकास का श्रेय मात्र प्रेमचन्द, 'प्रसाद' या 'गुलेरी' को नहीं दिया जा सकता। कहानी रचना प्रक्रिया के विभिन्न प्रयोग यदि इन विभिन्न कहानीकारों द्वारा न हुए होते तो आने वाली पीढ़ी इतनी परिपक्व न हुई

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती। दूसरी सूक्ष्म बात यह है कि प्रतिभा दूसरों की त्रुटियों को देख स्वयं सँभल जाती है। प्रेमचन्द और 'प्रसाद' की प्रतिभा ने सम्भव है दूसरे की कमियों को अपने से दूर करने का प्रयास किया और इन सबकी कमियों का परिहार किया 'गुलेरी' जी ने।

२. १. ६ कुछ लोगों का विचार है, 'गुलेरी' की 'उसने कहा था' मात्र एक संयोगात्मक घटना थी। वह संयोग उसी अर्थ में जुड़ा जिस अर्थ में न्यूटन की प्रतिभा को पृथ्वी की आकर्षण शक्ति की यथार्थता के बोध का था। पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है, यह एक यथार्थ है; पर इसक बोध न्यूटन के पूर्व किसी को न था। यह संयोग था कि न्यूटन की प्रतिभा को इसका एकाएक बोध हुआ। इसी तरह बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में कहानी अपना रूप ग्रहण करने लगी थी पर गुलेरी की प्रतिभा के संपर्क में आने पर वह अपने पूर्ण रूप में पाठकों के समक्ष आई। यह एक संयोग था। संभव है गुलेरी जी ने इसके लिए प्रयास न भी किया हो। गुलेरी जी के पास प्रतिभा थी जो कहानी के इस लड़खड़ाते पग को देख संयोगात् मुखरित हो उठी। साथ ही यह भी सत्य है कि गुलेरी जी ने दूसरे की भूमि पर अपना महल बनाया पर स्वयं दूसरों के लिए भूमि नहीं छोड़ी। फलतः 'उसने कहा था' के आधार पर आगे कोई भी कहानी नहीं लिखी गई। इसके कथानक को भी किसी ने छूने का साहस नहीं किया। अतः यह कहा जा सकता है कि गुलेरी जी में उत्पादन क्षमता का अभाव था। वे स्वयं उत्पादक थे पर उत्पादन के लिए मार्ग निर्देश न कर सके, जबकि प्रेमचन्द अभूतपूर्व उत्पादन क्षमता लेकर आविर्भूत हुए।

२. १. १० गुलेरी, प्रेमचन्द और प्रसाद के पूर्व कहानी किस प्रकार की रचना प्रक्रिया से गुजरी यह एक रोचक विषय है। इसका अनुशीलन १६०० से १६१० तक की पत्रिकाओं को उलटने से आसानी से हो सकता है। हिन्दी कहानी शिल्प का प्रथम रूप हमें १६०० की सरस्वती में दिखाई देने लगा। 'सरस्वती' ने अपनी उत्पति के साथ कहानी-कला की उत्पत्ति और प्रयोग आरम्भ कर दिया। भारतेन्दु-युग में कहानी कला की उत्पत्ति की दिशा में जितने भी परोक्ष और प्रत्यक्ष ढंग के प्रयत्न हुए, उन समस्त प्रयत्नों से हिन्दी कहानी का कोई भी रूप नहीं बन सका। निश्चित रूप से हिंदी कहानी अपनी संज्ञा और कलात्मक रूप की प्राप्ति में केवल 'सरस्वती' का आभार वहन करेगी। वस्तुतः 'सरस्वती' के भी प्रारंभिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1244

वर्षों में इसे आख्यायिका और गल्प की संज्ञा दी गई है। ऐतिहासिक दृष्टि से क्रमशः पहली संज्ञा संस्कृत की परंपरा का स्मरण दिलाती है और दूसरी बंगला का प्रभाव। फिर भी कहानी के भावी रूप के निर्माण में भारतेंदु काल के व्यंग्य-चित्रों, लेखों और स्वप्न-कल्पनाओं ने इसकी प्राण शक्ति उपस्थित की तथा यही प्राण शक्ति वाहक सूत्र अपने विकसित रूप में 'सरस्वती' में उदित हुए। इन्हीं विकसित माध्यमों से 'सरस्वती' के प्रारंभिक वर्षों में हिंदी कहानी के आरंभ में अविकल प्रयत्न और प्रयोग हुए, जिनसे हिंदी कहानी का मौलिक आविर्भाव हुआ।

२.१.११ प्रारंभ में इतिवृत्तात्मक ढग से पूरी कहानी कहने की प्रवृत्ति थी। वर्णना के द्वारा कथानक विस्तार होता था, जिसमें स्थान स्थान पर दैवी संयोग का पुट मिलता था। इस समय कथनक का स्थान महत्वपूर्ण था तथा चरित्र-चित्रण को गौण समझा जाता था। भिन्न भिन्न मानवीय घटनाओं एवं परिस्थितियों की योजना के द्वारा प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है। श्री किशोरीलाल कृत 'इंदुमती'[1] रचना प्रक्रिया की दृष्टि से हिंदी की प्रथम कहानी कही जा सकती है। वर्णनात्मक शैली में लिखी इस कहानी में कथोपकथन और चरित्र-चित्रण को कोई विशेष स्थान नहीं प्राप्त हुआ है। पर कहानी के लिए अपेक्षित प्रवाह और रोचकता बनाए रखने में लेखक पूर्ण सफल दिखलाई देता है। कथानक भारतीय जीवन के उस काल से लिया गया है जब अपने आत्माभिमान और गौरव में चूर क्षत्रिय राजा भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिज्ञाएँ कर लेते थे और उन्हें पूरा करने वाले से अपनी बेटी का विवाह कर देते थे। वीरता और साहस की परख कर अपनी बेटी का विवाह करने वाले राजाओं की कहानी आज भी हमारी लोक-कथाओं में प्रचलित है। कहानी में कहीं-कहीं ऐसे कथोपकथन का प्रयोग हुआ है जो कानों को बचपन की सुनी हुई परिचित कहानियों में से लिया हुआ ही जान पड़ता है। यथा—

'बेटा चंद्रशेखर! बारह वर्ष हो गए, पर ऐसी सावधानी से मैंने इस लड़की का लालन-पालन किया और इसे पढ़ाया लिखाया कि जिसका सुख तुम्हें आप ही आगे चलकर इसकी सुशीलता से जान पड़ेगा और देखो, मैंने इसे ऐसे पहरे में रखा कि कल के सिवा और कभी इसने मुझे

१. 'सरस्वती', १९०० ई०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़कर किसी दूसरे मनुष्य की सूरत न देखी। मैंने राजस्थान के सब राजाओं से सहायता माँगी और यह कहलाया कि जो कोई दुष्ट इब्राहिम का सिर काट लावेगा उसे अपनी लड़की व्याह दूँगा। पर हाँ, किसी ने मेरी बात न सुनी और सभी मुझे पागल समझकर हँसने लगे। अंत में मैंने दुखी होकर प्रतिज्ञा की कि जो कोई इब्राहिम को मारेगा उसी से इंदुमती व्याही जायगी, नहीं तो यह जन्म भर कुवाँरी ही रहेगी। सो परमेश्वर ने तुम्हारे हृदय में बैठकर मेरी प्रतिज्ञा पूरी की। अब इंदुमती तुम्हारी हुई। और आज मैं बड़े भारी बोझ को उतार कर आजन्म के लिए हल्का हो गया।'[१]

कहानी में भिन्न-भिन्न मानवीय घटनाओं एवं परिस्थितियों की योजना के द्वारा प्रभाव उत्पन्न कराने का प्रबंध है, चरित्र अध्ययन का प्रयास नहीं है।

२. १. १२ सन् १९०१ में गिरिजाकुमार घोष की पार्वतीनंदन के नाम से 'मुक्ति का उपाय'[२] 'प्रेम का फुआरा',[३] 'जीवनाग्नि',[४] कार्तिक प्रसाद खत्री की 'महारानी सूजा बाई'[५] तथा 'रोशन आरा'[६] तथा जगन्नाथ प्रसाद त्रिपाठी की 'रत्नावली'[७] आई। गिरिजाकुमार घोष की कहानियों में वर्णन तथा विश्लेषण की ही प्रधानता थी। कहानियों का निर्माण अधिकतर संयोगों के आधार पर होता था। घटनाओं का घटाटोप कहानीकार की अपरिपक्वता का सूचक है। यथा इनकी 'प्रेम का फुआरा' कहानी को लें; इसमें एक समस्यापूर्ण सामाजिक कथानक की अवतारणा हुई है।

'बीस वर्ष की जवान, काली चेचक के दाग वाले चेहरे की हुसैनी बीवी की कहीं शादी नहीं हो रही है। वह अपनी शादी की ही इच्छा से

---

१. 'सरस्वती' भाग १, संख्या ६।
२. 'सरस्वती', सन् १९०१।
३. वही।
४. वही।
५. वही।
६. वही।
७. वही।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी खाला के घर जाती है। उसी गाँव में उसको दो ब्याही हुई सखियाँ भी मिलतीं हैं, लेकिन उनसे समवेदना के स्थान पर ईर्ष्या होती है फलतः हुसैनी बीबी उस गाँव को भी छोड़कर कहीं और चल पड़ती है। संयोगवश उसे रास्ता भूल जाता है और वह एक खंडहर में जा पहुँचती है और एक बुढ़िया से भेंट होती है। बुढ़िया वहीं के एक फुआरे से तीन घूंट पानी बीबी को पिलाती है और सवेरे उसे एक घोड़े पर चढ़ा हुआ युवक मिलता है वे कहीं के नवाब साहब हैं। वे इसे एक अन्य स्थान पर ले जाते हैं, कहीं रंगीली के पास। इसे वहाँ बहुत परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं। वहाँ से उसे कोई करीमबक्स उसके गांव टिकियापुर पहुँचाने को तैयार होते हैं। पर संयोगवश बीच में कोई मोटा आदमी आ जाता है, जो उसे बहुत सताता है। इस तरह हुसेनी बीबी के साथ अनेकानेक घटनाएँ घटती हैं और अन्त में उसे वही खंडहर की बुढ़िया बचाती है।[1]

२. २. १३ कर्तिक प्रसाद की 'महारानी सूजाबाई' तथा 'रोशनआरा' का कथानक ऐतिहासिक है। कहानी में करुण रस का प्रयोग हुआ तथा अन्त भी करुण से ही हुआ जो एक नया प्रयोग दिखाई दिया, जबकि भारतीय परम्परा सुखान्त की ओर ही उन्मुख थी। पंडित जगन्नाथ त्रिपाठी की 'रत्नावली' में श्रीहर्ष रचित 'रत्नावली नाटक' के कथानक को कहानी का रूप दिया गया है। कहानी अपेक्षाकृत लम्बी हो गई है जो कहानी की सीमा का उल्लंघन कर जाती है।

२. १. १४ सन् १९०२ की उल्लेख योग्य कहानी भगवानदास कृत 'प्लेग की चुड़ैल' है। सन् १९०१ में प्रयाग में पहले पहल प्लेग फैला था। प्लेग का यह आक्रमण बहुत भयंकर था। इस कहानी का महत्व यह है कि यह प्रदर्शित करती है कि हिन्दी कहानी के इस आरम्भिक युग में भी हिन्दी कहानीकार इतने सजग थे कि तत्कालीन घटनाओं की उनके सचेत मन पर तुरन्त प्रतिक्रिया होती थी। प्लेग के छुतहा रोग का इतना आतंक था कि स्वजन और प्रियजन भी रोगी को छोड़कर भाग जाते थे। अन्धविश्वासों की जड़ें इतनी गहरी थीं कि शिक्षा का प्रचार भी उन्हें आसानी से हिला सकने में असमर्थ था। भूत, चुड़ैल आदि पर लोगों का इतना विश्वास था कि सामने प्रत्यक्ष सशरीर उपस्थित व्यक्ति देखकर भी वह डिग नहीं पाता था।

१—सरस्वती, १९०२ ई०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटनाओं के संगुम्फन के द्वारा लेखक ने इन्हीं अन्धविश्वासों के खोखलेपन को दूर करने का प्रयास किया है।

२. १. १५ सन् १९०३ में आकर कहानी विकास प्रक्रिया ने एक पग और बढ़ाया और 'सरस्वती' ने रामचन्द्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय' हिन्दी साहित्य जगत को भेंट की। डा० लक्ष्मीनारायण लाल का कथन है कि—शिल्प विधि की दृष्टि से प्रथम हिन्दी की मौलिक कहानी है—रामचन्द्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय'[1]। इसमें तीन लम्बी-लम्बी कथाएँ हैं—प्रथम स्वयं कहानीकार के मुख से, द्वितीय कथा—नायक के मुख से और तृतीय नायिका के मुख से। कहानी का आरम्भ गाँव के एक खंडहर से होता है और उसका कथानक क्रमशः बनारस और कलकत्ता तक ग्यारह वर्ष के अवकाश में फैला हुआ एक दैवी संयोग से समाप्त होता है। कहानी वर्णनात्मक शैली में लिखी हुई है। आरम्भ से अन्त तक इतिवृत्तात्मक वर्णन है। यथा—

मेरे पिता का घर काशी में······मुहल्ले में था विवाह के एक वर्ष पश्चात ही इस ग्राम में एक भयानक दुर्घटना उपस्थित हुई। यहीं से मेरे दुर्दमनीय दुःख का जन्म हुआ। संध्या को सब ग्रामीण अपने-अपने कार्य से निश्चिन्त होकर अपने अपने घरों को लौटे। बालकों का कोलाहल बन्द हुआ। निद्रादेवी ने ग्रामीणों के चिन्ता-शून्य हृदयों में अपना डेरा जमाया। आधीरात से अधिक बीत चुकी थी, कुत्ते भी थोड़ी देर भूँककर अन्त में चुप हो रहे। प्रकृति निस्तब्ध हुई, सहसा ग्राम में कोलाहल मचा और धमाके के कई शब्द हुए। लोग आँखें मींचते उठे; चारपाई के नीचे पैर देते हैं तो घुटने भर पानी में खड़े। कोलाहल सुनकर बच्चे भी जगे। एक दूसरे का नाम ले लेकर लोग चिल्लाने लगे। अपने अपने घरों में से लोग बाहर निकल कर खड़े हुए। भगवती जान्हवी को द्वार पर बहते हुए पाया। भयानक विपत्ति। कोई उपाय नहीं। जल का वेग क्रमशः बढ़ने लगा। पैर कठिनता से ठहरते थे। जिधर दृष्टि उठा कर देखा जल ही जल दिखाई दिया। एक एक करके सब सामग्रियाँ बहने लगीं। संयोग-वश एक नाव कुछ दूर पर आती देख पड़ी।[2]

कहानी में भावों को आन्दोलित करने वाले ऐसे मार्मिक स्थल भी हैं, किंतु कथन का ढंग किंचित् पुराना ही है। छोटे छोटे वाक्यों द्वारा गत्यात्मक चित्रण

१—हिन्दी कहानियों की शिल्प—विधि का विकास, पृ० ४९।

२—'सरस्वती', सितम्बर सन् १९०३, भाग ४, संख्या ९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने का प्रयास स्पष्ट परिलक्षित है। चरित्र-चित्रण का कहानी में अभाव है। केवल पात्र चरित्रों के रूप में कहानी में पिरोए गए हैं, पर उनके व्यक्तित्व के विश्लेषण का प्रयास नहीं है। पर इस कहानी की सबसे बड़ी विशेषता है आदि से अन्त तक पाठक में कौतूहल बनाए रखते हुए उनको आकर्षित रखने की। अन्त के इस वाक्य के द्वारा—'कदाचित् तुम पूछोगी, कि इस समय अब वह कहाँ है ? यह वही अभागा मनुष्य तुम्हारे सम्मुख बैठा है'। कहानी के पात्रों के साथ ही पाठक के शरीर में भी बिजली दौड़ जाती है।

२.१.१६ इसी वर्ष पंडित गिरिजादत्त वाजपेयी की 'पंडित और पंडितानी' व्यंग्य-शैली में लिखी गई। समग्र रूप में कहानी अनमेल विवाह पर एक परोक्ष कटाक्ष है। व्यंग्य चित्र तथा हास्यचित्र शैली का जो उद्भव इसमें मिलता है उसके थोड़े परिष्कृत रूप में हमें १९०४ की 'सरस्वती' में यशोदानन्द अखौरी की 'इत्यादि की आत्मकहानी'[1] तथा पं० महेन्दुलाल गर्ग कृत 'पेट की आत्मकहानी'[2] नामक कहानियों में दिखलाई देने लगा। व्यंग्यप्रधान इन कहानियों का स्थान आगे आने वाली कहानियों के व्यंग्य तथा संवेद्य पक्ष के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। इस काल तक आते आते अनेक पत्रिकाएँ कहानी विधा की ओर आकर्षित हुईं पर उनमें छपने वाली कहानी रचना प्रक्रिया में कुछ विशेष योगदान देने में सार्थक न थी जैसे सन् १९०६ में 'भारतेन्दु' में व्रजचन्द्र की 'विज्ञापन से विपत्ति' बनारस के गुण्डों पर लिखी गई। इसमें गुंडों के चरित्र पर प्रकाश डालने का पूर्ण प्रयास है पर व्यक्ति विश्लेषण की दृष्टि से कहानीकार असफल ही रहा। इसी वर्ष 'कमला' में लक्ष्मण गोविन्द आठले की 'वीर पत्नी तारावाई' एक ऐतिहासिक कहानी आई। इतिहास को ही आधार बनाकर 'भारत भानु' में 'जोधावाई' कहानी भी लिखी गई। कहानी में यत्र-तत्र ऐतिहासिक वातावरण उपस्थित करने का प्रयास है।

२.१.१७ इसके पश्चात् विकास क्रम की दृष्टि से १९०७ में मिर्जापुर की बंगमहिला कृत 'दुलाई वाली'[3] कहानी उल्लेख योग्य है। स्वाभाविक वर्णन शैली में यथार्थ जीवन का चित्रण करने की दिशा आगे आने वाले कहानीकारों को यहीं से मिलती है। इस कहानी की सबसे बड़ी विशेषता इसका स्वाभाविक कथोपकथन है, जो प्रारम्भ में ही पाठक को आकर्षित करता है—

२— जून, १९०४, भाग ५, सं० ६।

२—'सरस्वती' सितम्बर १९०४, भाग ५, सं० ६।

३—वही, १९०७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आज ही जाना होगा। यह क्यों? भला आज कैसे जाना हो सकेगा? ऐसा ही था तो सवेरे भैया से कह देते। तुम तो जानते हो कि मुंह से कह दिया, बस छुट्टी। लड़की कभी विदा की होती तो मालूम पड़ता। आज तो किसी सूरत जाना नहीं हो सकता।'[1]

२. १. १८ कहानी के पात्रों द्वारा कहीं कहीं स्थानीय वोली का प्रयोग कहानी के प्रति सहज आकर्षण उत्पन्न करता है। ध्यान देने की बात है कि यह कहानी के विकास का प्रारंभिक काल था जब ऐसे प्रयोगों का अभाव था। ऐसे समय स्थानीय बोली में छोटे छोटे वाक्यों द्वारा स्त्रियों की अनभिज्ञता पर प्रकाश डालते हुए कथानक को गति प्रदान करने का बड़ा मौलिक प्रयास है। यथा—

दूसरी—'ऐसे एक दांइ हम आवत रहे। एक मिली औरो मोरे संघे रही। द कौने टिसनिया पर उकर मलिकवा उतरे से कि जुरतइहै गड़िया खुली। अब भईया उः गरा फाड़ फाड़ नरियाय—ए साहब गड़ीया खड़ीकर। ए साहेब गड़िया तनी खड़ीकर। 'भला गड़िया दहिनाती काहै के खड़ी होय?'

पहली—उ मेहररुवा बड़ी उजवक रहल। भला के उ के चिल्लाए से रेलओ कहूँ खड़ी होला?'[2]

२. १. १९ इसी वर्ष 'लक्ष्मी' में अम्बिका प्रसाद त्रिपाठी की 'कंचन सती' और गोविंददास की 'सती वेश्या' सती प्रथा की समस्या को लेकर लिखी गई। 'लक्ष्मी' में ही बंग महिला की 'संसार सुख' सास बहू के समस्यामूलक संबंध को लेकर लिखी गई। कथानक के वैविध्य के अतिरिक्त इन कहानियों का स्थान रचना प्रक्रिया के विकास में नगण्य है।

२. १. २० सन् १९०८ में मधुमंगल कृत 'भुतही कोठरी' तथा सत्यदेव परिव्राजक की 'आश्चर्यजनक घंटी' आई। दोनों ही कहानी अंधविश्वासों को वैज्ञानिक मोड देती हैं। सत्यदेव जी वार्तालाप में छोटे छोटे वाक्यों के प्रयोग के महत्व को समझने लगे थे फलतः उनकी कहानी 'आश्चर्यजनक घंटी' में ऐसे छोटे छोटे वाक्य प्रयुक्त होने लगे थे—

स्काट—'मुझे मालूम होता है कि वह घंटी वहुत पुरानी है।'

१—वही।
२—'सरस्वती', १९०७ ई०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी—'मैं भी यही समझती हूँ। उसका रंग बहुत भला मालूम होता है। मैंने तो ऐसी घंटो और दूसरी नहीं देखी।'

स्काट—'क्या तुम उस घंटी के विषय में और भी कुछ जानती हो ?"

मेरी—'नहीं मुझे और कुछ मालूम नहीं।'

स्काट—'कोई और खास बात ?'[१] (—'आश्चर्यजनक घंटी')।

ऐसे ही छोटे छोटे वाक्यों में वार्तालाप के द्वारा संपूर्ण कथानक कहा गया है। कथानक की विशेषता यह है कि इसमें न तो कोई जीवन में घटी घटना है और न कोई भाव संवेदना, अपितु एक वैज्ञानिक तथ्य का पुष्टीकरण कहानी के रूप में पिरोया है। फिर भी कहानी की रोचकता में कहीं भी कमी नहीं आई। पर अधिकतर कहानियाँ घटनाओं का संगुम्फन हैं। ये कहानियाँ कभी उपदेशात्मक हैं या समाज की विभिन्न समस्याओं का चित्रण, जिनमें नारी समस्या, मूलरूप में उभर कर आई, जैसे बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, अशिक्षा, अंधविश्वास, धार्मिक पाखंड। कभी कभी मात्र मनोरंजन को उद्देश्य बनाकर भी कहानियाँ लिखी जा रही थीं, जैसे तिलस्मी, जासूसी आदि। शिल्पगत विशेषता की दृष्टि से देखते हुए इनका स्थान नगण्य अवश्य था, पर यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो रूढ़ कहानी के विकास में इनका स्थान वह नहीं था जो अंधकार का प्रकाश के लिए होता है। अंधकार के अभाव में प्रकाश का महत्व भी क्या ? वैसे ही इन कहानियों को देखने पर ही आगे आने वाली पीढ़ी की विशेषता समझ में आई। देखने में यह आता है कि आज जब कि कहानी अकहानी की संज्ञा ग्रहण करने की स्थिति में आ गई अपने कथानक का आधार समाज या उसकी इकाई व्यक्ति को ही बनाने आई। कभी उसने इनका यथार्थ चित्रण किया कभी काल्पनिक। कभी उसने इनकी भाव-संवेदना ली, कभी जीवन में घटी किसी घटना को लेकर कहानी के ताने बाने द्वारा उसे व्यक्त करने का प्रयास किया। पर प्रश्न होता है यह उसने सीखा कहाँ ? इसका उत्तर भी साथ ही लगा हुआ है। इन सबका आधार है पत्रिकाओं में आई हुई यही अपरिपक्व कहानियाँ। कभी इनसे वस्तु चित्रण को दिशा मिली, कथानक प्राप्ति के लिए भूमि और चरित्र विश्लेषण के लिए कल्पना को प्रश्रय मिला।

---

१. 'सरस्वती', सन् १६०८।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२.१.२१ वस्तु चित्रण का मार्ग निर्देश करने के लिए क्या इन स्थलों का कम महत्व है। यथा—

'शरत ऋतु की रात। नर्मदा का पवित्र तट। उस समय उस स्थल की निरुपम स्वर्गीय शोभा प्रत्यक्ष रुद्र को भी शान्त करने के लिए समर्थ थी। वह हरित-तरुलता-परिवेष्ठित प्रदेश, पूर्ण शरच्चन्द्र ज्योति रस में निमज्जित होकर अत्यन्त आनन्ददायक प्रतीत होता था। मधुगंध युक्त मंदानिल नर्मदा के मधुकर कर-रंजित धवल प्रवाह से असंख्य तरंग निर्माण कर उसमें, आकाश में इतस्ततः फैले हुए तारक गणों के प्रतिबिम्ब स्वच्छन्द विहार करते थे। उस समय वह पवित्र नर्मदा तीर अत्यन्त शान्त, रम्य और आनन्दमय दृष्टिगोचर होता था। ऐसे समय एक युवक अपने अनिमिष लोचनों से यह निसर्ग सौन्दर्यामृत प्राशन करता हुआ बिलकुल जलप्रवाह के निकट की शिला पर बैठा था'।[1]

—'केवल कर्त्तव्य के लिए', लेखक, रामचन्द्र रघुनाथ सवरे।

'वर्षा बरस चुकी है। आकाश अपने काले कम्बल को देह से हटाकर नीचे बारबार देख रहा है कि हमारी चमक दमक से प्रकृति देवी प्रसन्न हुई कि नहीं। इस भोलेपन को देखकर हँसते हुए चार तारे दूर ही से झाँक रहे हैं। मेघ ने जहाँ अपना कम्बल रखा है, वहाँ मेघ प्रिया चंचला भी बैठी है। इसका तो नाम ही चंचला है भला यह क्यों चुपचाप बैठने गई। बार-बार कुलटा स्त्रियों की भाँति इधर उधर देख रही है। सबों ने अपना बसेड़ा लिया पर झींगुर और मेढ़क इन दोनों के तान अभी पूरी नहीं हुई। अभी ये वैसे ही अपनी तान छेड़ रहे हैं, मानो इनको अभी कुछ वर्षा छुट जाने की खबर ही नहीं है। आज दो महीने से कोयल चुपचाप बैठी है। न जाने क्यों कुढ़ गई है'।[2] —'करुणा'

२.१.२२ इस प्रकार भावी कहानियों का बीज रूप यहाँ मिलता है। कहा जाता है कि प्रसाद वातावरण की अवतारणा में बिलकुल मौलिक सिद्ध हुए। उपर्युक्त उद्धरण सम्वत् १९६४ का है। इसके पश्चात् प्रसाद की प्रथम कहानी 'ग्राम'[3] १९६७ में आई। वातावरण चित्रण की कला कहाँ से प्राप्त है यह उपर्यूक्त उद्धरण में द्रष्टव्य है। 'ग्राम' कहानी में हुए वातावरण के चित्रण को देखने से यह पूर्ण स्पष्ट हो जाता है—

१. नवनीत, माघ १९७१, पृ० ४७।
२ 'कमला' भाद्रपद १९६४, पृ० ११४।
३—'इन्दु' १९६७, कला २, किरण २, पृ० ६३।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'श्रावण मास की संध्या भी कैसी मनोहारिणी होती है, मेघमाला विभूषित गगन की छाया, सघन रसाल कानन में पड़ रही है, अन्धियारी धीरे धीरे अपना अधिकार पूर्ण गगन में जमाती हुई सुशासनकारिणी महारानी के समान विहंग प्रजाजन के सुख निकेतन नीड़ में शयन करने की आज्ञा दे रही है। आकाशरूपी शासन पत्र पर ही प्रकृति के हस्ताक्षर की समान बिजुली रेखा दिखाई पड़ती है'।[1]

'सरला स्वभावा ग्रामवासिनी कुल कामिनीगण का सुमधुर संगीत धीरे धीरे आम्र कानन में से निकलकर चारों ओर गूँज रहा है। अन्धकार गगन में जुगनू तारे चमक चमक कर चित्त को चंचल कर रहे हैं। ग्रामीण लोग अपना हल काँधे पर धरे विरहा गाते हुए, बैलों की जोड़ी के साथ घर की ओर प्रत्यावर्तन कर रहे हैं'।[2]

उपर्युक्त उद्धरणों में साम्य देखने के साथ ही हम यह भी देखते हैं कि किस प्रकार शनैः शनैः पूर्व के कहानीकारों द्वारा बीज-वपन होता रहा है जिसने आगे भविष्य में लहलही खेती तैयार की। यह तो हुई कहानी के वस्तु चित्रण के साम्य की बात। इस काल की पत्रिकाओं के लेखों में भी कभी-कभी कहानी की संवेदना दिखलाई देती है जो आगे आने वाले कलाकारों की प्रेरणा स्रोत तक बन गयी। यथा निम्नलिखित वाक्यों में निहित संवेदना में वृन्दावनलाल वर्मा की 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' जैसे प्रख्यात ऐतिहासिक उपन्यास की संवेदना का स्रोत द्रष्टव्य है—

'विवाह में वधु वर का गंठ जोड़ा होना सबमें प्रचलित है। सो मनुबाई ने गंठ जोड़े के समय कहा कि 'जरा मजबूत गिरह देना'। यह सुनकर लोग चकित हुए और जिन लोगों ने इस गूढ़ बात का मतलब समझा वे स्तब्ध हो बैठे'।[3]

कहानी की यह संवेदना उस काल के अनेक कहानियों में, लेखों में, सामयिक समाचारों में, यत्र-तत्र बिखरी दिखलाई पड़ती है। यथा—

'बेटी अल्लाह तुझे बरकत दे। मैं अब इस दुनिया से कूच किया चाहता हूँ, हाय कहाँ है आज अर्ज······ बेटी मेरा पलंग जरा ताज वाले बरामदे में सरका ले चल········ताजमहल को भी एक बार मरती वक्त देख लूंगा········

१—'इन्दु', सं० १९६७, कला २, किरण २, पृ० ६१।
२—वही, पृ० ६३।
३—झाँसी की रानी, 'मित्र', अप्रैल १९०६, पृ० १३।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिता की आज्ञा बेटी कब उल्लंघन कर सकती थी, अपनी आँखों से मोती टपकाते हुए उसने आहिस्ते से चारपाई सरका दी।'[1]

——शाहजहाँ का अन्तिम काल, बद्रीनाथ भट्ट

२. १. २३ बीच बीच में आए ऐसे मार्मिक प्रसंग आगे आने वाली पीढ़ा की कहानियों की प्राणशक्ति का स्रोत हैं। चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की 'उसने कहा था' हिन्दी कहानी के इतिहास में अपना अभूतपूर्व स्थान प्राप्त कर चुकी। कुछ लोगों का कथन है कि 'इसके पूर्व न ऐसी कहानी लिखी गई और न बाद में लिखी जा रही है।' ऐसी प्रख्यात कहानी के सबसे मार्मिक प्रसंग ने भी उपर्युक्त अंश से अवश्य प्रेरणा प्राप्त की। देखिए——

'लहना का सिर अपनी गोदी पर रखे वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घंटे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—

'कौन ? कीरत सिंह ?'

वजीरा ने कुछ समझकर कहा—'हाँ'।

'भइया, मुझे और ऊंचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।'

वजीरा ने वैसा ही किया।

'हाँ अब ठीक है। पानी पिला दे। बस। अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है उतना ही आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था उसी महीने मैंने इसे लगाया था।'

वजीरा सिंह के आँसू टप टप टपक रहे थे।'[2]

२. १. २४ सन् १९१५ में 'उसने कहा था' के आविर्भाव के पूर्व हिन्दी में कहानी शिल्प अपरिपक्व अवस्था में था। लोग समाज की विभिन्न समस्याओं पर कहानी लिखने का प्रयास कर रहे थे, जिनमें घटनाओं का घटाटोप था और चरित्र-चित्रण नगण्य। घटना और चरित्र में कोई सम्बन्ध नहीं था। अधिकतर कहानियाँ वर्णनात्मक थीं जिनमें घटनाओं, परिस्थितियों, क्रिया-कलापों, भाग्य व्यापारों आदि का संचालन सूत्र पात्रों के हाथ में न होकर लेखक के ही हाथ में होता था, जिससे कहानी में संवेदना के स्थान पर

१—'मर्यादा'—१९११ जून, पृ० १३५।
१—'नवनीत', फाल्गुन १९७१, पृ० ६५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिवृत्तात्मकता अधिक रहती थी। इस इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति में कहानी की संवेदना छिपी हुई थी यह उस काल की पत्रिकाओं के प्रत्येक पृष्ठ को उलटने पर ही स्पष्ट होता है। १९१०–११ तक आते आते अधिकतर साहित्यकार कहानी की बोली में बोलने लगे। यथा—

'हाय री निर्दयी आशा। तेरे भरोसे आदमी क्या-क्या उद्योग करता है, पर तेरे अन्दर इतनी निठुराई भरी हुई है कि आज जिस हृदय में तू फल फूलकर आनन्द का उद्यान लगा देती है उसी के एक क्षण में तू आग लगाकर स्मशान भूमि बना डालती है। कल जिसके नाम पर सारे हिन्दुस्तान को फक्र था आज वह कहाँ है ? कहाँ है वह चिराग जो कल बल रहा था और जिसकी रोशनी में एक दल का दल अपना बीहड़ रास्ता तै कर रहा था ? क्या वह चिराग गुल हो गया ? हाँ। जिसपर हमारे देश का दिमाग था वह यहाँ से चल दिया। वह मातृभूमि का सच्चा सेवक हम सबको रुलाकर सदा के लिए चला गया। वह सुहावनी मूरत नैनों के ओट हो गई। वह चमकता हुआ सितारा अस्त हो गया।

वह शुक्रवार की रात थी। उसी ने माता पर वह आघात किया कि शुभ्र चंद्रमा की चटकीली चाँदनी भी घोर अंधकार में परिणत हो गयी—मुँह ढाँप कर माता विलाप करने लगी।'[१]

२ १.२५ हिंदी कहानी विधा को यह सुयोग मिला कि जिन पत्रिकाओं के माध्यम से इसका आविर्भाव हुआ उन्हीं के द्वारा इसका पूर्ण विकास भी हुआ। आविर्भाव से विकास की यह मंजिल इसने केवल पंद्रह वर्षों में ही पूर्ण कर ली। इन पंद्रह वर्षों में 'सरस्वती', 'इंदु', 'मर्यादा', 'हिंदी गल्पमाला', 'नवनीत', 'भारत भानु', 'लक्ष्मी', 'स्त्री दर्पण', 'चित्रमय जगत', 'भारतेंदु', 'चाँद', 'प्रभा', 'कमला', 'औदुम्बर', 'स्वदेश बांधव' आदि पत्रिकाओं ने प्रमुख भूमिका निभायी। इन्हीं पत्रिकाओं के ही माध्यम से हिंदी जगत प्रमुख कहानीकार प्रेमचंद, 'प्रसाद', चंद्रधर शर्मा गुलेरी, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', वृंदावनलाल वर्मा, ज्वालादत्त शर्मा, राधिकारमण सिंह, गिरिजाकुमार घोष, राय कृष्णदास आदि से परिचित हुआ। इसके अतिरिक्त इन पत्रिकाओं से प्रेरणा प्राप्त कर लगभग डेढ़ सौ कहानी लेखक तथा पचास कहानी लेखिकाएँ भी हिंदी साहित्य में

१. 'नवनीत', फाल्गुन १९७१, पृ० ६५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवतीर्ण हुईं। उपर्युक्त पंक्तियों में देख आए हैं कि प्रत्येक का अपना योगदान है जो नगण्य होते हुए भी अमूल्य है, क्योंकि उन्हीं की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रेरणा स्वरूप ही सन् १९१५ की 'सरस्वती' में 'उसने कहा था' का आविर्भाव हुआ। गुलेरी जी के आविर्भाव के पूर्व ही १९१० में 'इंदु' द्वारा प्रसाद, १९१० की 'सरस्वती' द्वारा वृंदावनलाल वर्मा, १९११ में 'चाँद' द्वारा प्रेमचंद और १९१३ की 'इंदु' के द्वारा राधिकारमण सिंह से हिंदी कहानी जगत परिचित हो चुका था।

२. १. २६ १९०९ की 'सरस्वती' द्वारा वृंदावनलाल की 'राखी बंद भाई' पहली कहानी आई। फिर १९१० की 'सरस्वती' में ही 'तातार और एक वीर राजपूत' आई। 'सरस्वती' के अतिरिक्त वर्मा जी 'नवनीत' आदि दूसरी पत्रिकाओं में भी कहानियाँ लिखते रहे। १९१४ के 'नवनीत' में इनकी 'सामंत संहार' शीर्षक एक और कहानी उल्लेख योग्य है। वर्मा जी मुख्यतः ऐतिहासिक कहानीकार रहे। आगे चलकर 'कलाकार का दंड', 'शेरशाह का न्याय', या 'खजुराहो की दो मूर्तियाँ' आदि उनकी ऐतिहासिक कहानियों की सफलता का बीज इन्हीं प्रारंभिक कहानियों में दिखलाई पड़ता है। ये कहानियाँ वर्णनात्मक शैली में लिखी चरित्र प्रधान कहानी हैं। ऐतिहासिक कहानियों से कोई कल्याणकारी प्रेरणा प्राप्त होनी चाहिए। जनमत में दिव्यता लाने का संवेग उत्पन्न करना उसका कर्त्तव्य है। इतिहास के तथ्य और जन परंपराओं में उन तथ्यों के प्रति श्रद्धा उसके साधन हैं। वर्मा जी ने अपनी इन प्रारंभिक ऐतिहासिक कहानियों में ही इस बात का ध्यान रखा। चरित्र-चित्रण के लिए कथोपकथन का ही सहारा लिया गया है। स्थान-स्थान पर पात्रों की आकृति, वेश-भूषा एवं बाह्य व्यक्तित्व के चित्रण के साथ उनका विश्लेषण करने की चेष्टा है। यथा——

'रुद्रसिंह झिलमिलाते हुए कवच, अस्त्र, शस्त्र और झिलम धारण करके ससैन्य आ पहुँचे। भीलों को मार भगाना इस वीर के लिए कुछ कठिन काम न था।'[1] (राखी बंद भाई)

२. १. २७ वर्मा जी ने इन कहानियों में ऐतिहासिक तथ्य और उसकी वस्तुनिष्ठा का प्रतिपालन सफलतापूर्वक किया है। कहानीकार ने ऐतिहासिक

---

१. 'सरस्वती' १९०९ ई०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथ्य की खोज और स्वाभाविकता को अपनी कला का साधन बनाया है। अतएव इन प्रारंभिक कहानियों में भी ऐतिहासिक संवेदनशीलता पूर्ण सफलता से व्यक्त हुई। यथा—

'थोड़ी देर में वे राज-महल में बुलाए गये। पन्ना के राखी बंद भाई से रनिवास में भी किसी को पर्दा न था।

परन्तु हाय! यहाँ पहुँचकर उनके हृदय पर वज्रपात हुआ। जिस मूर्ति को हृदय में रखकर वे आकाश में कोट बाँधते थे वह स्वयं पन्ना थी। जिसने राखी भेजी थी वह तो बहिन हुई। हृदय का बबूला वहीं बैठ गया।'[1]

(राखी बंद भाई)

वर्मा जी की कहानियों में कल्पना और इतिहास का समन्वय मिलता है। इनकी शैली में सरलता और स्वाभाविकता है।

२. १. २८ हिंदी कहानी शिल्प-विधि के आरंभ और विकास की दृष्टि से 'सरस्वती' के उपरांत 'इंदु' का भी स्थान कहानी साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण रहेगा। इसके द्वारा जहाँ भावपूर्ण कहानियों के पथ-प्रदर्शक 'प्रसाद' का आविर्भाव हुआ वहाँ दूसरी ओर इसमें अनूदित बंगला कहानियों ने अनेक कहानीकारों को प्रेरणा प्रदान की। इसके आविर्भाव के दूसरे वर्ष ही प्रसाद ने अपनी पहली कहानी 'ग्राम'[2] हिंदी संसार को भेंट की। इसी वर्ष इनकी 'ब्रह्मर्षि', 'पंचायत' तथा 'चंदा' भी आई। आलोच्यकाल में 'गुलाम'[3] तथा 'चित्तौर का उद्धार'[4] भी आ गई थी। 'इंदु' के प्रकाशन के पूर्व 'सरस्वती' द्वारा यह तो प्रतीत होने लगा था कि शीघ्र ही इस दिशा में कुछ नये प्रयोग होने जा रहे हैं। चिनगारियाँ बता रही थीं कि गर्भ में कुछ गंभीर निष्कर्ष छिपा हुआ है।

२. १. २९ उच्चकोटि की साहित्यिक रचना हिंदी में प्रसाद जी के द्वारा आरंभ हुई। वे प्रचुर भाव-विभूति, चित्त - विधायिनी कल्पना तथा रस-सिक्त भाषा शैली लेकर साहित्य क्षेत्र में आए और भावमूलक कहानियों का प्रारंभ किया। उन्होंने प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक, धार्मिक,

---

१. वही।
२. 'इन्दु' १९१० ई०, कला २, किरण २, पृ० ६१।
३. वही, १९१४, कला ५, किरण १, पृ० ४।
४. वही, १९१४, कला ६, किरण १, पृ० १६७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक पृष्ठभूमियों में कहानियों की रचना की। कुछ कहानियों में घटना की वहुलता है और कुछ में चरित्र-चित्रण की, किंतु अभिव्यंजना की रमणीयता के कारण रसात्मकता सर्वत्र वनी हुई है। उनकी कहानियों में कवित्व और नाटकीयता का अपूर्व संमिलन हुआ है। उनकी प्रथम कहानी 'ग्राम' से ही उनकी विशिष्टताएँ परिलक्षित होने लगीं। यथा—

'सरल स्वभावा ग्रामवासिनी कुल कामिनी गण का सुमधुर संगीत धीरे-धीरे आम्र कानन में से निकलकर चारों ओर गूंज रहा है। अंधकार गगन में जुगनू तारे चमक चमक कर चित्त को चंचल कर रहे हैं। ग्रामीण लोग अपना हल कंधे पर धरे विरहा गाते हुए, बैलों की जोड़ा के साथ घर की ओर प्रत्यावर्त्तन कर रहे हैं।'[1]

और कविरूप देखिए—

'श्रावण मास की संध्या भी कैसी मनोहारिणी होती है, मेघमाला विभूषित गगन की छाया, सघन रसाल कानन में पड़ रही है, अन्धियारी धीरे धीरे अपना अधिकार पूर्व गगन में जमाती हुई सुशासन-कारिणी महाराज्ञी के समान विहंग प्रजागन के सुख निकेतन नीड़ में शयन करने की आज्ञा दे रही है। आकाशरूपी शासन पत्र पर प्रकृति के हस्ताक्षर के समान विजली रेखा दिखाई पड़ती है।'[2]

२. १. ३० उपर्युक्त उद्धहरण में जहाँ कहानीकार प्रसाद का कवित्व-पूर्ण वस्तुचित्रण दिखाई देता है वहाँ आगे के विकास के बीज भी स्पष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद ने जहाँ द्विवेदी युग के प्रथम दशक के आधार पर अपनी कहानी कला का निर्माण किया वहीं इसी युग के दूसरे दशक की उनकी कहानियाँ आगे आने वाली पीढ़ी के विकास के वीज को अपने में सन्निहित किए हुए थीं। प्रसाद ने वस्तु चित्रण की ही मौलिकता नहीं दिखाई अपितु कथानक के गठन की सशक्त शैली के निर्माण की ओर भी अग्रसर हुए। इनका यह प्रयास आलोच्यकाल की कहानियों में स्पष्ट है। इन कहानियों के कथानकों में एकसूत्रता तथा इनके विकास का आदि, मध्य और अन्त तीनों भाग मिलते हैं। इनकी प्रारंभिक कहानियों—'ग्राम'

१— 'इन्दु' १९१० ई०, कला २, किरण २, पृ० ६३।

२— वही, पृ० ६१।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'चन्दा' आदि के कथानकों में एकसूत्रता, प्रवाह आदि तत्व पूर्ण सफलता से आ गए हैं। अबतक चरित्र-चित्रण के लिए विश्लेषणात्मक शैली ही अपनायी जा रही थी। प्रसाद ने इसके लिए कथोपकथन तथा घटना का सहारा लेकर मौलिक प्रयोग द्वारा कहानी शिल्प विकास में योगदान किया। कहानी शिल्प को उन्होंने चित्रात्मकता दी, उसमें मानव की ललित वृत्तियों—प्रेम, सौन्दर्य आदि की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति दी। यही नहीं, कोमल भावनाओं को उभार कर नाटकीय वतावरण की सृष्टि करने वाली एक ऐसी कला दी जिसने कहानी को यथार्थ जगत से भावजगत के उस अतीन्द्रिय स्वप्निल वातावरण में पहुँचाया जहाँ पहुँचकर पाठक भाव-विभोर हो कह उठता है साहित्य का लक्ष्य सुन्दरम् ही है।

२. १. ३१ प्रसाद के उपरान्त प्रेमचन्द मई सन् १९११ के 'चाँद' में 'बड़े घर की बेटी'[१] लेकर आविर्भूत हुए। इन्होंने सर्वप्रथम यथार्थवादी परंपरा का विकास हिन्दी कथा साहित्य में किया। प्रसाद की कहानियों का सम्बन्ध भाव जगत से था, वस्तु जगत से नहीं, था भी तो बहुत कम। प्रेमचन्द की कहानियाँ इसके विपरीत वस्तु जगत से सम्बन्ध रखती हैं। इस काल में इनके अतिरिक्त अनेक कहानी लेखकों ने अपनी कहानियों द्वारा कहानी शिल्प के विकास में कुछ न कुछ योगदान दिया। जैसे 'मर्यादा' में बद्रीनाथ भट्ट की 'शाहजहाँ का अन्तिम काल' कहानी की संवेदना की दृष्टि से सफल कहानी है। देखिए—

'बेटी अल्लाह तुझे बरकत दे। मैं अब इस दुनिया से कूच किया चाहता हूँ—हाय कहाँ है आज अर्ज'·····बेटी मेरा पलंग जरा ताज वाले बरामदे में सरका ले चल·····ताजमहल को भी एक बार मरती वक्त देख लूँगा··।

पिता की आज्ञा बेटी कब उल्लंघन कर सकती थी, अपनी आँखों से मोती टपकाते हुए उसने आहिस्ते से चारपाई सरका दी।'[२]

सन् १९११ की 'इन्दु' में हरिदास माणिक की 'रेवातट की मृगया' तथा सन् १९११ की 'मर्यादा' में 'पन्नादासी' उल्लेख योग्य कहानी है।

१- 'चाँद', मई १९११।
२- 'मर्यादा', सन् १९११ जून, पृ० १३५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन ऐतिहासिक कहानियों का महत्व चरित्र-चित्रण तथा वातावरण चित्रण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसी वर्ष के 'स्वदेश बान्धव' में पन्नालाल शर्मा की 'आगरे का ताज' एक बड़ी भावपूर्ण कहानी आई। सन् १९११ की 'स्त्री दर्पण' में गदाधर प्रसाद ने 'पतिव्रता', 'डर क्या है', 'प्रयाग प्रदर्शिनी' 'गोवर्धनदास की कहानी' आदि सामाजिक कहानी लिखकर प्रेमचन्द परंपरा का समर्थन किया। इसी वर्ष 'मर्यादा' में छबीलेलाल गोस्वामी भी 'अम्बालिका' शीर्षक कहानी द्वारा राजनैतिक समस्याओं को कहानी में स्थान देने लगे। 'चाँद' में हेमन्त कुमारी चौधरानी की 'ज्वालासिंह' आई।

२. १. ३२ इस वर्ष प्रेमचन्द के साथ कई कहानी लेखक दिखाई पड़ने लगे। उस समय तक प्रेमचन्द की प्रतिभा में कोई मौलिक विशेषता नहीं दिखाई पड़ी। 'बड़े घर की बेटी' एक चरित्र-प्रधान कहानी है, जिसमें कथावाचक की भाँति कहानीकार सब कुछ अपनी तरफ से कहने का प्रयत्न करता है। चरित्र-चित्रण प्रधान इस कहानी में चरित्रों की केवल व्याख्या हुई है। यथा--

'आनन्दी एक बड़े उच्च कुल की लड़की थी। उसके बाप एक छोटी सी रियासत के ताल्लुकेदार थे। विशाल भवन, एक हाथी, तीन कुत्ते, बाग, बहरी, सिकरे, झाड़-फानूस, आनेरेरी मजिस्ट्रेटी और ऋण जो एक प्रतिष्ठित ताल्लुकेदार के भोग्य पदार्थ हैं, वह सभी यहाँ विद्यमान थे। भूसिंह नाम था। बड़े उदारचित्त, प्रतिभाशाली पुरुष थे। पर दुर्भाग्य, लड़का एक भी न था। सात लड़कियाँ हुईं और दैवयोग से सबकी सब जीवित रहीं। पहली उमंग में तो उन्होंने तीन ब्याह दिल खोलकर किये, पर जब पन्द्रह-बीस हजार का कर्ज सिर पर हो गया तो आँखे खुलीं, हाथ समेट लिया।'[1]

२. १. ३३ प्रारम्भ में प्रेमचन्द स्वयं पात्रों की विशेषताओं और विकृतियों का विवेचन करते थे। पर साथ ही किसी किसी स्थान पर छोटे, सार्थक और नाटकीय कथोपकथन का भी सहारा लिया है जो आगे के विकास के लिये बीज स्वरूप बन गये। यथा--

'आनन्दी--कहाँ जाते हो?
लालबिहारी--कोई मेरा मुँह न देखे।
आनन्दी--मैं न जाने दूँगी।
लालबिहारी--मैं तुम लोगों के साथ रहने योग्य नहीं हूँ।

१-- 'चाँद', मई १९११, पृ० २६।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्दी–तुम्हें मेरी सौगन्ध, अब एक पग भी आगे न बढ़ना।

लालबिहारी–जब तक मुझे यह न मालूम हो जाय कि भैया का मन मेरी तरफ से साफ हो गया, तब तक मैं इस घर में कदापि न रहूँगा।

आनन्दी–मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूँ कि तुम्हारी ओर से मेरे मन में तनिक भी मैल नहीं है।"[1]

उपर्युक्त कथोपकथन कथानक को गतिशीलता ही नहीं प्रदान करता, वरन् बड़े ही सूक्ष्म कलात्मक कौशल से आगे आने वाली घटनाओं की नाटकीय सूचना भी देता है, जो आगत भविष्य में विकसित होने वाले प्रौढ़ कथा शिल्प का संकेत भी करना है। यहीं कहानीकार का मानव के प्रति सहज आत्मीय भाव परिलक्षित होता है। वे मानव मन के विकारों से अवगत थे। इन विकारों का उन्होंने निर्ममतापूर्वक तिरस्कार किया पर मानव का नहीं। यही कारण है कि क्रोध से अभिभूत लालबिहारी उनकी घृणा का पात्र है पर पश्चात्ताप की अग्नि में जला दानव भी देवता कहलाता है फिर मानव को अंगीकार करने में क्या संकोच? 'बड़े घर की बेटी' कहानी की मूल संवेदना यही है और यही है प्रेमचन्द का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद जो वाद में एक वाद का ही रूप धारण कर लेता है।

२.१.३४ इन कुछ विकास चिह्नों के अतिरिक्त इनकी इस काल की कहानी में कोई विशेषता नहीं दिखाई पड़ती। पर प्रतिभा राख में छिपी हुई अग्नि होती है जो वायु के क्षणिक स्पर्श से पूर्ण प्रज्वलित हो उठती है। प्रेमचन्द की प्रतिभा राख में छिपी अग्नि थी जो आगे चलकर प्रज्वलित हुई। इस बीच दूसरे कहानीकारों की अनेक कहानियाँ आईं जो कहानी शिल्प विकास प्रक्रिया में एक न एक कड़ी जोड़ती गईं। १९१२ में विश्वम्भरनाथ जिज्जा की 'परदेशी'[2], राजा राधिकारमण सिंह की 'कानों में कँगना'[3] कहानियाँ कवित्वमयी भाषा के साथ प्रविष्ट हुईं। इनकी कहानी में नाटकीय शैली, कवित्वपूर्ण भाषा एवं भावों का चमत्कार एक साथ ही देखा जा सकता है। १९१३ में ही 'रक्षाबन्धन' के द्वारा विश्वम्भरनाथ शर्मा की प्रतिभा से भी हिन्दी संसार परिचित हुआ। श्री ज्वालादत्त शर्मा की कहानियाँ[4] भी सन् १९१४

१– वही।

२– 'इन्दु', सन् १९१२।

३– वही, सन् १९१३, कला ४, खंड ३, किरण ५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगीं। इन्होंने चरित्र-प्रधान कहानियाँ लिखकर 'प्रेमचंद' तथा विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' के कहानी शिल्प को विकास की दिशा दिखलाई। परिणामतः प्रेमचंद की 'प्रताप',[१] 'सौत',[२] 'पंचपरमेश्वर',[३] 'ईश्वरी न्याय',[४] 'बलिदान'[५] आदि कहानियाँ आईं। इन सब कहानियों में कहानी शिल्प की दृष्टि से वातावरण चित्रण में प्रेमचंद की कुशलता अभी से दिखलाई देने लगी थी। ऐसे चित्रण में स्थानीयता का पूरा ध्यान रखा गया है, जिसमें कहीं भी अयथार्थता या कृत्रिमता नहीं है। यथा—

'संध्या समय एक पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। शेख जुम्मन ने पहले से ही फर्श बिछा रखा था। उन्होंने पान, इलायची, हुक्के, तम्बाकू आदि का प्रबंध भी किया था। हाँ, वे स्वयं अलबत्ता अलगू चौधरी के साथ जरा दूर बैठे हुए थे। जब कोई पंचायत में आ जाता था तब दबे हुए सलाम से उसका शुभागमन करते थे। जब सूर्य अस्त हो गया और चिड़ियों की कलरवयुक्त पंचायत पेड़ों पर बैठी तब यहाँ भी पंचायत आरंभ हुई। फर्श की एक एक अंगुल जमीन भर गई। पर अधिकांश दर्शक ही थे। निमंत्रित महाशयों में से केवल वही लोग पधारे थे, जिन्हें जुम्मन से अपनी कुछ कसर निकालनी थी। एक कोने में आग सुलग रही थी। नाई तावड़तोड़ चिलम भर रहा था। यह निर्णय करना असंभव था कि सुलगते हुए उपलों से अधिक धुँआ निकलता था या चिलम दमों से। लड़के इधर उधर दौड़ रहे थे। कोई आपस में गाली-गलौज करते और कोई रोते थे। चारों तरफ कोलाहल मच रहा था। गाँव के कुत्ते इस जमाव को भोज समझकर झुंड के झुंड जमा हो गये थे'।[६]

२.१.३५ वस्तुतः आलोच्यकाल में प्रेमचंद की कहानी कला का

---

१. 'सरस्वती', सन् १९१४।
२. वही, सन् १९१५।
३. वही, सन् १९१६।
४. वही, सन १९१७।
५. वही, सन् १९१८।
६. 'सरस्वती' सन् १९१६।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास न हो सका था। उनकी वह कला जो आगे चलकर अनेक कहानीकारों के लिए प्रेरणादायक थी, आलोच्यकाल के उपरांत ही प्रस्फुटित हुई। उनकी आगे विकसित होने वाली इस कला के वीज उनके इस अपरिपक्व कहानी शिल्प में तो थे ही, साथ ही इस काल के दूसरे कहानी लेखकों का भी कम योगदान न रहा होगा। इनमें सबसे अधिक महत्व हम विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' को दे सकते हैं। आलोच्यकाल में कौशिक जी की 'समर्पण',[1] 'वंध्या',[2] 'साख',[3] 'दरिद्रता का पुरस्कार',[4] 'शांति'[5] तथा 'ताई'[6] का उल्लेख योग्य स्थान है। 'कौशिक' जी की कहानियों में पारिचारिक जीवन के छोटे छोटे यथार्थ चित्र हैं। वे जीवन के बाह्य रूपों एवं समस्याओं से अधिक संवद्ध हैं इसीलिए उनकी कहानियों का भी मूल स्वरूप सुधारवादी एवं आदर्शवादी है। 'कौशिक' जी की कहानियाँ घटना प्रधान हैं, पर उन घटनाओं की संयोजना वहुत ही कुशल ढंग से हुई है जिसमें रोचकता एवं कौतूहल अंत तक वना रहता है। ये घटनाएँ चूँकि अत्यंत तीव्रगति से घटती हैं, इसलिए उनमें तीव्रता के साथ प्रवाह भी निरंतर विद्यमान रहता है। 'कौशिक' जी की यह वहुत बड़ी विशेषता है कि संयोग तत्वों और कल्पनाशीलता का घटनाओं के साथ ऐसा समन्वय करते हैं कि सारी कहानी अत्यंत तीव्रता के साथ अग्रसर होती है। 'ताई' एक चरित्र प्रधान कहानी है, जिसमें प्रभावपूर्ण और मनोवैज्ञानिक ढंग से चरित्र परिवर्तन उपस्थित किया गया है। कथोपकथन के द्वारा वे पात्र की मानसिक स्थिति पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। यथा—

'रामेश्वरी एक सप्ताह तक बुखार में पड़ी रही। कभी-कभी जोर से चिल्ला उठती और कहती—'देखो देखो वह गिरा जा रहा है। उसे बचाओ—दौड़ो मेरे मनोहर को बचा लो।'

---

१. 'मर्यादा' सन् १९१८।
२. 'सरस्वती' सन् १९१७।
३. 'साख' सन् १९१८।
४. 'प्रभा' सन् १९२०।
५. 'सरस्वती' सन् १९२०।
६ वही।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी कहती––'बेटा मनोहर मैंने तुझे नहीं बचाया । हाँ हाँ मैं चाहती तो बचा सकती थी––मैंने देर कर दी ।'

'एक सप्ताह बाद रामेश्वरी का ज्वर कम हुआ, अच्छी तरह होश आने पर उन्होंने पूछा––मनोहर कैसा है ?

रामजीदास ने उत्तर दिया––अच्छा है ।

रामेश्वरी––'उसे मेरे सामने लाओ ।'

('ताई', विश्वम्भरनाथ 'कौशिक')

'कौशिक' जी के कथोपकथन संक्षिप्त, स्वाभाविक और भावों के अनुकूल हैं । भाषा उनकी साफ सुथरी है । इस प्रकार 'ताई' के द्वारा 'कौशिक' जी ने कहानी शिल्प विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान किया जो आने वाली पीढ़ी के लिए मार्ग दर्शक का कार्य करती है । पर १६०० से १६२० तक इस विकास प्रक्रिया के बीच १६१५ में ही 'गुलेरी' जी की 'उसने कहा था' कहानी 'सरस्वती' में छपी । कहानी-शिल्प की दृष्टि से यह कहानी उस युग की महत्तम उपलब्धि थी । इस कहानी के मनके उस काल की कुछ कहानियों में यत्र-तत्र दिखाई पड़ते हैं, पर इन बिखरे मनकों को संकलित कर उन्हें एक सुन्दरतम माला का रूप देने का भी यह कहानी एक अद्भुत प्रयास है । कथानक, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल, शैली, भाषा या उद्देश्य किसी भी दृष्टि से देखा जाय तो यह कहानी पूर्ण कहानी है । कथानक की दृष्टि से इस कहानी में प्रेम और कर्तव्य के संघर्ष की अभिव्यक्ति हुई है । इस रचना में प्रेम का अंकुर आठ वर्ष की एक बालिका के लिये बारह वर्ष के एक बालक के हृदय में जमता है जिसका विकसित रूप पच्चीस वर्ष पश्चात् युद्ध के मैदान में मृत्यु शैय्या पर पड़े नं० ७७ रैफल्स जमादार लहना सिंह के स्मृति पटल पर दिखलाई पड़ता है । इस बीच किशोरावस्था, युवावस्था कब और कैसे बीती इसका उल्लेख नहीं । साधारणत: प्रेम की उम्र बीस वर्ष से तीस के बीच होती है––जबकि 'गुलेरी' जी की कलम उसी उम्र की अवहेलना कर उस अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना करने में संलग्न है जिसको प्राप्त करने लिए आज का भौतिकवादी मनुष्य पीढ़ी दर पीढ़ी से साधनारत है ।

अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों के बीच से आरम्भ होकर युद्धभूमि तक तथा लहना और सूबेदारिनी के बचपन से लेकर जीवन की संध्या तक पच्चीस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्षों के विस्तृत देश-काल में यह कहानी फैली हुई किन्तु कहीं से भी कथानक में कोई शिथिलता नहीं दृष्टिगोचर होती। एक के उपरांत दूसरे दृश्य जैसे खुलते चले जा रहे हों। इसमें 'एक राजा था' से आरम्भ करके 'जैसे उसका राजपाट लौटा वैसे सबका लौटे' की कथाकथन वाली वर्णनात्मक प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव है। आरम्भ के लम्बे परिच्छेद में बम्बूकार्ट वालों के शब्द-चित्र देकर अमृतसर की एक सड़क का दृश्य प्रस्तुत है। इसी वातावरण में एक बालक और एक बालिका प्राय: महीने भर तक दुकान पर मिलते रहते हैं—वेशभूषा एवं बातचीत के संक्षिप्त संकेत से दोनों सजीव कर दिए गए हैं। यहीं पर बड़े ही सूक्ष्म स्पर्शों से बालिका की 'कुड़माई' का समाचार पाकर बालक की मानसिक अवस्था का चित्र अंकित करके दृश्य बदल जाता है। पाठक के समक्ष फ्रांस की लड़ाई का मैदान, सिक्ख सैनिक, उनकी हँसी दिल्लगी के किस्से कहानियाँ, खाई की चिपचिपी भूमि, बंदूकों की धाँय-धाँय, सिपाहियों की कर्त्तव्यनिष्ठा एवं वीरता, लड़ाई सब जैसे प्रत्यक्ष हो उठते हैं। पाठक को अमृतसर के दृश्य तथा इस दृश्य के बीच कोई संगति नहीं दिखाई पड़ती फलत: उसका कुतूहल बढ़ता है। अन्त के दृश्य में संगति मिल जाती है और वह पाता है कि अमृतसर का वह बालक ही जमादार लहना सिंह है, बचपन की वह सुखद स्मृति उसने आजीवन हृदय में सँजो रखी थी और भेंट होने पर उसने सूबेदारिनी (बचपन की बालिका) को जो वचन दिये थे उनका पालन किया। लहना सिंह का वह स्वर्गीय, किन्तु अत्यधिक मानवीय प्रेम हमारे हृदय पर सदैव के लिए एक स्थायी छाप छोड़ जाता है।

चरित्र का ऐसा कलात्मक अंकन, भावनाओं का ऐसा मूर्त प्रत्यक्षीकरण हिन्दी की कम कहानियों में मिलेगा। चरित्र और घटनाएँ अन्योन्याश्रित हैं। लेखक ने पात्रों का चरित्र-चित्रण मुख्यत: उन्हें घटनाचक्र में डालकर किया है और यदि कोई कसर रह गई है, तभी बीच में आकर दो चार कूँची विश्लेषणात्मक शैली में चला दी है। लहना सिंह की उदात्त अनुराग भावना शौर्य की मंजिल तय करती उत्सर्ग का ऐसा अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करती है।

नाटकीय कथोपकथनों के द्वारा पात्रों के चरित्र को विविक्त किया गया है। छोटे, चुस्त तथा व्यंग्यात्मक कथोपकथन आकर्षक हैं। यथा——

'लहना सिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा——

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अपनी वाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।'

'हाँ देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमा जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।

'लाड़ी होरा को भी यहाँ बुला लोगे। या वही दूध पिलाने वाली फिरंगी मेम।'

युद्ध से अवकाश मिलने पर सैनिकों का आपस में यह विनोद वातावरण को यथार्थ रंग देने में कम महत्व का नहीं है। वातावरण के बारीक से बारीक रेशे को भी उभार कर प्रस्तुत करने की 'गुलेरी' जी में अद्भुत क्षमता है। अब तक की कहानियों में अनेक स्थलों पर वातावरण का बड़ा स्वाभाविक एवं यथार्थ चित्रण हुआ पर 'कनस्तरों पर सोना', 'युद्ध की सीलन भरी खाइयाँ', 'मन-मन भर फ्रांस की मिट्टी का बूटों में चिपकना', 'दोनों ओर झरने वाले सोतों से मुक्त प्रकाशहीन खाइयों में हड्डियों में धँसने वाला जाड़ा' आदि छोटी छोटी बातें युद्ध स्थल के सजीव या स्वाभाविक वातावरण के निर्माण में अद्वितीय ही हैं।

उर्दू हिंदी मिश्रित मुहावरेदार माधुर्य एवं प्रसाद गुण से संपन्न भाषा तो कहानी का प्राण है, और उसके साथ स्थानीय बोली—हट जा जीने जोगिए, हट जा करमा वालिए, हट जा पुतां प्यारिए, बच जा लंबी वालिए आदि संपूर्ण कहानी में जीवन का संचार ही कर देती हैं।

इस तरह सन् १९०० से १९२० तक के कहानी-शिल्प के विकास को यह कहानी स्पष्ट करती है। जिस निर्माणाधीन रचनाक्रिया से उस काल की कहानी गुजर रही थी उसे इस कहानी में प्रकर्ष मिला है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय अध्यांय

रचनात्मक निबंध : पत्र-पत्रिकाओं के संदर्भ

३. १. १. प्रस्तुत काल की पत्र-पत्रिकाओं ने साहित्य की अन्य विधाओं के उन्नयन के साथ ही साथ निबंध साहित्य के विकास की पीठिका का कार्य किया ।

भारतेंदु युग ने व्यक्ति विशेष की छाप से मुक्त विषय विवेचन की मार्मिकता लिए हुए जिस एक शैली विशेष को जन्म दिया वह पनपी इसी युग में । इस युग की अनेक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से आगत भविष्य के अनेक निवंधकारों का मार्ग प्रशस्त हुआ । कहा जाता है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निवंध निवंध के तत्वों के अनुरूप हैं । पर रामचंद्र शुक्ल हों, या हजारीप्रसाद द्विवेदी, या पंत, प्रसाद, महादेवी, निराला हों, सबको प्रेरणा कहाँ से मिली है यदि इसका सूक्ष्म अध्ययन किया जाय तो पता चलेगा कि उनकी प्रेरणा स्रोत हैं इस काल की रचनाएँ, जो अधिकतर पत्र--पत्रिकाओं के माध्यम से ही साहित्य जगत् में आईं ।

३.१.२ अभाव ही आविष्कार का जनक है । मुद्रण यंत्रों के सुलभ होने पर जब लेखक और पाठक की दूरी समाप्त होने लगी तब लेखक पाठक से अधिक से अधिक नैकटच स्थापित करने के लिए उत्सुक हो उठा । गद्य की अन्य विधाओं, नाटक, उपन्यास, कहानी से तो लेखक पाठक का संबंध परोक्ष रूप में ही स्थापित होता है पर निबंध एक ऐसी विधा है जिसके माध्यम से लेखक पाठक में प्रत्यक्ष तादात्म्य हो जाता है । भारतेंदु जी ने यह तादात्म्य अपनी हल्की फुल्की चुटीली और सरल शैली के द्वारा स्थापित किया । कहीं कहीं तो ऐसा लगता है कि किसी मित्र को व्यक्तिगत पत्र लिख रहे हैं । यथा--

'कल साँझ को चिराग जले रेल पर सवार हुए । यह गये वह गये । राह में स्टेशनों पर बड़ी भीड़ । न जानें क्यों ? और मजा यह कि पानी कहीं-नहीं मिलता था । यह कम्पनी मजीद के खानदान की मालूम होती है कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईमानदारों को पानी तक नहीं देती। या सिप्रस का टापू सरकार के हाथ आने से और शाम में सरकार का बन्दोबस्त होने से यह भी शामत का मारा शामी तरीका अखतियार किया गया कि शाम तक किसी को पानी न मिले। स्टेशन के नौकरों से फर्याद करो तो कहते हैं कि डाक पहुँचावें रोशनी दिखलावै कि पानी दें। खैर जों तों कर अयोध्या पहुँचे।'[१]

शाम की सरकार, शामत का मारा, शाम तक पानी न मिलना इन टुकड़ों में शाम शब्द को लेकर जो कौतुक किया गया है, वह भारतेन्दु युग की शैली की एक विशेषता है।

३. १. ३ कहीं कहीं भारतेन्दु की निबन्धकला रीतिकालीन साहित्य से पूरी तरह नाता तोड़ती हुई हिन्दी में यथार्थवाद के विकास का रास्ता दिखाती दिखाई पड़ती है। यथा—

'लाँग बाँधें जनेऊ कमर में खोंसे बनारसी पंखी लिये एक पंडित जी आते हैं। अहह क्या फरमाइशी गरमी है मन में आता है कि थोड़ी सी मोल ले लें सन्दूक में तालों से खूब जकड़ इसे बन्द कर रक्खें और उसे माघ पूस के किल्ले ठिठुरते जाड़े में खोलें।.......

काशी से प्रस्तरमय नगर का तो कुछ पूछना ही नहीं। घर सब तनदूर हो जाते हैं। छत के पत्थरों को चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से प्रातःकाल की वायु से भी सहायता लेकर नहीं ठंढा कर सकता, यदि किसी छोटी खिड़की के पास मुँह ले जाओ तो अजगरों की श्वास और लोहारों की धौंकनी के सामने बैठने का आनन्द मिलता है, यद्यपि नीची गलियों में सूर्य की उज्ज्वल किरणें नहीं पहुँचतीं तो भी वे उन संतप्त गृहों के संताप से ऐसी संतप्त हो जाती हैं और उमस जाती हैं कि संकेत बदे हुए नायिका नायक के अतिरिक्त जिनको ऐसे प्राणों का शत्रु सूर्य भी शरद-ऋतु के चन्द्रमा सा आनन्ददायक होता है, एक 'चिड़िया का पूत' भी नहीं रहता'.....रेल पर जाने वाले पथिक कपड़ा पहिने बोझ से लदे सिपाहियों का धक्का खाये रुपया गँवाये भूखे प्यासे बिना नहाये धोये गाड़ी की कोठड़ियों में अचार के मटके में पसीने से पसीजे नीबू से ठसे जी से खट्टे होने को धूप में तपाये जाते हैं।'[२]

१—हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, फरवरी १८७६।
२—कविवचन सुधा—८ जून, १८७४।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसी सजीव उपमाएँ हैं। चित्रण की यथार्थता के साथ गरीब और पीड़ित जनता से पूर्ण सहानुभूति रखने वाले निबन्धकार भारतेन्दु की यह अपनी विशेषता है कि अपनी इस चुभती शैली, तथा भाषा से पाठक के मुख पर दो इंच की मुसकान लाकर रस से सराबोर कर देते हैं।

३. १. ४ भारतेन्दुकालीन लेखकों की शैली की यह जिन्दादिली देख डा० कृष्णलाल ने इस काल के साहित्य को 'गोष्ठी साहित्य' की संज्ञा से अभिहित किया। जिस प्रकार एक गोष्ठी के लिए जी खोलकर बातें करने वाले वातावरण की आवश्यकता होती है वह इस काल के अधिकांश निबन्ध लेखकों में पाई जाती है। पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि इस काल के सभी निबंध लेखक गोष्ठी साहित्य की विशिष्टता से ही समन्वित थे। पं० बालकृष्ण भट्ट, बाबू बालमुकुंद गुप्त को हम इस काल के गोष्ठी साहित्य लिखनेवाल लेखकों की श्रेणी में नहीं रख सकते। इन लेखकों की अपनी निजी शैली थी, जिनमें व्यंग्य और कटाक्ष कर तिलमिला देने की शक्ति के साथ ही उनकी अपनी स्वतंत्र विचारधारा भी थी। भारतेंदुकालीन इन दोनों लेखकों का योगदान द्विवेदी युग को भी मिला। इस प्रकार भारतेन्दुयुग में निबंध साहित्य का सूत्रपात हुआ। परिपक्वता अभी बाकी थी वह एक दिन एक युग का साध्य नहीं था। वह थी युगों तक चलती रहनेवाली कहानी, और वह कहानी चल रही है और चलती रहेगी।

३. १. ५ स्वरूप और विषय-वस्तु को देखते हुए पत्रकारिता और निबंध का बहुत निकट संबंध है। दोनों के पास विषय की स्वच्छदता है। अपने को व्यक्त करने का सशक्त और सुगमतम साधन दोनों ही हैं। यही कारण है कि सभी भाषाओं में निबंध के विकास में पत्र-पत्रिकाओं का बहुत बड़ा योग रहा है। इंगलैंड के विक्टोरिया युग में तथा फ्रांस और जर्मनी में उन्नीसवीं शताब्दी में निबंधों का आधार पत्र—पत्रिकाएँ ही थीं। आधुनिक हिंदी निबंध के जन्मदाता भारतेंदु ने भी 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका', 'बालबोधिनी', आदि पत्रिकाओं का ही संबल लेकर निबंध शैली का विस्तार किया था। 'हिंदी प्रदीप' के द्वारा बालकृष्ण भट्ट, 'ब्राह्मण' के द्वारा पं०. प्रतापनारायण मिश्र, 'आनंद कादम्बिनी' और 'नागरी नीरद' के द्वारा बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, 'वैष्णव पत्रिका' और 'पीयूष प्रवाह' द्वारा अंबिकाप्रसाद व्यास निबंध क्षेत्र में अवतीर्ण हुए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. १. ६ अंग्रेजी साहित्य की ओर देखें तो वहाँ भी पत्र-पत्रिकाओं ने ही निबंध के विकास में योगदान किया। बेकन के पश्चात् निबंधकला के विकास में सबसे बड़ा योग 'क्वार्टरली रिव्यू', 'ब्लैकवुड रिव्यू' आदि पत्र-पत्रिकाओं का ही था। इन्हीं से हंट, हैजलिट, गिफर्ड, लैंब, मेकाले जैसे निबंधकारों से साहित्य जगत् परिचित हुआ। इसका कारण है निबंध का पत्रकारिता के बहुत निकट होना। यद्यपि दोनों को अपने विषय की स्वच्छंदता है, क्योंकि एक यदि सार्वजनीन साहित्य है तो दूसरा सामयिक, पर व्यक्तित्व और निजीपन दोनों का ही आवश्यक तत्व हैं। यहीं वह तत्व है जो इन दोनों को इतने निकट ले आता है जबकि उद्देश्य की दृष्टि से दोनों दो छोर पर हैं। सामयिक साहित्य का उद्देश्य सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि तात्कालिक विषयों पर प्रकाश डालना होता है, और निबंध का उद्देश्य ठीक इसका उल्टा होता है। निबंधकार अपने विचार और चिंतन को प्रकाशित करता हुआ सर्व के साथ स्व का तादात्म्य स्थापित करता है, जो सार्वजनीन तथा सार्वकालिक होता है।

३. १. ७ चूंकि निबंध और पत्रकारिता का निकट संबध है, अतः पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही इस काल में निबंधों का विकास हुआ। भारतेन्दु युग का परिवेश द्विवेदी युग तक आते आते विस्तृत हो गया था। भारतेंदु युग की मस्ती और जिंदादिली चिंतन, विचार और उत्तरदायित्व वहन की गरिमा में परिवर्तित हो चुकी थी। अतः जो कुछ भी कार्य इस काल में हुआ वह भिन्न प्रकार का हुआ पर उसकी जड़ें पूर्ववर्ती युग के साहित्य में ही थीं। किन्हीं दो युगों के मध्य कोई एक विभाजक रेखा खींचना असंभव है। जब किसी युग में कोई नया बीज अंकुरित होता है तो पल्लवित और पुष्पित होता है दूसरे ही युग में। निबंध साहित्य का बीजवपन हुआ तो अवश्य भारतेंदु युग में ही पर उसका पल्लवन हुआ द्विवेदी युग में ही। यही नहीं, इस काल के निबंध अपने विकास से अधिक आनेवाले युग के विकास के माध्यम बने। इसका वास्तविक महत्व समझने के लिए यह आवश्यक है कि निबंधों का निरीक्षण निबंध कही जाने वाली रचनाओं तक ही सीमित न रखा जाय, बल्कि उन सब रचनाओं के निबंध पक्ष को भी देखा जाय जो इस काल में लिखी गईं। इस दृष्टि से देखने पर हमें तत्कालीन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यासों, आख्यायिकाओं, संस्मरण, यात्रावर्णन, जीवनचरित तथा देश विदेश की चर्चाओं आदि में प्रचुर उदाहरण मिलेंगे। यथा—

चरित्र चित्रण के मध्य—'भई सुजन, परिजन मित्र रूपी शत्रु किनसे किनसे बचें। सब विचित्र हैं। किसकी किसकी लीला गावें? हाय कैसी कठोर सुजनता है, भीतर से घृणा करने पर भी मुझसे सप्रेम भाषण। प्रीति रचना चातुरी। जाने दो यह सब भयानक है।...'[1]

लेखक—रामसहाय

आख्यायिका द्वारा तत्कालिक आलोचकों पर कटाक्ष करते समय लेखक निबंध की शैलो अपना लेता है—

'आपकी आँखों में एक विचित्र प्रकार की रोशनी थी और बहुधा आप सगर्व कहा करते थे कि हमारे आँखों से नई रोशनी की रोशनी झलकती है। पर जनसाधारण भी ऐसा ही समझते हों हम नहीं कह सकते। हमारे अनेक मित्रों ने तो हमसे अनेक बार कहा है कि आपकी आँख एक ऐसे जीव के समान है जो रात को चूहे मारा करता है। आँखों की बात हमारे मित्र ही जानें पर आपकी आवाज बड़ी ही सुरीली थी, यहाँ तक कि आपके बोलने के समय अनेक मनुष्य विशेष कर धोबी बाहर खड़े हो जाया करते थे।····
······सुनते हैं हिन्दी में आजकल 'भारती' नाम की कोई पुस्तक किसी नामी लेखक की छपी है। बस उसी की कड़ी समालोचना करनी तुम शुरू कर दो। देखो, तुम्हारे आफिस में रूपयों का ढेर लग जाता है या नहीं। पर समालोचना 'कड़ी' का मतलब यह है कि गुण वगैरह कुछ न देख, सिर्फ एक एक शब्द पर गाली देते जाना।'[2]

'नई रोशनी के बाबू'—लेखक श्रीयुत····, अल्मोड़ा

यही नहीं विविध प्रसंग स्तम्भ में भी कही कहीं निबन्ध का यह रूप दिखलाई पड़ता है। यथा—

'देखा पाठक! जिस मनुष्य को लेखक का मत और सम्पादक का मत कहाँ तक एक होता है इतनी सी समझने की बुद्धि नहीं है वह सम्पादकी करने और समालोचक बनने की डींग हाँके आश्चर्य।'[3]

लेखक—दिवाकर

---

१. 'शिवगुप्त' पृ० १२, इंदु १६७१।

२— 'इन्दु' १६७१, पृ० १३१।

३— वही, पृ० ६७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं कहीं गल्प का प्रारंभ ही निवन्धात्मक शैली में होता दिखाई देता है—

'जहाँ सफेदपोश भद्र पुरुषों को गुजरते हुए हर वक्त यही आशंका रहती है कि कहीं किसी खिड़की या दरवाजे से कोई कहारिन रसोई का मैला पानी या सड़ा हुआ दाल भात डालकर वे मौसम की होली न खेल डाले, जहाँ सड़े हुए आम और केले के छिलके बालबच्चों का मलमूत्र और पुराने चिथड़े तथा घर का कूड़ा करकट हर तरफ तितर बितर रहता है जिनपर पाँव फिसलकर गिर पड़ने का पथिकजन को हरवक्त भय रहता है, उनकी गन्धी गली का भी वैसा ही सुन्दर चित्र अपने चित्त में खैंच लेना चाहिए।'[1]

'गन्धी गली का एक दृश्य', लेखक—रामनारायन शर्मा

३. १.८ भारतेन्दु के निवन्धों में यत्रतत्र पायी जाने वाली यथार्थ-वादिता यहाँ अपने विकसित पथ पर दिखाई देती है, जिसका पूर्ण विकास आजतक के यथार्थवादी चित्रण में देखा जा सकता है।

द्विवेदी जी की निवन्धकला का अवलोकन करने के लिए 'सरस्वती' के अंकों को उलटना आवश्यक है, क्योंकि 'सरस्वती' और द्विवेदी दो भिन्न नहीं, शरीर दो आत्मा एक वाला मामला है। 'सरस्वती' द्वारा द्विवेदी जी ने निवन्ध क्षेत्र में सबसे पहला कार्य जो किया वह था आलोचना तथा निवंध के समन्वय का। उद्देश्य की दृष्टि से भी ये कृतियाँ आलोचना होते हुए भी आकार की दृष्टि से निवन्ध की कोटि में आती हैं। 'हिन्दी कालिदास की समालोचना', 'नैषध चरित और सुदर्शन[क१]', 'वामन शिवराम आपटे'[२], 'नायिका भेद'[३], 'कवि कर्त्तव्य[४]', 'महीष शतक की समीक्षा'[५] आदि निवन्धों में द्विवेदी जी का निवन्धकार तथा आलोचक दोनों रूप दिखाई पड़ता है। वस्तुतः द्विवेदी के निवन्धों का मूल उद्देश्य था मनोरंजनपूर्वक सरस्वती के पाठकों का ज्ञान-वर्द्धन तथा रुचि परिष्कार। कलात्मक अभिव्यक्ति कहीं भी उनकी

१– 'इन्दु' १९७१, पृ० ३२।
१क– 'सरस्वती' १९०३, पृ० ३२१।
२– 'सरस्वती' १९०१, पृ० ७।
३– वही, पृ० १९५।
४– वही, पृ० २३२।
५– वही, पृ० ३४५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निबन्ध रचना का साध्य नहीं हो सकी है। अज्ञात रूप से अनायास ही हो आत्माभिव्यंजना द्विवेदी जी की अन्य रचनाओं में जैसे 'पुस्तक परीक्षा', 'विविधि वार्ता' जैसी चर्चाओं में पायी जाती है वह भी उनकी निबन्धकारिता की द्योतक है। यही नहीं उनके अनुवादों में भी उनके व्यक्तित्व की इतनी गहरी छाप है कि वे निबंध की श्रेणी में आ जाते हैं।

३. १. ६ पत्रकार द्विवेदो का लक्ष्य 'सरस्वती' द्वारा ज्ञानवर्द्धन तथा रुचि परिष्कार करना था । सामयिकता की रक्षा, जनता के प्रश्नों का समाधान और समाज को गतिविधि देने का महत् कार्य पत्रिका के माध्यम से सरलता से सम्पन्न हो सकता है । अतः इस कार्य का उत्तरदायित्व सबसे अधिक उस युग की 'सरस्वती' ने वहन किया। यद्यपि 'मर्यादा', 'इन्दु', 'नवनीत', 'भारत मित्र', 'हिन्दी प्रदीप', 'नरसिंह', 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका', 'स्त्रीशिक्षक,' स्त्रीदर्पण' आदि भी इसी कार्य में ही संलग्न थीं पर इन सबसे महत् कार्य संपादन हुआ 'सरस्वती' के माध्यम से महावीर प्रसाद द्विवेदी के ही द्वारा । अपने विचार के अनुरूप ही उन्होंने तत्कालीन पत्रिकाओं में शताधिक रचनाएँ लिखीं, जिनमें 'सरस्वती' केन्द्र थी । 'साहित्य की महत्ता', 'कवि और कविता','कवि कर्तव्य', 'प्रतिमा', 'नाटक' आदि निवन्ध तो ज्ञानभंडार की अभिवृद्धि करते ही हैं, इसके अतिरिक्त शक्तिपरक निबंध लिखने में भी द्विवेदी जी पीछे नहीं रहे। 'दण्ड देव का आत्मनिवेदन', 'अनुमोदन का अन्त', 'अभिनंदन मेले' और 'सम्मेलन के भाषण','सम्पादक की विदाई' आदि आत्मनिवेदनात्मक निबंधों के सुंदर नमूने हैं। इनमें द्विवेदी जी स्वयं ही निबन्ध के केन्द्र बन गये जिससे निवन्ध में रोचकता, स्वतन्त्र भावना, आत्मीयता आ गई। 'नल का दुस्तर दूत कार्य', 'गोपियों की भगवद्भक्ति', 'कालिदास का मेघदूत रहस्य', कालिदास की दिखाई हुई प्राचीन भारत की 'एक झलक' आदि निबंधों में स्थान स्थान पर रमणीय वातावरण उपस्थित करने में लेखक को पूरी सफलता मिली है । यथा—

"...इसमें कान सहित अपने कपोल को हाथ पर रक्खे हुए दमयंती चुपचाप बैठी रही । खुले हुए कान से नल की उक्तियाँ मात्र उसने सुनी । दूसरे कान को हाथ से ढँक कर देव संबंधी अपने अनुराग की बातें उसने अनसुनी कर दी ।[1]

—'नल का दुस्तर दूत कार्य'

---

१. 'सरस्वती' १९१२, पृ० २५६ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जित ज्ञान के साथ विषय को अपना बनाकर आत्मीय ढंग से प्रकट करने का भी द्विवेदी जी का अनूठा ढंग है। यथा—

'याचकों के लिए तो तू कल्पवृक्ष हो रही है। पर मेरी तरफ एक बार अच्छी तरह देखती भी नहीं। मुझे दृष्टि दान तक नहीं देती। मुझसे इतनी कंजूसी क्यों? आँखों से आँसुओं की झड़ी बंद कर मंद मुसकान रूपी कौमुदी को फैलाने दे। नेत्र खंजरियों को यथेच्छ विहार करने दे। बोल बोल। अपनी मधुमयी वाणी सुना कर मेरे मुरझाए हुए हृदय पुष्प को फिर प्रफुल्लित कर दे। चंद्रमा को निशानारी के समान नल की एकमात्र तू ही प्राणाधार है'।[1]

—'नल का दुस्तर दूत कार्य'

३. १. १० द्विवेदी जी ने निबंध का प्रयोग और एक कार्य के लिए किया; वह था अनुकरणीय व्यक्तियों के चरित्रों के चित्रण द्वारा पाठकों की बुद्धि और चरित्र का विकास। द्विवेदी जी के पूर्व भारतेन्दु युग में इस प्रकार के संक्षिप्त जीवन चरित्र लिखने का कोई प्रयास नहीं हुआ। प्रबंध काव्य के नायक तथा वैष्णव वार्ताओं के धार्मिक पुरुष ऐतिहासिक सत्य का कितना प्रतिपादन करते थे इसमें संशय ही है। द्विवेदी जी ने ही हिन्दी साहित्य की इस कमी का अनुभव किया अतः उन्होंने 'सरस्वती' द्वारा ऐसे पात्रों का यथातथ्य संक्षिप्त चरित्र चित्रण किया, जो पाठकों की रुचि को परिष्कृत, भावों को उद्दीप्त एवं बुद्धि को प्रेरित करने में समर्थ हुआ।

३. १. ११ द्विवेदी जी ने कुछ निबंध ऐसे भी लिखे जो मनोविज्ञान पर आधारित हैं। इसमें विषय का विवेचन बड़ी गंभीरता से हुआ है। इसी परिपाटी पर आगे रामचंद्र शुक्ल ने अनेक निबंध लिखे। 'लोभ'[2] शीर्षक निबंध इसी कोटि में आता है। इसमें विवेच्य विषय का प्रतिपादन इतने मनोरंजक ढंग से किया गया है कि पाठक थोड़ी देर के लिए भूल जाता है कि वह अपनी किसी कुप्रवृत्ति पर कटाक्ष पढ़ रहा है। यथा—

'लोभ एक तरह की बीमारी है, परन्तु है बड़ी सख्त बीमारी। सख्त इसलिए है कि वह अपने बढ़ाने का यत्न करती है घटाने का नहीं। जो

१. वही, पृ० २५४।
२. 'सरस्वती' १९०८ ई०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य भूखा होता है वह भोजन करता है, छोड़ नहीं देता। परन्तु लोभी का उल्टा प्रकार है। उसे द्रव्य की भूख रहती है, परंतु जब वह उसे मिल जाता है तब उसे वह काम में नहीं लाता, रख छोड़ता है और अधिक धन पाने के लिए दौड़ धूप करने लगता है।[1]'

—'लोभ'

३.१.१२ द्विवेदी जी के पश्चात् निवन्ध क्षेत्र में दूसरा नाम बालमुकुंद गुप्त का लिया जा सकता है। यद्यपि गुप्त जी भारतेन्दु युग के ही साहित्य स्रष्टा थे पर उनकी साहित्य साधना का विस्तार द्विवेदी युग तक समान गति से बना रहा। फलतः उसमें भारतेन्दु और द्विवेदी-दोनों महान् व्यक्तियों का सम्मिलित प्रभाव पड़ा, जिससे भारतेन्दुयुगीन व्यंग्य के साथ द्विवेदी युग का गांभीर्य आ गया। गुप्त जी द्वारा ही भारतेंदुकालीन चुटीले और स्पष्ट व्यंग्य पर शालीनता का आवरण चढ़ा तथा स्पष्टता के स्थान पर सांकेतिकता तथा व्यंजकता आई। इनके 'शिवशंभु के चिट्ठे' राजनीतिक व्यंग्य प्रधान निवन्ध हैं, जिनमें लार्ड कर्जन, लार्ड मिण्टो, भारत सचिव लार्ड मार्लो, पश्चिमी बंगाल का गवर्नर और अंग्रेजी राज्य व्यंग्य का शिकार हुआ है। इन निवन्धों का उद्देश्य विशुद्ध राजनीतिक था, जिसका मूल स्वर अंग्रेजों की कूटनीति का रहस्योद्घाटन करके देशभक्ति का वातावरण पैदा करने वाला था। शिवशंभु के चिट्ठे के समान ही १९०४ में कन्नड़ के साप्ताहिक पत्र 'सप्तदीपिके' में श्री पंजे मंगेशराव जी ने हक्टेमल्ल के नाम से हक्टेमल्लन पंगलु (भले बाज की पत्रावली) लिखी। इन पत्रों द्वारा मंगेशराव जी ने भी समाज में होनेवाले स्वार्थियों के अत्याचार, धार्मिक संस्थाओं के नाम पर धन संग्रह कर हड़पने वाले सदस्यगण, इक्के तांगे का मालिक आदि की पोल खोली। 'शिवशंभु के चिट्ठे' के समान ही इनमें भी व्यंग्य की मीठी चुटकियाँ हैं। 'शिवशंभु के चिट्ठे' में निबंधकार गुप्त का चुटीला प्रहार द्रष्टव्य है—

'आपने माई लार्ड! जब से भारतवर्ष में पधारे हैं; बुलबुलों का स्वप्न ही देखा है या सचमुच कोई करने योग्य काम भी किया है? खाली अपना खयाल ही पूरा किया है या यहाँ की प्रजा के लिए भी कुछ कर्तव्य पालन किया। एक बार यह बातें बड़ी धीरता से मन में विचारिए।

१. वही, पृ० १८५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी भारत में स्थिति की अवधि के पाँच वर्ष पूरे हो गये। अब यदि आप कुछ दिन रहेंगे तो सूद में, मूलधन समाप्त हो चुका। हिसाब कीजिये नुमाइशी कामों के सिवा काम की बात आप कौन सी कर चले हैं और भड़कमवाजी के सिवा ड्यूटी और कर्तव्य की ओर आपका इस देश में आकर कब ध्यान रहा है ? इस बार के बजट की वक्तृता ही आपके कर्तव्य काल की अंतिम वक्तृता थी। जरा उसे पढ़ तो जाइये फिर उसमें आपकी पाँच साल की किस अच्छी करतूत का वर्णन है ? आप बारंबार अपने दो अति तूमतराक से भरे कामों का वर्णन करते हैं। एक विक्टोरिया मिमोरियल हाल दूसरा दिल्ली दरबार। पर जरा विचारिए तो यह दोनों काम 'शो' हुए या 'ड्यूटी' ? विक्टोरिया मिमोरियल हाल चन्द पेट भरे अमीरों के एक दो बार देख आने की चीज होगा। उससे दरिद्रों का कुछ दुःख घट जावेगा या भारतीय प्रजा की कुछ दशा उन्नत हो जावेगी, ऐसा तो आप भी न समझते होंगे।'[1]

—'शिवशंभु का चिट्ठा'

...

३. १. १३ गंभीर बात को भी विनोदपूर्ण ढंग से कहने का गुप्त जी का यह ढंग अपना अनूठा है। अपने तथा अपने देशवासियों की हृदयस्थ वेदना को प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करने का कौशल गुप्त जी की अपनी विशेषता थी। यह ऐसा साधन था जिसमें चोट खानेवाला तिलमिलाने के सिवा क्या कर सकता था ? यही नहीं निबंध रोचक तब और हो उठता है जब वार्तालाप शैली में लिखा गया हो। इन चिट्ठों में निबंधकार ऐसे बात करता है जैसे दो आदमी आमने सामने बैठे हों, और एक आदमी दूसरे की लानत मलामत कर रहा हो, और सामने वाला सिर झुकाए सब कुछ सुनता जा रहा हो। अत्याचार से पीड़ित व्यक्ति जब अत्याचारी का कुछ अनिष्ट कर सकने में असमर्थ होता है तो उसे अपने मन की वेदना कह लेने मात्र से ही पर्याप्त संतोष होता है, और सुननेवाला भी यदि पीड़ित वर्ग का है तो उसकी तृप्ति अनिर्वचनीय हो जाती है। साहित्य का भी यही उद्देश्य है, अनिर्वचनीय आनंद। इन चिट्ठों को पढ़कर जो सुख, जो रस उस काल के भारतीय पाठकों को मिला होगा उसका अनुमान अभी भी लग रहा है, जब हम स्वतंत्र है। समय प्रधान इन चिट्ठों में कटाक्ष के साथ युगानुकूल सजगता भी दिखाई देती है। साम-

---

१– 'भारतमित्र' १९०३ ई०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यिकता का दामन पत्रकार छोड़ नहीं सकता । भारतीयों के कुचले आत्मसम्मान को जिलाये रखने तथा उनमें नया उत्साह भरने के लिए गुप्त जी ने 'बंग विच्छेद' शीर्षक निबंध लिखा——

'यह बंग विच्छेद बंग का विच्छेद नहीं । बंग निवासी इससे विच्छिन्न नहीं हुए, वरंच और मुक्त हो गये । जिन्होंने गत १६ अक्टूबर का दृश्य देखा है वह समझ सकते हैं कि बंग देश या भारतवर्ष में नहीं पृथ्वी भर में वह अपूर्व दृश्य था । आर्य संतान उस दिन अपने प्राचीन देश में विचरण करती थी । बगभूमि ऋषि मुनियों के समय की आर्यभूमि बनी हुई थी । किसी अपूर्व शक्ति ने उसको उस दिन एक राखी से बाँध दिया था । बहुत काल के पश्चात् भारत संतान को होश हुआ कि भारत की मट्टी वन्दना के योग्य है । इसी से वह एक स्वर से 'वंदेमातरम्' कहकर चिल्ला उठे । बंगाल के टुकड़े नहीं हुए, वरंच भारत के अन्यान्य टुकड़े भी बंग देश से आकर चिपटे जाते हैं······भारतवासियों के जी में यह बात जम गई कि अंग्रेजों से भक्तिभाव करना वृथा है, प्रार्थना करना वृथा है और उनके आगे रोना गाना वृथा है । दुर्बल की वह नहीं सुनते ।'[1]

३. १. १४ सारांशतः गुप्त जी ने भारतेंदु युग के प्राण को द्विवेदी युग के शरीर में डाला । भारतेंदु युग के नवजागरण के अभिनंदन का आवेगमय उल्लास, राष्ट्र प्रेम का ज्वार, नवनिर्माण की बेचैन कामना को द्विवेदी युग की विकसित भाषा ने अभिव्यक्ति की प्रांजलता का रूप दिया । यह तब ही संभव हो सका जब उनका अपना व्यक्तित्व प्रधान था । जैसा डा० कृष्णलाल का कथन है कि 'भारतेंदु युग के लेखक गोष्ठी के एक अंग थे' गुप्त जी के लिए उपयुक्त नहीं है । गुप्त जी में व्यक्तित्व की प्रधानता थी, जो भारतेंदु युग में दिखाई दे रही थी और द्विवेदी युग में आकर तो पूर्ण निखर उठी । पूरे निबंध को व्यंग्यात्मक बनाए रखना, लाक्षणिकता और प्रतीकात्मकता के माध्यम से अपनी बात कहना, मुहावरों और लोकोक्तियों द्वारा अभिव्यंजना की प्रेषणीयता को बढ़ाते जाना और लक्ष्य पर करारी चोट करना आदि उनकी शैली की अभूतपूर्व विशेषताएँ हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं । शिवशंभु के चिट्ठे में ही इसका उदाहरण देखिए——

'आज उसे बुलबुलों की कमी नहीं है । आज उसके खेलने का मैदान

१. 'भारतमित्र', २१ अक्टूबर १९०५ ई० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वुलवुलिस्तान वन रहा है। आज शिवशंभु वुलवुलों का राजा ही नहीं, महाराजा है। आनंद का सिलसिला यहीं नहीं टूट गया। शिवशंभु ने देखा सामने एक सुंदर वाग है। वहीं से सव वुलवुलें उड़कर आती हैं। वालक कूदता हुआ दौड़कर उसमें पहुँचा। देखा, सोने का पेड़, पत्ते और सोने के ही नाना रंग के फूल हैं। उन पर सोने की वुलवुलें वैठी गाती हैं...... वहीं एक सोने का महल है। उस पर सैकड़ों कलश हैं। उन पर भी वुलवुलें वैठी हैं।...पर यह आमोद वहुत देर तक सुखदाई न हुआ। वुलवुलों का खयाल अव वालक के मस्तिष्क से हटने लगा। उसने सोचा—है ? मैं कहाँ उड़ जाता हूँ ? माता पिता कहाँ ? मेरा घर कहाँ ? इस विचार के आते ही सुख स्वप्न भंग हुआ। वालक कुलवुलाकर उठ वैठा। देखा और कुछ नहीं, अपना ही घर और अपनी ही चारपाई है।"[1]

यहाँ वालक लार्ड कर्जन है, वुलवुलिस्तान भारत विषयक उनकी रंगीन कल्पना और स्वयं को उसका सर्वस्व और एकमात्र शासक वने रहने की भ्रांति है। इस प्रकार अप्रस्तुत द्वारा प्रस्तुत की आयोजना करके गुप्तजी ने गद्य की उत्कट शैली को जन्म दिया। इनकी इस व्यक्तिगत शैली की भाषा वड़ी ही सरस, सशक्त और निखरी हुई है। यद्यपि द्विवेदी युग के पहले भाषा का कोई स्थिर रूप निश्चित नहीं हुआ था, फिर भी गुप्तजी की इस चुटीली व्यंग्य प्रधान शैली के लिए जैसी भाषा की आवश्यकता थी वैसी भाषा ही इनकी रचनाओं में मिलती है। इसको देख यह कहने के लिए विवश होना पड़ता है कि भारतेंदु युग की आत्मा द्विवेदी युग के शरीर को पा जीवंत हो उठी। भाषा की सशक्तता का सवसे वड़ा कारण था गुप्त जी का उर्दू पत्र के संपादन का अनुभव। यही अनुभव प्रस्फुटित हुआ 'वंगवासी' और 'भारतमित्र' के संपादन काल में। भाषा का चलतापन उर्दू पत्रों के संपादन का ही परिणाम था। इसी से छोटे छोटे वाक्यों में भावों को प्रभावी रूप से व्यक्त करने में वे समर्थ हो सके। मौजी और विनोदी स्वभाव होने से व्यंग्य की विलक्षणता उनकी कृतियों में पर्याप्त है। इन्हीं कारणों से इनकी कुछ रचनाओं में निवंध के तत्वों का सफलता से

---

१. 'भारतमित्र', २१ अक्टूवर १६०५ ई०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समावेश हुआ। 'शिव शंभु का चिट्ठा' और चिट्ठियों और खत में चुहल-बाजी, छेड़छाड़, इनकी जिंदादिली के निदर्शन हैं। यथा—

'नारंगी के रस में जाफरानी बसंती बूटी छानकर शिवशंभु शर्मा खटिया पर पड़े मौजों का आनंद ले रहे थे। खयाली घोड़ों की वागें ढीली कर दी थीं। वह मनमानी तुकबंदी भर रहा था। हाथ पाँव को भी स्वाधीनता दी गई थी। वे खटिया के तूल अरज की सीमा का उल्लंघन करके इधर उधर निकल गये थे। कुछ इसी प्रकार शर्मा जी का शरीर खटिया पर था और खयाल दूसरी दुनिया में। अचानक एक सुरीली गाने की आवाज़ ने चौंका दिया। कनरसिया शिवशंभु खटिया पर उठ बैठे। कान लगाकर सुनने लगे।'[1]

—'शिवशंभु का चिट्ठा'

३. १. १५ वालमुकुंद गुप्त के समान वालकृष्ण भट्ट भी भारतेन्दु युग की विरासत लेकर आये हुए निवन्धकार थे। भट्ट जी स्वतंत्रचेता तथा प्रगतिशील विचारक थे। इन्होंने सामाजिक,राजनीतिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक निवन्ध लिखे। शैली अधिकतर इन्होंने व्याख्यात्मक और विचारात्मक ही अपनायी। 'ब्राह्मण' पत्र में ही उनकी अधिकांश रचनाएँ देखने को मिलीं, पर 'हिंदी प्रदीप', 'सारस्वत खत्री', 'मर्यादा', 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका', 'इन्दु', 'औदुम्बर' तथा 'सरस्वती' में भी इनके निवन्ध दिखाई पड़े। 'साहित्य', 'मधुप और मधुर मधु', 'हमारा वसन्त', 'परदा', 'प्रेम के बाग का सैलानी', कविता क्या है', 'नर नारी', 'संस्कृत की संकुचित दशा', 'माता', 'उपयोगिता', 'प्राचीन भारत में शासन प्रथा', 'हमारे यहाँ का दान' जैसे शीर्षकों को लेकर इन्होंने लिखा। किसी भी शीर्षक वाले निवन्ध में विलायत यात्रा, समाज की सेवा, देश प्रेम और स्वभाषा प्रेम आदि का आ जाना स्वाभाविक था। यथा—

'साधारण शिक्षा अप-टू-डेट है। हिन्दुस्तान को ऊपर उठाकर आसमान के सातवें तवक पर चढ़ा देने के अनेक उपायों में तीन उपाय वहुत ही अप-टू-डेट माने गये हैं—(१)सवों का सहयोजन (२)विलायत गमन (३)विधवाओं का पाणिग्रहण।'[2]

३. १. १६ भट्ट जी हिन्दी के सर्वप्रथम निवन्ध लेखक हैं। फिर भी इनके निवन्धों में रचना का प्रारंभिक स्वरूप न मिलकर उसका सुसंस्कृत रूप पाया

१—'भारत मित्र', ११ अप्रैल १९०३ ई०।
२—'मर्यादा' जून १९१२, पृ० २०१।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। इनका हर निबन्ध भाषा की सजीवता, रोचकता और स्थान-स्थान पर सुंदर मुहावरों की लड़ी से गुँथा हुआ एक सुंदर साहित्यिक सौरभ से युक्त स्तवक है। इनके निबन्ध के एक-एक शब्द में जो रस है, मौलिकता है, अनूठापन है वह आज भी किसी लेखक की भाषा में मिलना कठिन है। इनके छोटे-छोटे निबन्धों में भी बिहारी के दोहों की तरह सरसता और साहित्यिकता भरी रहती है।

भट्ट जी तेजस्वी लेखक थे। भाषा पर उनका पूरा अधिकार था। विषय के अनुरूप भाषा का प्रयोग करना उनकी क्षमता को प्रकट करता है। जब वह हास्य या ठठोल लिखते थे तो भाषा भी वैसी ही हास्यमयी, रसीली और चुहल रहती थी जब किसी पर कटाक्ष करते थे तो भाषा भी व्यंग्यपूर्ण रहती थी। श्रृंगार रस लिखते थे तो भाषा भी मोहक और सौंदर्य से पूर्ण रहती थी और यदि किसी गंभीर विषय पर लिखते थे तो भाषा भी उत्कृष्ट और गंभीर रहती थी। परन्तु सभी प्रकार के निबन्धों में कहानी जैसा आनन्द आता है। भट्ट जी ने भाषा में व्याकरण सम्मत रूप का कोई ध्यान नहीं रखा, पर मुहावरों, और लोकोक्तियों का प्रयोग होने के कारण इन निबंधों में व्यंग्य और वक्र-व्यंजना का सुंदर परिपाक हुआ है। देखिए—

'जिस समय मनुष्य का दिन फिरता है, लक्ष्मी देवी कृपा करती है, अर्थात् कुछ रस आ जाता है। उस समय अपने पराये पंडित, मौलवी, साधु, फकीर, वैद्य, हकीम, गँजेड़ी, भँगेड़ी, ऐरे गैरे, ये वो न पूछिये कौन कौन नाना प्रकार के मनुष्य धमाधम आ टपकते हैं फिर क्या है 'जहाँ देखी थाली प्रात वहाँ गँवायी सारी रात।'[१]

—'हमारा बसन्त'

३.१.१७ इनके वर्णन में रस और लालित्य है, भाषा में ओज और आकर्षण है। सच्चे साहित्य की यही कसौटी है। भट्ट जी के निबंध में काल का पुट भी सर्वत्र मिलता है। देखिए—

'कुआर कार्तिक में जो शरत-कालीन बादल उठते हैं वे जितना गरजते हैं उतना बरसते नहीं। पर बरस के वसुधा को सब ओर से जलमग्न कर देते हैं। वैसा ओछे छिछोर भड़क बहुत दिखलाते हैं पर करतूत बहुत कम

१– 'सारस्वत खत्री', जनवरी १६१८, पृ० ४।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनमें देखी जाती है। किंतु जो गुरुता संपन्न होते हैं वे मुख से कुछ नहीं कहते बल्कि करके दिखा देते हैं।'

भाषा में सर्वत्र संवद्धता तथा प्रवाह है। हास्य, विनोद और व्यंग्य तो इनकी लेखन शैली क अभिन्न अंग हैं। इनका हास्य अधिक शिष्ट और साहित्यिक है। शब्दों में अर्थ गांभीर्य अधिक होने के कारण कहीं कहीं भाषा में दुरूहता आ गई है। यथा——

'रसज्ञता जिनमें छू नहीं गई जो वागाडंवर तर्क-वितर्क के जाल में फँसे हुए हृदय के कुटिल हैं भक्ति भावना का स्वाद जिन्होंने पाया ही नहीं, उन्हें कवियों की कोमल मधुर पदावली का यथावत् पूर्ण परिज्ञान पहिले तो होगा नहीं, हुआ भी तो उसकी रसज्ञता का अलौकिक आनंद उनके राम रोम में वैसा न व्यापेगा जैसा सरस हृदय एक भावुक में व्यापता है। यहाँ हम इतना और कहा चाहते हैं कि जो भक्ति की भावना से सरस हृदय नहीं है, संसार को ऐसा लाभ नहीं पहुँचा सकते[1]।'

——'शक्ल की आकर्षण शक्ति'

३. १. १८ हिंदी साहित्य को भट्ट जी की भाषा और शैली संबंधी देन अत्यंत महत्वपूर्ण है। हिंदी भाषा को नए रूप में सँवारने, उसका प्रचार एवं प्रसार करने तथा उसका सर्वमान्य रूप स्थिर करने में भट्ट जी ने स्तुत्य प्रयत्न किया है। भट्ट जी 'हिंदी प्रदीप' के संपादक थे और उनकी लेखनी से वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक और विचारात्मक सभी प्रकार के निबंध प्रस्तुत हुए हैं।

३.१.१९ भट्ट जी तथा गुप्त जी तो ऐसे निबंधकार थे जो विरासत में भारतेंदु की परंपरा को लेकर द्विवेदी युग के विकास में योगदान कर रहे थे पर जो द्विवेदी युग में ही हुए और पनपे उनमें प्रमुख हैं माधवप्रसाद मिश्र, चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', सरदार पूर्ण सिंह, पद्मसिंह शर्मा, गुलाव राय, रामचंद्र शुक्ल. राय कृष्णदास। ये निबंधकार ऐसे हैं जिनकी विशिष्ट शैली की छाप आगत भविष्य के निबंधकारों पर पड़ी। यही कुछ तो ऐसे हुए जिन्होंने आगे चलकर अपना विशिष्ट व्यक्तित्व ही निर्मित कर लिया, इनमें रामचंद्र शुक्ल का नाम मुख्यतः लिया जा सकता है। शुक्ल जी तथा उनकी शैली की नींव द्विवेदी युग में ही पड़ी; यही नहीं उनकी प्रेरणा का स्रोत ही द्विवेदी युग था।

१. 'सरस्वती' १९१३ ई० पृ० ११०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. १.२० भारतेंदु युग के पर्व त्योहारों पर लिखने की जो परिपाटी प्रारंभ हुई, माधवप्रसाद मिश्र ने उसे इस युग में भी बनाए रखा। पर इनकी इस कोटि की रचनाओं में हार्दिकता, वैयक्तिकता और आकर्षण है। मिश्र जी वास्तव में एक समर्थ लेखक थे और उन्होंने जो कुछ भी लिखा है, उनमें उनका अपना व्यक्तित्व है। भाषा में चमत्कार, अभिव्यक्ति की सामर्थ्य, ओज और प्रवाह है। क्षोभ के आवेश में लिखते हुए मिश्र जी की भाषा में ओज ही नहीं, अनोखे नाटकत्व का भी समावेश हो जाता है। भावावेश में इनकी भाषा में गहरी आंतरिकता आई है। इन्होंने सभी प्रकार के निबंध लिखे। चरित्रात्मक, पर्व या त्योहार पर, साहित्यिक, राजनीतिक, वर्णनात्मक भ्रमण वृत्तांत आदि पर लिखे निबंधों में इनका देश प्रेम, भारतीय संस्कृति, सामाजिक संबंध भावना तथा राजनीतिक जागरूकता भली भाँति लक्षित होती है।

३. १. २१ भावात्मक निबंध लिखनेवालों में सरदार पूर्णसिंह का उल्लेखनीय स्थान है। इन्होंने अपने निबंधों में शुद्ध रूप से पश्चिमी निबंधों के स्वरूप तथा टेकनीक को अपनाया। जो लोग यह कहते हैं कि निबंध की दृष्टि से द्विवेदी युग विशेष उन्नत न रहा, उनको पूर्णसिंह के निबंधों को एक बार अच्छी तरह से देखना चाहिए। भविष्य में आनेवाली आत्मीयता और व्यक्तित्व का निखार क्या इनमें परिलक्षित नहीं? आधुनिक आलोचकों के अनुसार निबंधकार को नितांत आत्मनिष्ठ, निश्छल और कल्पनाशील होना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्तिनिष्ठ होना निबंध की सबसे बड़ी कसौटी है। उसमें रचयिता के व्यक्तित्व का जीवित स्पर्श तथा अनुभूतियों के प्रकाशन के साथ शैली की रोचकता भी वांछनीय है। उनके निबंध हिंदी साहित्य के लिए नवीन देन थे। गद्यात्मक निबंध प्रायः उठान, विवेचन और परिणाम में विभक्त होता है। अध्यापक जी के समस्त निबंधों में उठान बड़ा ही गंभीर तथा प्रभावोत्पादक होता है। उनकी शैली में अधिक घुमाव नहीं है। प्रतिपाद्य विषय से ही वे आरंभ करते हैं। निबंध का प्रथम वाक्य ही पाठक को विषय से संबद्ध कर देता है। आरंभ में वे विषय का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना नहीं भूलते। इस प्रकार पूर्णसिंह जी की शैली में 'प्रत्यक्ष संपर्क' की पद्धति के दर्शन होते हैं। पूर्णसिंह के निबंधों में निबंधों के लिये अपेक्षित ये सभी विशेषताएँ पाई जाती हैं जो भविष्य के निबंधों का मार्ग दर्शन करती हैं। इन्होंने मानवतावादी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टिकोण अपनाया। अपने निबंध 'आचरण की सभ्यता', 'मजदूरी और प्रेम', 'सच्ची वीरता' आदि के द्वारा अपने इस दृष्टिकोण को बड़ी आत्मीयता से व्यंजनात्मक शैली में व्यक्त किया है। यथा—

'गाढ़े की कमीज को एक अनाथ विधवा सारी रात बैठकर सीती है, साथ ही साथ वह अपने दुःख पर रोती भी है—दिन को खाना नहीं मिला, रात को भी कुछ मयस्सर नहीं हुआ। अब वह एक एक टाँके पर आशा करती है कि कमीज कल तैयार हो जायगी, तब कुछ खाने को मिलेगा......... इस माता और इस बहन की सिली हुई कमीज मेरे लिये मेरे शरीर का ही नहीं मेरी आत्मा का वस्त्र है। इसका पहनना मेरी तीर्थयात्रा है। इस कमीज में उस विधवा के सुख दुख प्रेम और पवित्रता के मिश्रण से मिली हुई जीवन रूपिणी गंगा की बाढ़ चली जा रही है। ऐसी मजदूरी और ऐसा काम प्रार्थना, संध्या और नमाज से क्या कम है?'[1]

—'मजदूरी और प्रेम'

इनके निबंध पहले से चली आती भावात्मक शैली के भीतर नहीं आते, इन्हें प्रभावाभिव्यंजक कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि सजीव चित्रोपम वर्णन, मार्मिक भाव व्यंजना, गम्भीर विचार संकेत और भाषण शैली की ओजस्विता इन सबकी सहायता से ये बराबर विशेष प्रभाव की सृष्टि करते हैं। यथा—

'वर्षा और नदी के जल से तो अन्न पैदा होता है परंतु नयनों की गंगा से प्रेम और वैराग्य के द्वारा मनुष्य जीवन को आग और बर्फ से बपतिस्मा मिलता है अर्थात् नया जन्म होता है—मानो प्रकृति ने हर एक मनुष्य के लिये इस नयन नीर के रूप मसीहा भेजा है।'[2]

—'कन्यादान'

'प्रेम की बूंदों से यह असार संसार मिथ्यारूप होकर धुल जाता है और हम पृथ्वी से उठकर आत्मा के पवित्र नभोमंडल में उड़ने लगते हैं। अनुभव करते हुए भी ऐसी धुली हुई अवस्था में हर कोई समाधिस्थ हो जाता है अपने आपको भूल जाता है, प्रेम की काली घटा ब्रह्मरूप में लीन हो जाती है। चाहे जिस शिल्पकार चाहे जिस कला-कुशल जन के जीवन को देखिए उसे इस परमा—

१. 'सरस्वती' १९१२ ई०, पृ० ४७१।
२. 'सरस्वती' १९०९ ई०, पृ० ४४१।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्था का स्वयं अनुभव हुए विना अपनी कला का तत्वज्ञान नहीं होता। चित्रकार सुंदरता को अनुभव करता है और तत्काल ही मारे खुशी के नयनों में जल भर जाता है। बुद्धि, प्राण, मन और तन संदरता में डूब जाते हैं। सारा शरीर प्रेम वर्षा के प्रवाह में वहने लगता है। वह चित्र ही क्या जिसको देखकर चित्रकार की आँखें इस मदहोश करनेवाली आँख से तर न हुई हों। वह चित्रकारी ही क्या जिसने हजार वार चित्रकार को इस योग निद्रा में न मुलाया हो।'[1]

—'कन्यादान'

३. १. २२ इन्होंने विविध सम्प्रदायों के वाहरी विधि विधान को हटाकर उन सबके भीतर एक आत्मा का स्पन्दन देखा जिसकी अनुभूति के प्रेम का महत्व प्रतिपादित किया पर अपनी इन सब अभिव्यक्तियों के लिये जिस शैली को अपनाया वह इनकी अपनी निजी है। भाव और विचार उसमें मिलकर ऐसे एकाकार हो गये हैं कि वे रस से परिपूर्ण हो उठीं। देखिए—

'हल चलानेवाले अपने शरीर का हवन किया करते हैं, खेत उनकी हवनशाला है। उनके हवन कुंड की ज्वाला की किरणें चावल के लंबे और सफेद दानों के रूप में निकलती हैं। गेहूँ के लाल लाल दाने इस अग्नि की चिनगारियों की जालियाँ सी हैं। मैं जब कभी अनार के फूल और फल देखता हूँ तब मुझे वाग के माली का रुधिर याद आ जाता है। किसान मुझे अन्न में फूल में आहुति हुआ सा दिखाई पड़ता है।'[2]

—'मजदूरी और प्रेम'

३. १. २३ पूर्णसिंह जी की शैली अनूठी लाक्षणिकता और अपूर्व व्यंग्य से परिपूर्ण है। जैसे—'बादल गरज गरज कर ऐसे ही चले जाते हैं, परंतु वरसने वाले बादल जरा सी देर में बारह इंच तक बरस जाते हैं', या 'पुस्तकों या अखबारों के पढ़ने से या विद्वानों के व्याख्यानों को सुनने से तो वस ड्राइंग हाल के वीर पैदा होते हैं।' 'आजकल भारतवर्ष में परोपकार का बुखार चल रहा है।' अध्यापक पूर्णसिंह जी का निबंध-साहित्य निबंध कला से ओतप्रोत है। उनकी विचारधारा अपूर्व एवं गंभीर होने के साथ ही साथ प्रौढ़ और पुष्ट भी है। उनके निबंध चिंतन,

१. वही।

२. 'सरस्वती' सन् १९०९, पृ० ४४१।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन और गहन विचार मंथन के परिणाम स्वरूप 'गहरे पानी पैठकर' निकाले गए रत्न हैं।

३.१.२४ तुलनात्मक समालोचना के जन्मदाता पद्मसिंह शर्मा का आलोचना के अतिरिक्त कुछ ऐसे मार्मिक संस्मरणात्मक निबंधों का इस युग को योगदान था कि निबंध के इस प्रसंग में इन्हें नहीं छोड़ा जा सकता। इनकी चुस्त और चुभती शैली का आगे आनेवाली पीढ़ी बहुत दिनों तक अनुकरण करती रही। देखिए—

'मसलन् मेरे मित्र ईश्वरशरण हैं जिन्हें मैं भड़भड़िया दोस्त कहता हूँ, यह बहुत भले आदमी हैं। मेरी उनकी मित्रता बहुत पुरानी और बेतकल्लुफी की है, पर उनके स्वभाव में यह है कि दो मिनट निचला नहीं बैठा जाता। जब आवेंगे शोर मचाते हुए चीजों को उलट पुलट करते हुए। इनका आना भूचाल आने से कम नहीं। जब आते हैं मैं कहता हूँ कोई आ रहा है, कयामत (प्रलय) नहीं है। इनके आने की मुझे दूर से खबर हो जाती है। यद्यपि मेरा नौकर कहता है कि 'वह इस वक्त काम में बहुत ही निमग्न हैं' तो वह फौरन चीखना शुरू कर देते हैं कि— 'कमबख्त को अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान नहीं।' नौकर से सोहन, कब से काम कर रहे हैं? बड़ी देर से, शिव शिव अच्छा बस मैं एक मिनट इनके पास बैठूंगा, मुझे खुद जाना है, छत पर होंगे न? मैं पहले ही समझता था, यह कहते हुए ऊपर आते हैं, दरवाजे को इस जोर से खोलते हैं कि मानो कोई गोला आ कर लगा (आज तक उन्होंने दरवाजा खटखटाया नहीं) और आंधी की तरह दाखिल होते हैं।'[1]

—'मुझे मेरे मित्रों से बचाओ'

३.१.२५ भारतेंदु युगीन निबन्ध निबंध की परंपरा को एक नई दिशा की ओर वक्रगति से ले चलनेवाले विद्वान तथा समर्थ लेखक हैं चंद्रधर शर्मा गुलेरी। इन्होंने अंग्रेजी साहित्य का गहन अध्ययन किया था जिससे इनमें विचारों की प्रौढ़ता थी। 'समालोचक' का संपादन करने के कारण इनमें पत्रकारिता के गुण भी विद्यमान थे। इनके हाथों में पड़कर व्यंग्य और परिमार्जित हुआ, जिसका निखरा रूप 'कछुआ धर्म' शीर्षक निबंध में दिखलाई देता है। इस निबंध में हिंदुओं की पलायन प्रियता, प्रतिशोध

१. 'प्रतिभा' १९१८ ई०, अंक ४, भाग २।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शक्ति के अभाव और ऊँची रूढ़िवादिता पर जिस प्रकार का जोरदार व्यंग्य किया गया है, उसका उस समय के लेखकों में अभाव था। अब तक के लेखकों में सबसे अधिक विकसित ऐतिहासिक और सांस्कृतिक चेतना इन्हीं की थी। इसका कारण था इनका इतिहास और संस्कृति का गहन अध्ययन। 'संस्कृत की टिपरारी', 'देवकुल', 'यूनानी प्राकृत', 'चारणों और भाटों का झगड़ा', 'बारहट लक्खा का परवाना', 'सिंहल द्वीप में महाकवि कालिदास का समाधि स्थान', 'कालिदास की देशभाषा' 'शैशुनाग की मूर्तियाँ' आदि इसी प्रकार के निबंध हैं। 'मारेसि मोंहि कुठाउँ' और 'संगीत' आदि अनेक निबंध में इनके ज्ञान समृद्ध मस्तिष्क, मौजीपन और अत्यंत कुशल लेखनी का चमत्कार तथा विचारों की प्रगतिशीलता अच्छी तरह दिखाई देती है। भाषा शैली में वैयक्तिकता की स्पष्ट छाप है। यथा—

'बकौल शेक्सपियर के जो मेरा धन छीनता है, वह कूड़ा चुराता है, पर जो मेरा नाम चुराता है वह सितम ढाता है। आर्यसमाज ने वह मर्मस्थल पर मार की है कि कुछ कहा नहीं जाता। हमारी ऐसी चोटी पकड़ी है कि सिर नीचा कर दिया, औरों ने तो गाँठ का कुछ न कुछ दिया इन्होंने अच्छे अच्छे शब्द छीन लिए। इसी से कहते हैं—मारेसि मोंहि कुठाउँ। अच्छे अच्छे पद तो यों सफाई से लिए हैं कि इस पुरानी जमी हुई दुकान का दिवाला निकल गया। लेने के देने पड़ गये।'

इनकी भाषा की विशेषता है उसका विषय के अनुकूल बन जाना। प्रवाह और नाटकीयता से उसमें सोने में सुहागा मिलता है। बीच बीच में कटु व्यंग्य से विषय में विवेचन की बोझिलता के स्थान पर चमत्कारपूर्ण वक्रता आ जाती है। अंग्रेजी का पर्याप्त अध्ययन स्थान स्थान पर उसके शब्दों के प्रयोग की प्रेरणा देता है। अंग्रेजी शब्दों के साथ उर्दू का भी प्रयोग करते हुए यत्र तत्र दिखाई देते हैं। चरितात्मक लेखों में अधिकतर इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग दिखाई देता है। यथा—

'जब अन्त की अचूक होनहार सूझ रही थी, तब हम लोगों ने अक्षरशः नहीं तो तत्वतः उन्हें बिस्तरे से घसीट कर उनके लाख विरोध करने पर भी गत एप्रिल मास में उनका फोटो उतरवा लिया था।' [1]

—'मनीषी समर्थदान जी'

१– 'सरस्वती' १९१४ ई० पृ० ५६७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. १. २६ बाबू श्यामसुन्दर दास, मिश्रबंधु और गुलाबराय का भी योगदान इस क्षेत्र में कम नहीं रहा। यद्यपि इनके निबंधों को हम निबंध न कहकर लेखक के अधिक निकट पाते हैं। मिश्रबन्धुओं ने भी अनेक निबंध लिखे जो शिक्षामूलक अधिक हैं। श्री गुलाबराय के सामाजिक और नैतिक निबंध एक तर्कशास्त्री की लिखी गद्य रचनाएँ ही कही जा सकती हैं। इस युग के अन्य निबंधकारों में पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, यशोदानंद अखौरी, किशोरीदास बाजपेयी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, बाबू शिवपूजन सहाय, डा० भगवानदास, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि उल्लेखनीय हैं। इन लोगों में से कुछ तो आज भी लिख रहे हैं। पर इनमें से अधिकांश अन्य साहित्यिक विधाओं, व्याकरण, भाषाशास्त्र संस्मरण, यात्रा आदि संबंधी रचनाओं के रचयिता के रूप में ही अधिक प्रसिद्ध रहे हैं न कि निबधकार के रूप में।

३. १. २७ इस युग में रामचन्द्र शुक्ल, प्रसाद, राय कृष्णदास आदि ने भी लिखना प्रारंभ किया, जिससे पता चलता है भविष्य में निर्मित होने वाले भवन की नींव कब पड़ी। प्रसाद की भावात्मक शैली का प्रारंभिक रूप निम्न पंक्तियों में देखिए—

'और यह क्या ? देवि ! यह कैसा अद्भुत दृश्य ! कहाँ वह श्याम गगन में सौदामिनी माला कहाँ स्वच्छ नील गगन में पूर्ण चन्द्र ! अहा ! मुझे ही भ्रम हुआ, यही तो तुम्हारा शारदीय रूप है।'

३. १. २८ इसके अतिरिक्त भी कुछ ऐसे लेखक इस काल में हुए जो निबंधकार की दृष्टि से उतने स्मरणीय नहीं हुए पर उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र निबंध के गुण पाये जाते हैं, जो आगे आनेवाली पीढ़ी के लिये पथ प्रदर्शक बन गये। जैसे कटाक्षपूर्ण कथन का ढंग देखिए—

'भोले पंडित लिख लिख कर पुस्तकें तैयार कर रहे हैं और मशीन का स्वामी उन पुस्तकों को अपने नाम पर दूसरों के हाथ चौगुने, पचगुने, दसगुने नफे पर बेंच रहा है।·········इस श्रेणी में और ऐसे ही लेखकों के छुटभैय्या धनलोलुप और भी निकले। उन्होंने मित्रता अथवा साहित्य सेवा के बहाने दूसरों की लिखी पुस्तकें अपने नाम से छपवा लीं और लिखनेवाले को एक पैसा पुरस्कार का न देकर थोथा निष्काम उपदेश सुना उसकी मेहनत आप डकार गये[1]।'

—'लेखन कथा' लेखक—सत्यदेव परिव्राजक

१– 'इन्दु' सं० १९७२, पृ० २२९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए लिखनेवाले लोग भी इस युग में अनेक हुए। इनकी भाषा कहीं कहीं तुकबन्दी पूर्ण हो गई। यथा—

'अस्तु आइए ! विज्ञ वाचकवरों ! होली में मन के विकारों की झोली गलाकर, भूले हुए भाइयों को हमजोली बनाकर, सज्जनों की टोली में जा सम्मानपूर्ण ठठोली से मन को लाल बनाइए एवं फाग का राग अनुराग युक्त गाइये[1]।'

—'मैं क्या बनूं'—द्वारका प्रसाद गुप्त

'पाठक ! हमारे साथ धीरे धीरे आइये, नहीं तो आप जानते ही हैं कि—'पत्ता खड़का कलेजा फड़का, शिकार भड़का और ठाकुर भोमासिंह भी अवश्य दो चार छलांगें मार चर में सड़का[2]।'

—'ठाकुर भोमासिंह'—पंडित पी० एन० द्विवेदी

३. १. २६ कहने का तात्पर्य यह है कि इन बीस वर्षों की पत्र-पत्रिकाओं के उलटने से इतना तो स्पष्ट है कि आगत पीढ़ी के लिये ठोस पृष्ठभूमि, भाषा का सशक्त आधार और शैली की प्रांजलता की नींव इसी युग में पड़ी। इसी युग में गुलेरी जी और पूर्णसिंह जैसे लेखक हुए, जिनमें वह मानसिक स्वच्छंदता मिलती है जो निबंध के लिये आवश्यक है। यद्यपि युग की परिस्थितियाँ उस समय निर्बन्ध निबंध में सहायक नहीं थीं। युग की माँग थी सामयिक चेतना की जागृति, क्योंकि उस समय देश अपनी वर्तमान दुरवस्था से संत्रस्त था। विदेशियों द्वारा किया जा रहा आर्थिक शोषण विचारों में मार्मिक क्षोभ उत्पन्न कर रहा था। दूसरी तरफ सामाजिक स्थिति भी रूढ़िवादिता से ग्रस्त होकर लेखकों को बोलने के लिये विवश कर रही थी, पर ऐसी मानसिक स्थिति में भी अपने को संतुलित रखते हुए लेखकों ने अपने दायित्व का निर्वाह किया। यही नहीं जहाँ जहाँ इन विक्षुब्ध लेखकों ने सामयिक स्थिति पर कलम उठाई वहाँ भी प्रवहमान निबंध परंपरा की गति अवरुद्ध नहीं होने पाई। यद्यपि इनकी संख्या अत्यल्प है पर चेष्टा करने पर सामग्रियों का अभाव नहीं।

१—'इन्दु' सं० १६७२, पृ० २६२।

२— वही, १६१५ ई०, पृ० ३८५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ अध्याय

रेखाचित्र का साहित्यिक स्वरूप और पत्र-पत्रिकाएँ

४. १. १ बीसवीं शताब्दी के पहले बीस सालों में साहित्य का जो बहुमुखी विकास हुआ उसकी गति तीव्र और दिशाएँ बहुमुखी थीं। इस काल के साहित्यकारों में प्राचीन संस्कृति के समुद्रमंथन से प्राप्त तथ्यामृतों को नई दृष्टि से निरख परख तथा नई आवश्यकताओं के अनुरूप उनकी व्याख्या करने की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ी। पर वे सदा इस बात के लिए भी सजग थे कि पुराने में नवीन जीवन की प्राणवत्ता हो और नवीनीकरण की प्रक्रिया हमें पश्चिम के प्रभाव से सर्वथा अभिभूत न कर दे। इस नए दृष्टिकोण के कारण साहित्य के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन हुआ। इस अवधि में हिंदी साहित्य में दो प्रमुख विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं— साहित्य का रूप वैचित्र्य और प्रवृत्ति की विविधता। साहित्य में विरासत रूप में जो शब्द भंडार मिला, जो साहित्य परंपरा मिली, वह शिल्प और भाव संपद की बढ़ती हुई आवश्यकता को अभिव्यक्ति देने की दृष्टि से उपयुक्त न थी, किंतु मात्र बीस साल की अल्प अवधि में ही क्रांतिकारी परिवर्तन के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे। काव्य के विभिन्न रूप सामने आने लगे, कहानी का उत्कर्ष हुआ, उपन्यास, नाटक तथा समालोचना का रूप निखरने लगा, निबंध लिखे जाने लगे और इन्हीं के साथ 'रेखाचित्र' विधा का विकास होने लगा।

४. १. २ 'निबंध' और 'रेखाचित्र' हिंदी के आधुनिक गद्य-प्रधान युग की दो महत्वपूर्ण विधायें हैं। बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशाब्दों को देखने से यह स्पष्ट है कि जिस मिट्टी-खाद के बीच निबंध के तत्वों को जीवन मिला, रेखाचित्र ने भी सर्वप्रथम उन्हीं के बीच अस्तित्व ग्रहण किया। संभवतः इसीलिए कुछ लोग रेखाचित्र को निबंधों से भिन्न रूप में नहीं स्वीकार करते। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने तो स्पष्ट रूप से रेखाचित्र को 'रेखामात्र निबंध' कहा है। रेखाचित्रों की उत्पत्ति की ओर इंगित करते हुए उन्होंने लिखा है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'निवंध के विचार-क्षेत्र में लाघव की प्रवृत्ति जगी। उसके फलस्वरूप ऐसी विचारबद्ध कृतियाँ भी निर्मित होने लगीं जो 'रेखाचित्र' या 'स्थूल चित्र' (स्केच) के रूप में सामने आईं। इनमें कहीं तो कुछ शब्दों को ही लेकर विचार-सरणि चली कहीं व्यक्ति को, कहीं वस्तु को, कहीं भाव को, कहीं स्मृति को तथा कहीं व्यंग्य को।'[1]

४. १. ३ ऐसा लगता है कि 'रेखाचित्र' की स्वायत्तता के संबंध में काफी भ्रम है। 'निवंध' गद्य की वह विधा है जिसमें भावों और विचारों का विशेष रूप से संगुंफन होता है। उसमें किसी विषय विशेष के प्रति लेखक के भाव और विचार, आत्मतत्व से एकीकृत होकर जब स्वच्छंद सजीव, प्रौढ़ाभिव्यक्ति पाते हैं तो उन्हें निवंध की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इस प्रकार निवंध का मेरुदंड निवंधकार का व्यक्तित्व है। यह वह जीवंत 'कैनवास' है जिस पर निवंध का निवंधकार द्वारा अंकन होता है। निवंध के लिये निजी अनुभूति अत्यंत आवश्यक है। निबध में एक विशेष प्रकार की भावप्रवणता होती है, जो पाठक का मन आनंदोल्लास से भर देती है। भाषा की सजीवता और शैली के बाँकपन का इस भाव-प्रवणता के सृजन में अपूर्व योग होता है। तभी निवंध में अपने स्वरूपानुसार सहज प्रभावोत्पादकता आती है। रेखाचित्र निवंध की सीमारेखाओं को छुआ हुआ एक नवीन साहित्यिक रूप है। निवंध में विषय की प्रधानता रहती है या किसी पदार्थ या व्यक्ति के विषय में निवंधकार की मनोदशा का चित्रण होता है जबकि रेखाचित्र में कलाकार किसी वस्तु के तटस्थ अध्ययन की चेष्टा करता है। साधारण जन मन की दृष्टि में अपनी दृष्टि को मिलाकर उसका चित्रण करता है।

४. १. ४ रेखाचित्र एक ही व्यक्ति या स्थान का होता है। उसमें वस्तुगत चित्र की प्रधानता होती है। रेखाचित्र में यथार्थता के साथ साथ उच्चकोटि की मर्मस्पर्शिता होती है। सहज व्यापकता एवं ऋजुता इसकी अनुपम विशेषता है। मानव हृदय की अतल गहराइयों में सीधे उतरने की इसमें विराट क्षमता होती है। संवेदना इस कार्य में महत्वपूर्ण योग देती है।

---

१. हिंदी का सामयिक साहित्य—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. १. ५ आधुनिक हिंदी 'रेखाचित्र' का विकास भी गद्य की दूसरी विधाओं के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। माना यह जाता है कि 'मर्यादा' सन् १६१८ में बनारसीदास चतुर्वेदी का 'औरंगजेब' शीर्षक प्रथम रेखाचित्र आया। पर कोई भी विधा एकाएक एक दिन में रूप नहीं ग्रहण करती। उसके उस रूप निर्माण में परोक्ष रूप से विकासमान किसी गति का ही हाथ होता है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो हिंदी साहित्य के आदि काल से लेकर वर्तमान काल तक के श्रेष्ठ कवियों में अनेक अच्छे अच्छे उदाहरण इस प्रकार के चित्रों के मिल जायँगे। जहाँ भी चित्रात्मकता है वहीं रेखाचित्र के तत्व स्थित हैं। उदाहरण के लिए रामचरितमानस में कामातुर नारद के मोहभंग का जो प्रसंग है, उसमें तुलसी द्वारा नारद का चित्र दर्शनीय है—

मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही॥

× × ×

जिहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहि न बिलोकी भूली॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दशा हर गन मुसुकाहीं॥

नारद के रूप, मनःस्थिति और विषय विशेष की नाटकीय मनोरंजकता के साथ निरूपण की दृष्टि से मानस का यह चित्र किसी भी आधुनिक रेखाचित्र से कम नहीं है। भारतेन्दु युग भारतेन्दु के चरित प्रधान निबंधों में रेखाचित्र का प्रारंभिक रूप ढूँढ़ा जा सकता है। पर जिस विशिष्ट साहित्यिक विधा के रूप में आधुनिक रेखाचित्र का विकास हुआ उसका प्रारंभिक रूप आलोच्य काल में ही विकसित हुआ है। रेखाचित्र के लिये जिस सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और विलक्षण अभिव्यंजना कौशल की आवश्यकता होती है उसका एक अनुपम उदाहरण निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है—

'नारंगी के रस में जाफरानी बसंती बूटी छानकर शिवशंभु शर्मा खटिया पर पड़े मौजों का आनन्द ले रहे थे। खयाली घोड़ों की बागें ढीली कर दी थीं। वह मनमानी जकन्दें भर रहा था। हाथ पाँव को भी स्वाधीनता दी गई थी। वे खटिया के तूल अरज की सीमा का उल्लंघन कर इधर-उधर निकल गए थे। कुछ इसी प्रकार शर्मा जी का शरीर खटिया पर था और खयाल दूसरी दुनियाँ में। अचानक एक सुरीली गाने की अवाज ने चौंका दिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारयित्रा शिवशंभु खटिया पर उठ बैठे। कान लगाकर सुनने लगे। कान में वह मधुर गीत बारबार अमृत डालने लगा[१]।'

४. १. ६ उपर्युक्त पंक्तियों में शिवशंभु शर्मा का भावसापेक्ष चित्रण है। उपर्युक्त शब्द चित्र इतना सजीव है कि वह पाठक के संमुख केवल मस्त, स्वच्छंद प्रकृति निर्द्वन्द्व लेटे हुए व्यक्ति का चित्र ही अंकित नहीं करता अपितु उसके अन्तरतम में पैठकर उसकी सम्पूर्ण मनोवृत्तियों की मीमांसा भी कर डालता है। कहने का तात्पर्य यह है कि लेखक ने वाह्य और अंतर के पूर्ण सामंजस्य के साथ एक ऐसा संश्लिष्ट चित्र उपस्थित किया है जिसमें न तो घटना की आवश्यकता है और न लेखक को अपनी तरफ से कुछ कहने की। रेखाचित्र लेखन के लिए कलाकार सतत अभ्यास से एक विशेष शक्ति अर्जित करता है, जिसके द्वारा वह चित्रित व्यक्ति या वस्तु को पाठक के सामने सच्चाई से प्रतिच्छायित कर सके। इस गुण की प्राप्ति के लिए कलाकार की अंतर्बाह्य दृष्टियाँ पूरी तरह से जागरूक होनी चाहिये। प्रकृति, मानव या समस्त जड़ या चेतन जगत को गहराई से देखने की उसकी दृष्टि जितनी ही अनाविल एवं अतींद्रिय होगी, रेखाचित्र उतना ही जीवंत होता है। आज हिंदी में रेखाचित्र लेखन की कला निरंतर परिमार्जित हो रही है। श्रीमती महादेवी वर्मा के रेखाचित्र अपनी संश्लिष्टता के कारण बेजोड़ माने जाते हैं। यथा—

'इतने वर्ष बीत जाने पर भी मेरी स्मृति अतीत के दिन-प्रति-दिन गाढ़े होने वाले धुँधलेपन में एक रेखा खींचकर उस करुण-कोमल मुख को मेरे सामने अंकित ही नहीं, सजीव भी कर देती है।

छोटे गोल मुख की तुलना में कुछ अधिक चौड़ा लगने वाला, पर दो रूखी लटों से सीमित ललाट, बचपन और प्रौढ़ता को एक साथ अपने भीतर बन्द कर लेने का प्रयास सा करती हुई, लंबी बरौनियोंवाली भारी पलकें और उनकी छाया में डबडबाती हुई सी आँखें, उस छोटे मुख के लिए भी कुछ छोटी सीधी सी नाक और मानो अपने ऊपर छपी हुई हँसी से विस्मित होकर कुछ खुले रहनेवाले ओठ, समय के प्रवाह से फीके भर हो सके हैं, धुल नहीं सके'।[२]

१—'भारतमित्र' सन् १९०३।
२—अतीत के चलचित्र सं० २००३, पृ० १९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत रेखाचित्र में जहाँ अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और विलक्षण अभिव्यंजना शक्ति से लेखिका ने एक स्त्री मूर्ति का सजीव चित्रण किया है, वहाँ उसके अंतराल में एक करुण गांभीर्य की अजस्र धारा भी प्रवाहित होते हुए स्पष्ट दीखती है।

४.१.७ हिंदी में व्यक्ति प्रधान विवरणात्मक रेखाचित्र सबसे पहले 'शिवशंभु शर्मा' के चित्रण में ही देखा गया। रेखाचित्र के तत्व जहाँ वे अन्य साहित्यिक विधाओं में मिलते हैं, वहाँ व्यक्तिप्रधान ही रहे हैं। इसका कारण यह है कि साहित्य में 'व्यक्ति' पर ध्यान उसके प्रादुर्भाव काल से ही दिया जा रहा है। साहित्य में व्यक्ति का चित्रण उसकी निजी तथा समाज सापेक्ष दोनों स्थितियों में होता रहा है।

४.१.८ इस काल में जिस प्रकार व्यक्तिप्रधान रेखाचित्र अपने पूर्ण रूप में यत्र-तत्र दिखलाई पड़ता है उसी प्रकार वस्तु प्रधान रेखाचित्र देने में इस काल के लेखक पीछे नहीं हटे। इस प्रकार के रेखाचित्र को प्रस्तुत करने-वाले कलाकार के लिए यह आवश्यक है कि उसका वस्तु से यथार्थ परिचय हो तभी वह वस्तु का ऐसा विंब उपस्थित करने में समर्थ होगा तथा पाठक की उत्सुकता और कल्पनाशीलता को जाग्रत कर सकेगा। अंग्रेजी का प्रसिद्ध रेखा-चित्रकार चार्ल्स डिकिंस इस प्रकार के प्रयासों में दिनरात भटकता था। उसके रेखाचित्रों में सड़कों, दुकानों, जेल के कोठरियों तथा मकानों के भीतर के दालानों के असाधारण सावधानी से खींचे गए संक्षिप्त वर्णन हैं जिनमें यथार्थ कल्पना, संवेदना, सूक्ष्म दृष्टि आदि के गुण अपनी चरम सीमा तक विकसित हुए मिलते हैं। हिंदी में इस प्रकार के वस्तु प्रधान रेखाचित्र का प्रथम परिचय निम्न पंक्तियों में दिखलाई पड़ता है—

'जहाँ सफेदपोश भद्र पुरुषों को गुजरते हुए हर वक्त यही आशंका रहती है कि कहीं किसी खिड़की या दरवाजे से कोई कहारिन रसोई का मैला पानी या सड़ा हुआ दाल-भात डालकर बेमौसम की होली न खेल डालें, जहाँ सड़े हुए आम और केले के छिलके, बालबच्चों का मलमूत्र और पुराने चिथड़े तथा घर का कूड़ा करकट हर तरफ तितर बितर रहता है, जिनपर पाँव फिसलकर गिर पड़ने का पथिकजन को हर वक्त भय रहता है—उनके गंधी गली का भी वैसा ही सुन्दर चित्र अपने चित्त में खैंच लेना चाहिए।[१]'

—'गंधी गली का एक दृश्य', रामनारायण शर्मा

१—'इंदु' पौष १९७१, पृ० ३२।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. १. ६ विवरणात्मक शैली में वातावरण का चित्रण भी किया जाता है। उसमें वस्तुएँ, व्यक्ति तथा अन्य तत्व सहायक के रूप में आते हैं। रेखाचित्रकार का मुख्य उद्देश्य वातावरण को सजीवता प्रदान करना होता है। वातावरण प्रधान रेखाचित्रों में सभी प्रकार के शिल्प कौशल तथा अन्य तत्व वातावरण को उस सीमा तक उठा देते हैं कि सभी तत्वों का पर्यवसान वातावरण रस में हो जाता है। निम्नांकित पंक्तियों में इस गुण को देखा जा सकता है–

'बीच बीच में फटीं दिखातीं हैं हरियाली।
काया भूरी खुली भूमि की होकर खाली।
कट रहे हैं खेत, जाते लिए बोझ किसान।
वधू जिनकी छेड़ती मिलकर सुरीली तान।
+ + +
भैंस को नहला रहा है नीर में हिल ग्वाल।
हैं सिंघाड़े के लिए श्रम कर रहे कुछ ग्वाल।'[1]

'प्रकृति की एक झाँकी'

'यहाँ एक ऐसे वातावरण की सृष्टि की गई है जो पाठक को कुछ समय के लिए गाँव के उस अंचल में पहुँचा कर तन्मय कर देता है जहाँ किसान अपने अथक परिश्रम के फल को सँभालने में संलग्न है और उसके श्रम सिंचित आनंद में उसकी वधुएँ भी पूर्ण सहयोग दे रही हैं। यह तन्मयता ही रेखाचित्र की शक्ति है।

४. १. १० इस युग में समाज की अनेक विरूपताओं का चित्रण कई लेखकों ने रेखाचित्र के माध्यम से किया है। इन शब्द बाणों का आघात इतना मर्मभेदी होता है कि शिकार एकबारगी ही तिलमिला जाता है। 'शिवशंभु के चिट्ठे' में बालमुकुंद गुप्त ने लार्ड कर्जन पर जब ऐसे शब्दबाण चलाए उस समय ऐसे रेखाचित्र के अनुपम उदाहरण देखने को मिलते हैं। यथा–

'अब दरबार की बात सुनिये कि क्या था? आपके ख्याल से वह

१, 'मर्यादा'—अक्टूबर १९१५, पृ० ४०१।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत बड़ी चीज था। पर भारतवासियों की दृष्टि में वह बुलबुलों के स्वप्न से बढ़कर कुछ न था। जहाँ जहाँ से वह जुलूस के हाथी आये, वहीं वहीं सब लौट गये। जिस हाथी पर आप सुनहली झूलें और सोने का हौदा लगवा कर छत्र-धारण पूर्वक सवार हुए थे, वह अपने कीमती असबाब सहित जिसका था, उसके पास चला गया। आप भी जानते थे कि वह आपका नहीं और आपके दर्शक भी जानते थे कि आपका नहीं। दरबार में जिस सुनहरी सिंहासन पर विराजमान होकर आपने भारत के सब राजा महाराजों की सलामी ली थी वह भी वहीं तक था और आप स्वयं भली भाँति जानते हैं कि वह आपका न था।......वह सब चीजें खाली नुमायशी थीं।'[१]

दिल्ली दरबार के वैभव का चित्र उपस्थित करते हुए उपर्युक्त पंक्तियों में लेखक ने अपनी सूझ बूझ से एक ऐसे चुटीले राजनीतिक व्यंग्य की सृष्टि की है जो अपने लक्ष्य का सफलता से बोध देता है। घृणा एवं आक्रोश का व्यक्तीकरण भी किसी किसी रेखाचित्र का उद्देश्य होता है। यह उसका एक सुंदर उदाहरण है।

४. १. ११ आलोच्य युग में आलम्बन भाव से प्रकृति के विविध रूपों का नव्यतर विशाल आयामों में चित्रण हुआ। इस परंपरा को छायावाद में जाकर और भी सूक्ष्मता तथा दार्शनिकता प्राप्त हुई। नवोदित गद्यविधाओं पर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। फलतः 'गद्यकाव्यों', उपन्यासों, निबंधों, नाटकों तथा रेखाचित्रों में प्रकृति के सुंदर रूपों के दर्शन हो सके। इन रेखाचित्रों में प्रकृति का विशाल और व्यापक रूप मात्र नहीं है वरन् उसका सूक्ष्म और कोमल रूप भी दिखाया गया है। निम्न पंक्तियों में प्रकृति का जो गद्यात्मक सौंदर्य दिया गया है वह मानवीकरण आदि की विशेषताओं से तो युक्त है ही साथ ही उसमें मानवीय भावों तथा क्रियाओं की ऐसी सापेक्षता दिखाई गई है जो अपना अमिट प्रभाव छोड़ती है। लगता है जैसे सारा दृश्य एकबारगी ही अपनी संपूर्णता में हमारे सामने साकार हो उठा है—

'मंद समीर जो रात्रि में चुपचाप सो रही थी अब मंद मंद टहल रही है। सरोवर का जल भी विश्राम कर चुका। उसकी भी नींद पूरी

१—'भारतमित्र', अप्रैल १९०३।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गई, अब वह भी लहरों द्वारा कमल वृंद को जगा रहा है। रजनी देवी ने भी शर्म से अब काले वस्त्र को अलग फेंक दिया है। मरीचिका के मद मुसुकान से उसके सुघर कपोलों पर लाली दौड़ रही है। चंचरीक ने अपने कंचन मुक्ता जटित शैया को त्याग दिया है। वह देखिए, कमलों के दल से निकल मधुमक्खियाँ भी पुष्पों से जाकर कुछ कान में कह रही हैं। कलिकाएँ रात्रि के निर्मल ओस से नेत्रों को धो रही हैं। आकाश नित्य क्रिया से फारिग हो वस्त्र बदल रहा है।'[1]

'ठाकुर भीमासिंह साहब', पं० पी० एन० द्विवेदी

४. १. १२ रेखाचित्र कहीं कहीं रोमांटिक विम्वयोजना को स्वीकार करके आगे बढ़ता है, क्योंकि उसका मुख्य संवेद्य भावनाएँ और काव्य में भाव-विम्व का आश्रय ग्रहण कर रागात्मक बनते हैं तथा उनका संप्रेषण संभव हो जाता है। रोमांटिक विम्वयोजना में एक विशेष प्रकार का प्रकृति प्रेम, व्यापक तथा उदार भाववत्तावाद तथा स्वच्छंद अभिव्यक्ति कौशल का प्राधान्य स्वीकार किया जाता है। फलतः इन विम्वों में परंपरागत बिम्बों की अपेक्षा अधिक नूतनता तथा शक्ति होती है। आलोच्य युग में ऐसी ही रोमांटिक विशेषता भी लिए हुए प्रकृति चित्रण हुए हैं। यथा—

'वर्षा बरस चुकी है। आकाश अपने काले कंबल को देह से हटाकर नीचे बार-बार देख रहा है कि इस भोलेपन को देखकर हँसते हुए दो चार तारे दूर ही से झाँक रहे हैं। मेघ ने जहाँ अपना कंबल रखा है वहाँ मेघ प्रिया चुपचाप बैठने गई। बार बार कुलटा स्त्रियों की भाँति इधर उधर देख रही है। सबों ने अपना बसेड़ा लिया पर झींगुर और मेढक इन दोनों की तान अभी पूरी नहीं हुई। अभी ये वैसे ही अपनी तान छेड़ रहे हैं। मानो इनको अभी कुछ वर्षा छूट जाने की खबर ही नहीं है। आज दो महीने से कोयल चुपचाप बैठी है। न जाने क्यों कुढ़ गई है।'[2]

४. १. १३ आलोच्य काल की अनेक रचनाओं में रेखाचित्र के ऐसे उदाहरण देखे जा सकते हैं। मानवीय भावना का इन दृश्यों में इतना व्यापक प्रसार हुआ है कि वे हमें बोलते चालते, घूमते फिरते, उठते बैठते व्यक्तियों जैसे दृष्टिगोचर होते हैं।

१—'इंदु', अप्रैल १९१५, पृ० ३८५।

२—'कमला', भाद्रपद १९६४, पृ० ११४।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. १. १४ आज रेखाचित्र हिंदी की अत्यधिक सजीव विधा है। उसका निरंतर विकास होता रहा है और अभी भी इसके विस्तार और विकास की यथेष्ट संभावनाएँ हैं। रेखाचित्र हिंदी की कई साहित्यिक विधाओं के अत्यंत निकट है, किन्तु निकटता का अर्थ अस्तित्व विलय कभी नहीं माना जाता। रेखाचित्र अपने प्रारंभ काल से लेकर आज तक एक स्वतंत्र विधा के रूप में जाना और माना जाता है। यदि यह कहानी, रिपोर्ताज, लेख तथा संस्मरण मात्र रहा होता तो फिर उन साहित्य रूपों को छोड़कर एक सर्वथा भिन्न और मौलिक रूप की रचना का प्रयास और प्रचलन किया ही न जाता। व्यक्ति चेतना एवं लोक चेतना का संघर्ष यद्यपि अनेक रूपों में चित्रित होता चला आया है, किन्तु, उसके इतने रूप शेष हैं कि अधिकाधिक की संभावना बनी हुई है, अतः नयी साहित्यिक विधाएँ एक प्रयोग के रूप में सामने आती हैं तथा अपने रूप के विकास और रक्षा में संलग्न हो जाती हैं। इस प्रकार साहित्यिक विधाओं के क्षेत्र में परंपरा और प्रयोग का क्रम चलता रहा है और जैसा ऊपर देखा गया कि यह परंपरा और प्रयोग का क्रम रेखाचित्र में चल रहा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम अध्याय

आलोचना का विकास : पत्र-पत्रिकाओं का योग

५.१.१ समीक्षा के क्षेत्र में भी इस युग की पत्र–पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इनके द्वारा नव्य शास्त्रीय समीक्षा हुई। परंपरा का अनुमोदन करते हुए सर्वत्र उसका युग के अनुरूप अभिनव स्वरूप ही गृहीत हुआ। सर्वप्रथम गतानुगतिक विषयों, रूढ़ियों और अन्धविश्वासों का उच्छेदन करके जीवन के साथ उसका अविच्छेद्य संवंध निरूपित हुआ तथा नीति, सुरुचि, औदात्य आदि की प्रतिष्ठा करके शास्त्रीयता की भूमि पर समन्वयवादी, नवीनतावादी और पुनरुत्थानवादी समीक्षा शैलियों का बीज वपन हुआ।

५.१.२ आलोच्यकाल के पूर्व हिन्दी में कोई आदर्श प्रणाली स्थिर नहीं हो पायी थी जबकि अंग्रेजी में उस समय तक विक्टोरियन युग की आलोचना की शास्त्रीय पद्धति का प्रवेश हो चुका था। इस युग में वालकृष्ण भट्ट द्वारा आधुनिक ढंग की आलोचना का सूत्रपात हुआ। यद्यपि इनके पूर्व भारतेन्दु ने भी अपने 'नाटक' नामक रचना के द्वारा आलोचना का सूत्रपात करने का प्रयास किया, पर वह सैद्धांतिक और रीतिकालीन परिपाटी पर ही थी। इस युग के प्रमुख आलोचक हैं – वदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, वालमुकुंद गुप्त आदि। इन आलोचकों ने नाटक, कविता, उपन्यास, आदि पर आलोचनात्मक लेख लिखे हैं जिनमें आलोचना के सैद्धान्तिक पक्ष को महत्व नहीं दिया गया है। पर आलोचना के नाम पर इस समय केवल गुण दोषों, विशेष रूप से भाषा संबंधी गुण दोषों पर ही विचार होता था। 'कविवचन सुधा' में प्रकाशित 'हिन्दी कविता' शीर्षक लेख में हिंदी के आरंभिक काल की समीक्षा का रूप द्रष्टव्य है–

'इस काल में नाटक एक दो बने जिनमें एक 'हास्यार्णव' था यद्यपि यह शुद्ध नाटक की चाल से नहीं है, तथापि कुछ नाटक की चाल छूकर बना है, पर बहुत असभ्य शब्दों से भरा है, इसी से कवि ने उसमें अपना नाम नहीं रखा पर अनुमान होता है कि रघुनाथ कवि का ही नाटक सबसे पहले जो हिन्दी भाषा में पुरानी ठीक नाटक की रीति से बना वह नहुष नाटक बने और अब तो भाषा में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक व्याकरण और प्रबंध पुस्तक बन गई। आधुनिक काल के कवियों में श्री गिरिधरदास महान् कवि हुए, क्योंकि व्याकरण, कोष और नाटक हिंदी में पहले इन्होंने बनाए। पजनेस, रघुनाथ इत्यादि अनेक कवि कुछ पहले हुए थे। पर किसी ने नई बात नहीं की वही लीक पीटते चले गए[१]।'

इन आलोचनाओं की अपनी शैली थी जिनमें तीक्ष्ण व्यंग्यात्मकता के साथ भावात्मकता, आत्मानुभूमि एवं लेखक को सीधे सम्बोधित करने की प्रवृत्ति भी मिलती है। यथा–

'लाला जी यदि बुरा न मानिये तो एक बात आपसे धीरे से पूछें, वह यह कि आप ऐतिहासिक पुरावृत्त की छाया लेकर नाटक किसको कहेंगे, क्या केवल किसी पुराने समय के ऐतिहासिक पुरावृत्त की छाया लेकर नाटक लिख डालने से ही वह ऐतिहासिक हो गया। · · · कृपा करके विचारी निरपराधिनी कवित्व शक्ति के भाव का प्राण ऐसी निर्दयता के साथ न लीजिएगा···लाला जी! कभी आपने इस बात पर भी ध्यान दिया है कि स्त्रियों की कितनी मृदु प्रकृति होती है और लज्जा उनमें होती है। · · · · अहा, अहा तनिक और ज्यादा धँस जाता तो काहे को आपको नाटक लिखने का कष्ट सहना पड़ता।'

५. १. ३ समालोचना की दृष्टि से इस काल की पत्रिकाओं में 'कवि-वचन सुधा', 'आनंद कादम्बिनी' और 'क्षत्रिय पत्रिका' का प्रमुख स्थान है। इन पत्रिकाओं में प्राप्ति स्वीकार वाले स्तंभ में ऐसी ही समालोचनाएँ मिलती हैं। 'अंधेर नगरी', 'नीलदेवी'; 'संयोगिता स्वयंवर', 'नूतन ब्रह्मचारी' आदि उपन्यासों की समालोचना का श्रेय इसी स्तम्भ को है। इसके अतिरिक्त इसमें तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं की भी आलोचनाएँ रहती थीं। ये आलोचनात्मक लेख किसी विशेष लेखक द्वारा लिखाए नहीं जाते थे अपितु पुस्तक या समाचारपत्र को स्वीकार करने पर कुछ आलोचनात्मक पंक्तियाँ लिखी जाती थीं। इस प्रकार के प्राप्ति स्वीकार या आलोचना का उद्देश्य गुण गाना, दोष दिखाना और सीख सिखाना तक ही सीमित था।

५. १. ४ आधुनिक हिंदी आलोचना का वास्तविक सूत्रपात सुदर्शन (१९००), सरस्वती (१९००), समालोचक (१९०२) आदि पत्रिकाओं से हुआ। इसके पूर्व सन् १८९७ में 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' के प्रकाशन के कारण

१– 'कविवचनसुधा', जनवरी, सन् १८७२, पृ० ७९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना को एक नई दिशा मिल चुकी थी। साथ ही महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधवप्रसाद मिश्र, श्यामसुंदर दास, अम्बिकादत्त व्यास और मिश्रबंधु जैसी प्रतिभाओं को भी विकास का अवसर मिला। इसके प्रथम भाग में ही गंगाप्रसाद अग्निहोत्री ने अपने 'समालोचना' नामक लेख के द्वारा समालोचना की आवश्यकता की चर्चा करते हुए मूल ग्रंथ का ज्ञान, सत्य प्रीति, शांत स्वभाव और सहृदयता आदि आलोचक के आवश्यक गुण बताए। इस प्रकार उन्होंने आलोचना संबंधी नई साहित्यिक चेतना की ओर लोगों को आकर्षित किया पर उसका प्रतिफलन दिखाई पड़ा द्विवेदीयुग में ही।

५.१.५ आलोच्यकाल में सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की आलोचनाएँ हुईं। परिपक्वता की दृष्टि से तो नहीं कहा जा सकता कि इस काल की कृतियाँ सफल रहीं, पर आगे आने वाली पीढ़ी के लिए इन्होंने एक महत्तम कार्य अवश्य किया। साहित्य की अन्य विधाओं के सदृश ही आलोचना के क्षेत्र में भी इस काल की पत्र-पत्रिकाओं का बहुत बड़ा योगदान दिखलाई पड़ता है। 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका', 'सरस्वती', 'मर्यादा', 'इंदु', 'नवनीत', 'प्रभा', 'समालोचक', 'लक्ष्मी' 'हिंदी प्रदीप' आदि सभी ने किसी न किसी रूप में इस क्षेत्र में सहयोग दिया। इन पत्रिकाओं में आलोचना के कई रूप मिलते हैं, जैसे—तुलनात्मक, गुणदोष निदर्शनात्मक, टीका पद्धति, वाद-विवाद के द्वारा खंडन मंडन में आलोचना। वाद-विवाद के द्वारा खंडन मंडन में व्यावहारिक आलोचना का रूप पर्याप्त निखरा। इसके अतिरिक्त व्यंग्य चित्रों के माध्यम से तत्कालीन साहित्यिक दीन दशा के चित्रण में भी आलोचना का एक नवीन रूप दिखाई पड़ा। यद्यपि इस प्रकार के चित्रों से कुछ लोग तिलमिला उठे पर इसका भी तत्कालीन साहित्यिकों तथा पाठकों पर बड़ा मार्मिक प्रभाव पड़ा। मिश्रबंधुओं द्वारा 'मिश्रबंधु विनोद' के प्रणयन से हिन्दी में ठोस आलोचनात्मक इतिहासों और जीवनी मूलक समीक्षाओं को एक नई दिशा मिली जिसके आधार पर आगे चलकर रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' लिखा।

५.१.६ आलोच्य काल के पूर्व हिन्दी में किसी परंपरागत आदर्श प्रणाली का अभाव था जब कि अंग्रेजी में उस समय तक विक्टोरियन युग की आलोचना की शास्त्रीय पद्धति का प्रवेश हो चुका था जो आदर्श एवं प्रभाववादी था। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने, जो आधुनिक आलोचना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की परंपरा स्थापित करने वाले पहले आलोचक थे, रीतिकालीन साहित्यिक रूढ़ियों और हिन्दी कविता की विषय और रूप विधान सम्बन्धी आवश्यक रूढ़ियों का तिरस्कार कर नवीन आदर्शवादी समीक्षा का प्रचलन करने का 'सरस्वती' द्वारा प्रयास किया। इस काल में हिंदी साहित्य के सामने नई समस्याएँ उपस्थित थीं। सबसे प्रमुख समस्या खड़ीबोली गद्य के परिमार्जन, नियमन तथा खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में ग्रहण की थी। काव्य की विषय-वस्तु के आदर्शमूलक विस्तार और उसकी संयत अभिव्यक्ति का प्रश्न भी उपस्थित था। रीतिकालीन छंद आदि वाह्य उपकरणों और अनावश्यक काव्य रूढ़ियों के परीक्षण, त्याग और ग्रहण के विषय में नए सिरे से विचार करना भी जरूरी हो गया था। विषय विस्तार की दृष्टि से द्विवेदी जी का निम्नांकित वाक्य बड़ा मार्मिक है—

'चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य, विन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी, सभी से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरंजन हो सकता है। फिर क्या कारण है कि इन विषयों को छोड़कर कोई-कोई कवि स्त्रियों की चेष्टाओं का वर्णन करना ही कविता की चरम सीमा समझते हैं?'

५.१.७ रीतिकालीन कवियों की तुलना में भक्त कवियों को श्रेष्ठ बतलाना तथा कालिदास, भवभूति, भारवि और श्रीहर्ष के साथ ही भारतेंदु की रचनाओं की प्रशंसा करना ऐसी बातें हैं जो उनके युगानुरूप दृष्टि विस्तार की सूचना देती हैं। विषय और शैली की दृष्टि से कविता को युग के अनुकूल, सर्वसुलभ और उच्चादर्शों से युक्त बनाने की प्रेरणा उन्होंने बराबर दी। उस समय भी स्थिति को देखते हुए उनका यह कार्य, जो तत्कालीन नए लेखकों के लिए प्रेरक रूप था, आगे की समीक्षा के विकास के लिए आधार प्रस्तुत करने वाला और साहित्य के संवर्द्धन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण था।

५.१.८ सैद्धांतिक आलोचना की दृष्टि से द्विवेदी जी के कई लेख 'सरस्वती' में निकले। नैषधचरित चर्चा,[1] हिन्दी कालिदास की आलोचना[2],

---

१. सरस्वती, १९०१, पृ० ३४५।
२. 'सरस्वती', १९१२, पृ० ७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विक्रमांकदेव चरित चर्चा,'[१] कालिदास की निरंकुशता[२] आदि कुछ सैद्धान्तिक बातें स्पष्ट कीं जो नव साहित्य के निर्माण के लिए पथ प्रदर्शक बनीं। द्विवेदी युग की आलोचना का आलोच्य विषय हिन्दी साहित्य तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु उसका विस्तार संस्कृत साहित्य व मराठी साहित्य से बढ़ता विश्व के कई भाषाओं के साहित्य को अपने में समाहित कर लेता है। कामताप्रसाद गुरु की 'खड़ीबोली की काव्य स्वतंत्रता',[३] अक्षयवट मिश्र की 'तुलसीदास की अद्‌भुत उपमाएँ',[४] डा० रतनसिंह की 'मिश्र भ्राताओं के नवरत्न'[५] आदि रचनाएँ हिन्दी साहित्य पर हैं, जब कि त्रिमूर्ति की 'कालिदास के काव्य में नीति बोध',[६] अक्षयवट मिश्र का 'कालिदास के ग्रंथ'[७] और 'महाकवि क्षेमेन्द्र और अवदान कल्पलता',[८] गिरिजाप्रसाद द्विवेदी का 'पार्वती परिणय नाटक',[९] भूप नारायण दीक्षित का 'कविवर राजशेखर',[१०] 'गिरिजाप्रसाद द्विवेदी का 'भट्ट नारायण और वेणी संहार नाटक',[११] आदि संस्कृत साहित्य पर है। लक्ष्मीधर वाजपेयी का 'मराठी साहित्य की वर्तमान दशा',[१२] 'श्यामसुन्दर जोशी का 'जर्मनी का कवि सम्राट् गोथे',[१३] महेशचन्द्र मौलवी का 'अरबी कविता का कालिदास'[१४] आदि के विषय अन्य भाषाओं से लिखे गए हैं। पदुमलाल पुन्ना

---

१. सरस्वती, १९०५।
२. वही, १९१२, पृ० १०७।
३. वही, १९१२, पृ० ३१८।
४. वही, पृ० २७१।
५. वही, पृ० १२६।
६. वही, १९११, पृ० २११।
७. वही, पृ० ६०४।
८. वही, १९१८, पृ० २७४।
९. वही, १९१९, पृ० ३९।
१०. वही, पृ० १७८।
११. वही, १९१२, पृ० ६६७।
१२. वही, १९१७, पृ० १।
१३. वही, १९१९, पृ० १०४।
१४. वही, पृ० ३२७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल बख्शी ने अपने 'विश्व साहित्य' में हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं के साहित्य के आधार पर साहित्य सिद्धान्तों का विवेचन किया।

५. १. ९ इस काल में आलोचना का क्षेत्र विस्तार हुआ। अब आलोचना मात्र कृति तथा कृतिकार की आलोचना तक ही सीमित नहीं थी अपितु तत्कालीन विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण करने की प्रवृति भी आलोचना के रूप में दिखलाई पड़ने लगी। इसका प्रभाव न केवल साहित्य पर पड़ा वरन् उससे ज्ञान के प्रति स्पृहा उत्पन्न हुई, जिससे इसका संबंध समाज, देश तथा जन जीवन की वर्तमान अवस्था से बड़ी ही घनिष्ठता के साथ जुड़ गया। साहित्य का द्वार अब तक कुछ के लिये, विशिष्ट जनों के लिये ही, उन्मुक्त था उसे सर्वसाधारण के लिए खोलने का श्रेय इस युग को ही है। उस समय अनेक समस्याएँ समाज में बिखरी थीं। चूंकि इस युग की समीक्षा साहित्य के इतर जीवन को प्रभावित करने के उद्देश्य से प्रेरित थी इसलिये जब भी अवकाश मिलता था इन समीक्षकों ने राजनीति, धर्म, व्यवसाय, कृषि, विज्ञान, पुरातत्व, नृतत्व, जीवविज्ञान, राष्ट्रीय आन्दोलन, नेताओं का स्वभाव, अंग्रेजी राज्य की शोषक नीति, जनसंख्या, राष्ट्रीय एकता, स्त्री शिक्षा, हिन्दी प्रचार, नव स्वतंत्र देशों की गाथा आदि सामयिक समस्या की प्रमुखता को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से स्वीकार किया और कभी पद्य में कभी गद्य में अपनी कलम चलायी। आलोच्य युग में साहित्यालोचन को सामान्य लोगों तक पहुँचाने के लिये तथा जनता की अभिरुचि जगाने के लिये सिद्धांत की अपेक्षा साहित्य को प्रमुखता दी गई। समाज को प्रथम, सर्जनात्मक साहित्य को द्वितीय और समीक्षा को तृतीय स्थान मिला। समीक्षा में तत्कालीन नाटकों तथा अन्य साहित्यिक विधाओं को समक्ष रखकर सिद्धान्त निर्धारण हुआ। समीक्षा के जो उद्देश्य निश्चित हुए उनमें साहित्य की उन्नति, साहित्य को समान्य जनता तक पहुँचाना, साहित्य की उपयोगिता स्पष्ट करना तथा साहित्य को रमणीय शिक्षाओं द्वारा जीवन को अधिक आनंदमय बनाने की दिशा दिखाना आदि प्रमुख थे। सामाजिकता की स्वीकृति का ही परिणाम यह था कि सैद्धांतिक समीक्षा में रस को कसौटी के रूप में माना गया। 'प्रसाद' ने भी काव्य की कसौटी रस ही स्वीकार किया—

'कविता के आस्वाद करनेवाले के हृदय में एक अपूर्व आह्लाद होता है और वह कैसा है ? यह व्यक्त नहीं किया जा सकता, क्यों कि जो भावुक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं वह अपने अनुभवों के प्रतिवर्तन करने से वा तदनुकूल कविता पाठ करने के समय अपने हृदय को वाह्य ज्ञान शून्य होकर एक अथाह आनंद सिन्धु में छोड़ देता है।'[1]

आचार्य द्विवेदी ने भी अच्छी कविता की कसौटी स्रोता घोषित किया—

'अच्छी कविता की सवसे बड़ी परीक्षा यह है कि उसे सुनते ही लोग बोल उठें कि सच कहा। वही कवि सच्चे कवि हैं जिनकी कविता सुनकर लोगों के मुँह से सहसा यह उक्ति निकली है।'

हरिऔध जी भी तुकवन्दी तथा वाह्य सौंदर्य मात्र को महत्व देने की कटु आलोचना करते हुए कहते हैं—

किसी विषय को सीमावद्ध कर देना युक्ति संगत नहीं। सहृदय और प्रतिभावान पुरुष जिस छंद को हाथ में लेगा उसी में चमत्कार दिखला सकता है। छंद या भाषा कंकालमात्र हैं अथवा उनको शरीर कह लीजिए, भाव और विचार ही उनके प्राण हैं।'[2] (हिंदी में तुकान्तहीन पद्यरचना).
—लोचनप्रसाद पाण्डेय

५. १. १० इस प्रकार इस युग ने रीतिकालीन मान्यताओं की आलोचना करते हुए साहित्य को आर्षत्व से मुक्त माना और दरवारी संस्कृति का तीव्र विरोध किया। इससे काव्य सामान्य जनता के स्तर पर आया एवं उसमें लोकतन्त्रात्मक प्रवृत्तियों का समन्वय हो सका। इस लोक प्रमुखता ने देशभक्ति के साथ अपने को जोड़ा और देश के लिये व्यक्ति के वलिदान की भावना बढ़ी। देश में प्रचलित विदेशी प्रभाव की कटु आलोचना मैथिलीशरण जी की इन पंक्तियों में दिखाई पड़ती है—

जो वस्तु देखो 'मेड इन'
•..... ....

वे चूड़ियाँ तक हैं विदेशी
देख लो वस हो चुका

१—'इंदु', कार्तिक १९६७, पृ० १२३।
२—'इंदु', किरण १, कला ६, खंड २, १९१५, पृ० ३७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत स्वकीय सुहाग भी
परकीय करके खो चुका।'[१]
—'जीवनप्रद काव्य', मैथिलीशरण गुप्त

५. १. ११ इस युग के आलोचकों ने स्थान-स्थान पर वर्तमान अवस्था के प्रति तीव्र असंतोष व्यक्त किया है। तत्कालीन शिक्षा पद्धति के दोषों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिए कई लेखकों तथा कवियों ने कलम उठाई। शिक्षा में क्लर्क, मुहर्रिर और स्कूल मास्टर की अपेक्षा उत्पादक पैदा करने वाली शिक्षा की ओर ध्यान आर्कषित करते हुए गांधी जी लिखते हैं——

'वर्तमान शिक्षा पद्धति में हमारी कुटुम्ब प्रथा की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता। शायद संचालक स्वभावतः ही हमारी आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान नहीं देते। मेकाले हमारे साहित्य को घृणा की दृष्टि से देखता था, और यहाँ के निवासियों को धर्मान्ध समझता था।······इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि, भलाई का उद्देश्य रखते हुए भी एक दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति की रचना की गई। इस नई स्कीम को बनाते समय केवल तत्कालीन परिस्थिति का विचार किया गया। सरकार को डाक्टरों, वकीलों और क्लर्कों की आवश्यकता है और भारतवासियों को एक नई विद्या की। इन सब बातों के फलस्वरूप विद्यालयों के लिये पुस्तकें बनाते समय हमारे सामाजिक संगठन का कुछ भी विचार नहीं किया गया और एक अंग्रेजी कहावत के अनुसार घोड़े के आगे गाड़ी जोत दी गई। मि० मलावरी ने कहा है कि 'बालकों को इतिहास और भूगोल पढ़ाने के लिये प्रथम उन्हें अपने घर का इतिहास और भूगोल पढ़ाना चाहिए'।[२]——

५. १. १२ समाज में स्त्री का स्थान मात्र संतान उत्पत्ति रह गया था जिसकी कड़ी अलोचना राय देवीप्रसाद पूर्ण की इन पंक्तियों में दृष्टव्य है——

'नारी बस बालक बनावन की कल है।
. . . कल की बदौलत ही जगी धूम पोतन की,
कल के प्रचार बिन निरी कल कल है।
जहाँ कल चलै तहाँ कल है सकल भाँति,
जहाँ कल नाहीं तहाँ नाम को नकल है।[३]'

१—— 'प्रभा' श्रावण, १९१४, पृ ३३४।
२——'मर्यादा', अक्टूबर १९१९, पृ० १४५।
३——वही, मई १९११, पृ० २१।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज की सभी स्त्रियों की हीन स्थिति तथा उनमें शिक्षा के अभाव को देख अनेक पत्र-पत्रिकाओं में भिन्न-भिन्न ढंग से आलोचना निकली।

५. १. १३ भारतेन्दु युगीन समीक्षकों में से प्रतापनारायण मिश्र ने खेती की हीन और किसानों की अति दयनीय स्थिति की ओर ध्यान आकृष्ट किया तथा देश में विदेशी शासन के फलस्वरूप जो कारीगरी नष्ट हो गई थी तथा देश का धन विदेशों की ओर खिचा जा रहा था, उनका स्मरण दिलाया तो द्विवेदी जी ने भी इन विषयों पर अपनी सशक्त लेखनी उठाई। अमेरिकन और भारतीय कृषि कार्य की तुलना करते हुए कृषक दशा तथा उसके शोषक कारणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा—

'भारतवर्ष में कृषकों की दुरवस्था और निर्धनता के कई कारण हैं। एक तो यहाँ किसानों में शिक्षा का अभाव है, दूसरे यहाँ की गवर्नमेंट ने देश के कुछ अंशों को छोड़कर अन्यत्र सभी कहीं भूमि को अपने अधिकार में कर रखा है। वही उसकी मालिक वनी वैठी है, अतएव उसने भूमि के लगान और मालगुजारी के सम्बन्ध में जो कानून बनाए हैं वे बहुत ही कड़े हैं फिर जहाँ कहीं ताल्लुकेदारियाँ हैं वहाँ किसानों के सुभीते का कम, ताल्लुकेदारों के सुभीते का अधिक ध्यान रखा गया है। यही सब कारण हैं जो किसानों को पनपने नहीं देते।'

५. १. १४ इसी लेख में वे भारतीय कृषक को शिक्षित होकर कृषि विकास की ओर उन्मुख होने की शिक्षा देते हैं, क्योंकि वे केवल रूपये को धन न मानकर वास्तविक संपत्ति उत्पादन को कहते हैं। युग ने जागरूक रहकर धर्म, मत, संप्रदाय, जाति पाँति विभेद मूलक अनेकता का विरोध कर आर्थिक और राजनैतिक आधारों पर संगठन का विगुल बजाया और इसी को धर्म का स्थानापन्न बनाने पर अपनी शक्ति लगाई। युग अपनी जाग्रतावस्था की सूचना निम्न शब्दों में देता दिखाई देता है—

'हिंदू भाइयों को यह समय मतमतान्तरों में पड़ने का नहीं और न संतोष का है और न वेदान्ती बनकर उदासीन होकर बैठने का है। भाइयो, ऐसे घोर काल में कुछ धार्मिक कार्य नहीं हो सकता न वह शास्त्र विहित ही है। केवल देश बचाने के लिए जिस तरह हो सके कटिबद्ध होकर यत्न करो। यह समय देश विदेश व व्यक्ति जाति-पाँति के विचार का नहीं है, सबका प्रायश्चित्त केवल देश भाइयों को बचाना ही परम धर्म है। यही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबका परम कर्तव्य है। जैसे हो सके वैसे शिल्प शिक्षा का प्रचार करो, जैसे बन पड़े वैसे कला-कौशल सीखने का यत्न करो। यही सबका उद्धार है और कुछ नहीं'।[1]

इस युग के मुख्य समीक्षक मिश्रबन्धुओं ने ब्राह्मणवाद की आलोचना की और द्विज के अंतर्गत तीन वर्णों को रखते हुए गोस्वामी तुललीदास की महानता को भी चुनौती दी और उनके काव्य में दोष दिखाए।

५. १. १५ आचार्य द्विवेदी जी की साहित्य समीक्षा का प्रभाव न केवल साहित्य पर पड़ा वरन् उससे ज्ञान के प्रति स्पृहा उत्पन्न हुई और इसका सम्बन्ध, समाज, देश तथा जन-जीवन की वर्तमान अवस्था से बड़ी ही घनिष्ठता के साथ जुड़ गया। साहित्य का द्वार अबतक कुछ के लिए, विशिष्ट जनों के लिए ही उन्मुक्त था उसे सर्व-साधारण के लिए खोलने का श्रेय आचार्य द्विवेदी को है। वे साहित्य को सामान्य जनता के इतना पास ले आए कि दोनों एक दूसरे को पहचानने लगे। निम्न पंक्तियाँ इस पर प्रकाश डालती हैं—

'द्विवेदी जी की कितनी ही ऐसी रचनाएँ हैं जो पाठकों में सत्साहित्य के प्रति अनुराग और ज्ञान के प्रति स्पृहा उत्पन्न करने के लिए लिखी गई हैं और कितनी ही ऐसी हैं जिनका सम्बन्ध देश और समाज की वर्तमान अवस्था से है। हिंदी भाषा भाषियों में ज्ञान का जितना प्रचार द्विवेदी जी ने किया है, उतना अन्य किसी लेखक ने नहीं किया··· ··· द्विवेदी जी ने रजत श्रृंखला क्या तोड़ी, हिन्दी साहित्य में सर्वसाधारण के लिए ज्ञान का द्वार ही उन्मुक्त कर दिया'।[2]

द्विवेदी जी की आलोचना में अंग्रेजी के विरोध का स्वर स्पष्ट है। यही नहीं वे अंग्रेजी के विरोध के माध्यम से अँग्रेजी शासन व्यवस्था का विरोध बड़ी कुशलता से कर डालते हैं। उन्हें राजनीतिक गुलामी की अपेक्षा सांस्कृतिक गुलामी अधिक भयंकर लगी जो प्रखर हो मुखर हो उठी—

'हाय री अँग्रेजी! तूने हमारे खाद्य और पेय पदार्थों में परिवर्तन कर दिया; तूने हमारे वस्त्र-परिच्छदों में अदल बदल कर डाला, यहाँ तक

१. 'इंदु', कला ४, खंड २, किरण ६, पृ० ५४०।
२. 'द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ', पृ० ५३७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तूने हमारी मातृभाषा को भी तिरस्कृत कर दिया !!! अभागे हिन्दुस्तान को छोड़कर धरती की पीठ पर एक भी ऐसा सभ्य देश नहीं, जहाँ इस तरह की अस्वाभाविक बातें होती हैं[१] ।'

इस युग की समीक्षा का विषय न केवल स्वतंत्र आंदोलन था अपितु उसके नेता भी उसकी चर्चा का विषय बने—

'गाँधी जी को आधुनिक साँचे में पला हुआ प्राचीन महर्षि समझना चाहिये। उनके लेखों और व्याख्यानों में व्यक्त किए गए उनके विचारों से हम लोगों को यथाशक्ति लाभ उठाना चाहिए।'

५. १. १६ कांग्रेस के असहयोग आंदोलन के समर्थक रहते हुए भी समीक्षकों ने समाज और नेता के सामने समर्पण बुद्धि से काम नहीं लिया। वे आंदोलन के प्रतिक्रियावादी रूप को समझने तथा उसकी यथार्थवादी समीक्षा कर जनता को सच्ची तस्वीरें दिखाते रहते थे। प्रभाव उत्पन्न करने के लिये व्यंग्य का उपयोग किया गया और कटाक्ष छोड़ा गया—

'श्रीकृष्ण ने अपने सगे सम्बन्धी, पर अन्यायी दुर्योधन का निमंत्रण स्वीकार नहीं किया। और एक आजकल के लीडर हैं जो कहीं निमंत्रण पाने के प्रयत्न में रहते हैं। आज अपमानित होकर असहयोग की घोषणा करते हैं, कल उड़ती चिड़िया के द्वारा निमंत्रण पाकर सहयोग करने दौड़ते हैं।' इन्हें ही लक्ष्य करके कवि ने कहा है—

'कौम के गम में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ।
रंज लीडर को बहुत है मगर आराम के साथ।'

५. १. १७ इतिवृत्तात्मक युग नें रीतिकालीन मान्यताओं की अस्वीकृति का उद्घोष किया। इस युग की समीक्षा ने रीतिकालीन साहित्य को आर्षत्व से युक्त माना और दरबारी संस्कृति का तीव्र विरोध किया। प्रसाद ने अपनी 'कवि और कविता' लेख में अपना विरोध व्यक्त करते हुए लिखा—

'सामयिक पाश्चात्य शिक्षा का अनुकरण करके समाज के भाव बदल रहे हैं उनके अनुकूल कविताएँ नहीं मिलतीं और पुरानी कविता को पढ़ना तो मानो महारोष सा प्रतीत होता है, क्योंकि उस ढंग की कविता बहुतायत

१. 'सरस्वती' वर्ष १५, सं० ४५, पृ० १९९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से हो गई है।' ('इंदु' २३, श्रावण, १९६७) इससे काव्य सामान्य जनता के स्तर पर आया एवं उसमें लोकतंत्रात्मक प्रवृत्तियों का समन्वय हो सका। पं० पद्म सिंह शर्मा ने अमीर खुसरो की कविता के उस अंश को हेय माना जो दरबार के दबाव का परिणाम था—

'खुसरो की कविता अत्यंत चमत्कारपूर्ण, सरस और हृदयहारिणी है। यद्यपि उन्होंने ऐतिहासिक कहानियाँ, अपने आश्रयदाताओं, बादशाह के कारनामे और प्रशस्तियाँ लिखी हैं जो उन्हें दरबारदारी के दबाव से लिखनी पड़ती थीं।'

लोकतंत्रीय मान्यताओं का दबाव इतना बढ़ा कि काव्य को वर्ग विशेष के हितों के लिये प्रयोग करना भी अनुचित माना जाने लगा था। कविता की महानता स्थापित की गई और उसका दुरुपयोग करने वालों को अपराधी घोषित किया गया।

५. १. १८ इस लोक-प्रमुखता ने देश भक्ति के साथ अपने को जोड़ा और देश के लिये व्यक्ति के बलिदान की भावना बढ़ी। देश की प्रतिष्ठा विदेशियों के सामने न गिरे इसलिये साहित्य समीक्षक विदेश गमन करनेवालों को लिखने लगे—

'देखो, तुम विदेश में जाकर अपने को भारत का बहुत छोटा विद्यार्थी बताना और कोई ऐसा काम न करना जिससे अपने देश का ह्रास होवे। जो कुछ कहो समझकर कहना।'

प्राचीन वैभवपूर्ण भूतकाल की ओर उन्मुख होने के साथ साथ इस युग की समीक्षा में अन्य तत्व भी निहित थे जैसे—व्यापार नीति तथा आर्थिक विकास की प्रेरणा, एवं वर्तमान भारतीय अवस्था के प्रति तीव्र असन्तोष व्यक्त करने, उसे दूर करने की दिशा का निर्देशन आदि।

५.१.१९ आचार्य द्विवेदी ने यद्यपि समीक्षा के उत्कृष्ट सिद्धान्त एवं उसकी समाजशास्त्रीय मान्यताएँ स्पष्ट नहीं कीं और उनसे इस प्रकार की माँग करना भी समय से भी पूर्व की बात है, किन्तु इनकी माँग अवश्य प्रस्तुत की जिससे आगे चलकर उस युग का आविर्भाव हो सका जो प्रगतिशील दृष्टिकोण की दिशा निर्दिष्ट कर सका। समीक्षा के ध्येय रस, भाव, अलंकार, छन्दशास्त्र और नायिका का परिज्ञान मात्र नहीं है, ऐसा स्पष्ट रूप से कहा गया है और उस परम्परागत पद्धति पर चलने वाले कवियों की और साहित्यकारों की तीव्रतर भर्त्सना की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई। मिश्रवन्धुओं के हिन्दी नवरत्न को इसी कसौटी पर कसा गया जिससे प्रत्यालोचना (आलोचना की आलोचना) का रूप भी प्रकट हुआ। द्विवेदी जी हिन्दी में भिन्न भिन्न विषयों पर लेख और पुस्तक लिखवाना चाहते थे। ऐसी पुस्तकों की आलोचना में द्विवेदी जी ने पाठकों का खूब ज्ञान विस्तार किया है। ये आलोचनाएँ संपादकीय गौरव को वढ़ाती रही हैं। मन्नन द्विवेदी गजपुरी ने अपने 'हिन्दी पत्र और पत्रिकाएँ[१]' शीर्षक निवंध में इसी प्रकार की आलोचना प्रस्तुत की जिसके द्वारा 'उदारता का अभाव', 'हँसी में गाली', 'पालिसी का परिवर्तन', 'सम्पादन में लापरवाही,' 'साहित्य में चोरी', 'अरुचि-कर विषय' आदि को लेकर कटु आलोचना हुई साथ ही लेखकों को भी प्रोत्साहित करती रही। परिणामस्वरूप लेखकों ने अपने काव्य का निम्न विषय चुना–

दुर्भिक्ष का चित्रण – वह पेट उनका पीठ से
मिलकर हुआ क्या एक है?
मानो निकलने को परस्पर
हड्डियों में टेक है।

कृषक और कृषक कर वृद्धि के प्रति विक्षोभ–
करते नहीं कर्षक परिश्रम
और वे कैसे करें?
कर वृद्धि है जव साथ तव
क्यों वे वृथा श्रम कर मरें?

विदेशी प्रभाव– जो वस्तु देखो 'मेड इन'
– – – –
वे चूड़ियाँ तक हैं विदेशी
देख लो, वस हो चुका
भारत स्वकीय सुहाग भी,
परकीय करके खो चुका।

शिक्षा के प्रति रईसों के विचार–
खाओ पियो मौजें करो

१– मर्यादा, २८०, मार्च, १३।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेलो हँसो, सो ठीक है
क्या सीखकर लिखना उन्हें
बनना मुर्हरिर है कहीं
पण्डित पढ़े पढ़कर कहीं
उनको कथा कहनी नहीं।

सामयिक पत्रों पर—

हैं पत्र भी प्रायः परस्पर द्वेषभाव न छोड़ते
हममें विदेशी भाव भरके, वह भुलाते हैं हमें।

तीर्थ पण्डे—

वे तीर्थ पण्डे हैं जिन्होंने, स्वर्ग का ठेका लिया
वे हैं अविद्या के पुरोहित, अविधि के आचार्य हैं।
लड़ना झगड़ना और अड़ना, मुख्य उनके कार्य हैं।

साधु सन्तों पर—

जो कामिनी-कांचन न छूटा, फिर विराग रहा कहाँ ?

आडम्बर—

यद्यपि उड़ा बैठे कमाई, बाप दादों की सभी
पर ऐंठ वह अपनी भला, हम छोड़ सकते हैं कभी
भूषण बिकें, ऋण भी बढ़े, पर धन्य सब कोई कहे
——'जीवनप्रद्र काव्य'——मैथिलीशरण
(प्रभा । ३३४ । श्रावण, १९१४)

तत्कालीन विभिन्न प्रकार की परिवर्तित परिस्थिति पर किया हुआ उपर्युक्त कटाक्ष द्रष्टव्य है। काव्य के माध्यम से समीक्षा का यह एक नवीन रूप था। 'भारत भारती' की आलोचना में द्विवेदी जी लिखते हैं——

यह काव्य वर्तमान हिन्दी साहित्य में युगान्तर उत्पन्न करने वाला है। वर्तमान और भावी कवियों के लिए यह आदर्श का काम देगा। यह सोते हुओं को जगाने वाला है, भूले हुओं को ठीक राह पर लाने वाला है, निरुद्योगियों को उद्योगशील बनानेवाला है, आत्मविस्मृतों को पूर्व स्मृति दिलाने वाला है। इसमें वह संजीवनी शक्ति है, जिसकी प्राप्ति हिंदी के और किसी भी काव्य से नहीं हो सकती है।

ऐंसी प्रोत्साहनपूर्ण आलोचना ने गुप्त जी को महाकवि बनाने में बहुत कुछ सहायता दी होगी। गुप्त जी ने भी साकेत की भूमिका में द्विवेदी जी का ऋण स्वीकार किया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५. १. २० परिवर्तनकालीन साहित्य में आलोचना तिहरे दायित्वों का वहन करती है। वह गुण दोष की विवेचना मात्र नहीं होती। उसका पहला दायित्व होता है साहित्य की परंपरा का मूल्यांकन करना और वर्तमान के आलोक में परंपरा के सजीव तथा म्रियमाण तत्वों की खोज करके सजीव तत्वों पर बल देना। इसके लिये उसे अनुसंधान की जिम्मेदारी भी उठानी पड़ती है। गत युगों की सीमाओं या असावधानियों के कारण जो कुछ दबा रह गया हो, उसको नए युग की विचार संपन्नता के बल पर निरंतर खोजते रहना उसका एक आवश्यक दायित्व है। दूसरा दायित्व साहित्य के वर्तमान से सीधा संबंध रखता है। जितना कुछ भी वर्तमान में रचा जा रहा है उसके प्रति पूरी तरह सचेत रहना अर्थात् साहित्य की सर्जनात्मक शक्ति के जीवित संपर्क में बने रहना पड़ता है। मगर इन दोनों दायित्वों से बढ़कर एक तीसरा दायित्व भी है जिसका सम्बन्ध भविष्य से है। यहाँ आलोचना अपना सर्जनात्मक पक्ष प्रदर्शित करती है। वह भावी लेखन का दिशा-निर्देश करती है।

५. १. २१ आलोच्ययुग की पत्र-पत्रिकाओं के 'पुस्तक परिचय' तथा "सामयिक साहित्य चर्चा' शीर्षक स्तंभों द्वारा दूसरे प्रकार के दायित्व का निर्वाह बड़ी कुशलतापूर्वक किया गया। इन स्तंभों द्वारा तत्कालीन संपादकों ने अपने समय की रुचि पर नियंत्रण का प्रयास तो किया ही साथ ही समकालीन लेखकों की प्रशंसा अथवा निंदा मात्र कर वे साहित्यिक गतिविधि का भी परिचय देते हैं। उस समय के शिक्षित समुदायों द्वारा किस प्रकार का साहित्य पसंद किया जाता था इस बात का पता भी हमें इन समालोचनाओं से लगता है; जैसे 'नवनीत' के 'विज्ञापन' शीर्षक स्तंभ में तत्कालीन विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं द्वारा किसी एक ही पुस्तक पर किस प्रकार विभिन्न विचार व्यक्त किए गए, इसका उद्धरण मिलता है।

काशी ग्रंथ प्रकाशन समिति द्वारा प्रकाशित 'सरल गीता' पर 'अभ्युदय', 'ब्राह्मण सर्वस्व' तथा 'भारतमित्र' तीन विभिन्न पत्रों की प्रतिक्रिया स्पष्ट की गई है—

अभ्युदय : 'कागज और छपाई सुंदर है। गीता का हिंदुओं में बड़ा आदर है। इसके असंख्य संस्करण निकल चुके हैं और नित्य नये संस्करण छपते ही जाते हैं। हिंदी में दुर्भाग्यवश न तो गद्यात्मक और न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्यात्मक ही कोई अच्छा सुपाठ्य अनुवाद मिलता है इसलिए काशी की मंडली का उत्साह सराहनीय है। पुस्तक पाँच भागों में विभक्त है—(१) प्रस्तावना, (२) पूर्व वृत्तान्त, (३) हिन्दी में अनुवाद, (४) मूल श्लोक, (५) उपसंहार। इसमें गीता के मुख्य मुख्य सिद्धान्तों की समयोचित और सुबोध भाषा में व्याख्या की गई है। पाठकों को सरल गीता के सहारे से गीता के उपदेश समझने में बहुत ही सुगमता होगी।'

ब्राह्मण सर्वस्व: 'सरल गीता···छापा और कागज उत्तम है। अक्षर सुवाच्य है। वास्तव में श्रीमद्भगवद्गीता पर नागरी भाषा में आज तक ऐसा सरल, सुगम, सर्वप्रिय टीका हमारे दृष्टिगोचर कोई नहीं हुआ। गीता एक कर्म, उपासना, ज्ञान की धर्म संबंधी उत्तम, सर्वग्राह्य, सर्वोपकारी पुस्तक है। किस्सा कहानी या उपन्यासों के तुल्य नहीं इसी से रोचकता न होने से सर्वसाधारण की समझ में कम आता था पर इस सरल टीका से सबका मनोरंजन हो गया है'।

भारत मित्र: '···हमें यह देखकर आनन्द होता है कि पं० लक्ष्मणराव जी ने इसी पर दृष्टि रखकर सरल भाषा में गीता का प्रकृत अर्थ पाठकों को समझाने की चेष्टा की और वह सफल भी हुई।······पर संक्षेप में गीता का अर्थ समझाने वाली टीका का अभाव था। यह अभाव पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे और ग्रंथ प्रकाशन समिति ने दूर कर दिया।'[1]

इन्हीं 'विज्ञापन' स्तंभों में समय समय पर पुस्तक परिचय के साथ इसी प्रकार की संक्षिप्त आलोचनाएँ निकलती रहती थीं। जैसे—

'कवि सम्राट् विहारी के सतसई पर हिन्दी संसार के सुप्रसिद्ध विद्वान पं० पद्मसिंह शर्मा की अपूर्व आलोचना ने सोने में सुगंध पैदा कर दी है। संस्कृत, फारसी और उर्दू की कविताओं से तुलनात्मक लेख बड़े ही चित्ताकर्षक हैं। 'सतसई संहार' नामक निवन्ध जो किसी समय सरस्वती में छपा था, इसमें उद्धृत है। पुस्तक की भाषा सरस और सजीव है। समालोचना विषय की हिंदी में अपूर्व पुस्तक है'।[2]

'सिद्ध मनोरंजन—पुस्तक का विषय अच्छा है। आपने एक कथानक रूप में यह दिखलाया है कि मनुष्यों का मन कुवासनाओं के फेर में पड़कर किस तरह

---

१. 'नवनीत', विजयादशमी अंक १, वर्ष १।
२. 'स्वार्थ', कार्तिक सं० १९७६, पृ० २।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुबुद्धि को प्राप्त करता है और धर्म पथ पर आरूढ़ हो जाता है। कविता साधारण दोहा चौपाई में है। कहीं कहीं बिल्कुल अनर्थक शब्द गढ़ लिए गए हैं जैसे 'पूरी', 'भोजत' इत्यादि। पुस्तक के आदि में ग्रन्थकर्त्ता महाशय का हाफटोन चित्र दिया गया है जो कि रचयिता की साधुता का परिचय देता है। पुस्तक कोई ३०० पन्ने की होगी, इसका मूल्य १) अधिक मालूम पड़ता है'।[१]

'जयन्त' नाटक की 'नव जीवन' द्वारा की गई समीक्षा 'नवनीत' में दी गई—

'जयन्त'......महाकवि शेक्सपियर के अत्यन्त रोचक, शिक्षाप्रद तथा मनोरंजक नाटक हैमलेट को जिन्होंने अंग्रेजी द्वारा पढ़ा है वह भली भाँति कवि कल्पना की सृष्टि का अनुभव कर सकते हैं। 'जयन्त' इसी नाटक के आधार पर लिखा गया है। गुर्जर महोदय ने इस भावपूर्ण नाटक को स्वदेशी वस्त्र पहिनाने में निपुणता से कार्य किया है। भाषा सरल है'।[२]

५. १. २२ कभी कभी सामयिक पत्रों की त्रुटियों की ओर इंगित करते हुए बड़े गहरे कटाक्ष भी होते थे। देखिए —

'किससे कहते हो ? और क्या कहते हो ? ब्रह्म विचार शीर्षक लेख को पढ़ कर उत्पन्न होते हैं। यह लेख आषाढ़ के अंक से निकल रहा है। विषय तो यह योगियों द्वारा ही प्रतिपादित हो सकता है और इसलिए हमें अधिकार नहीं कि इसपर हम कुछ निज सम्मति प्रकाशित करें। परन्तु हमें दुख इस बात का है कि आज संसार में लेखों को नहीं वरन् लेखक देखकर लेख प्रकाशित किए जा रहे हैं और वह भी एक ऐसे पत्र में जो कि जातीय पत्र होने का दावा रखता है। क्या सम्पादक महोदय स्वयं ही अपने हृदय पर हाथ रखकर बतलावेंगे कि चतुर्वेदी समाज जिसके लिए यह (चतुर्वेदी) पत्र निकाला गया है इसको कुछ भी आवश्यक समझता है। उचित तो यह था कि यदि लेखक महाशय को यह लेख प्रकाशित करना ही था तो 'ज़माना' इत्यादि किसी उर्दू के प्रसिद्ध पत्र में इसे प्रकाशित करते[३]।'

'हिन्दी केसरी' के सम्पादक हिंदी जानते हैं और उन्होंने अब यह भी प्रमाणित कर दिया हैं कि हम उर्दू भी जानते हैं, यही नहीं बल्कि हम हिंदी का शब्दशः अनुवाद भी उर्दू में कर सकते हैं। उदाहरणार्थ पहिले ही अंक में पहिले

१— भारतेन्दु, अप्रैल १६०६, पृ० १३८।
२— नवनीत, विजयादशमी अंक १, वर्ष १।
३— 'स्त्री दर्पण', १ नवम्बर १६१५, पृ० ३७१।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख के दूसरे कालम की अंतिम पंक्तियों में एक स्थान पर 'कर्त्तव्य पालन के लिए' ये शब्द आये हैं। हम नहीं समझते कि हिंदी पाठकों को इन शब्दों का भी अर्थ बतलाने की आवश्यकता पड़ सकती है। परन्तु आपने इसका अर्थ भी समझाया है, यथा—'कर्तव्यपालन करने के लिए—फ़र्ज अदा करने के लिए'। हमारे एक मित्र ने सूचित किया कि यदि इसके साथ ही 'ड्यूटी परफार्म करने के लिए' भी लिखा जाय तो अर्थ और भी सुस्पष्ट हो।

'हिन्दी केसरी' के सम्पादक धोती पहनकर हैट लगाने तथा तुर्की टोपी देकर चंदन लगाने के कट्टर पक्षपाती मालूम होते हैं, क्योंकि आपने हिंदी और फारसी शब्दों की ऐसी बेमेल खिचड़ी पकायी है कि उसे गंगभवर का जोड़ा ही कहना चाहिए, जैसे 'अप्रत्यक्ष तरीके से' 'पुण्यकार्य के साथ' 'रिश्ता', 'साफ साफ दृष्टिगोचर' इत्यादि[१]।

भारतेन्दुकालीन व्यंग्य का रूप उपर्युक्त समीक्षा में द्रष्टव्य है।

५.१.२२ साहित्य की तत्कालीन गतिविधि का यथार्थ और प्रभावपूर्ण परिचय हमें सरस्वती के व्यंग्यचित्रों के माध्यम से होता है। ये चित्र हिंदी समीक्षा के क्षेत्र में अपना स्थायी महत्व रखते हैं, क्योंकि मानव मस्तिष्क भाव की अपेक्षा रूप से अधिक प्रभावित है। इन चित्रों ने पाठकों में एक प्रकार का क्षेत्र निर्माण करने के साथ ही साथ उनका पर्याप्त मनोरंजन भी किया है। इन चित्रों की सामग्री साहित्य के विविध क्षेत्रों से ली गई है। 'हिन्दी साहित्य'[२] में चोर लेखकों पर, 'खड़ी बोली का पद्य[३]' में संकर शैली के कवियों पर, 'कला सर्वज्ञ सम्पादक[४]' में मूर्ख और धूर्त सम्पादकों पर, 'मातृभाषा का सत्कार[५]' में अंग्रेजी पढ़े लिखे मानसिक गुलाम बाबुओं पर, 'काशी या साहित्य वृक्ष[६]' में काशी के अकुशल उपन्यासकारों पर एवं 'मदरसों में प्रचलित हिंदी और उसके पुरस्कर्त्ता[७]' में शिक्षा विभाग के अधिकारियों तथा पाठ्य पुस्तक-लेखकों पर सीधा और मार्मिक

१– 'नवनीत' ज्येष्ठ सं० १९७२, पृ० ६२।
२– 'सरस्वती', १९०२ ई०, पृ० ३५।
३– वही, पृ० २९३।
४– वही, भाग ४, सं० ५।
५– वही, सं० ६।
६– वही, सं० ७।
७– वही, सं० ९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यंग्य है। सन् १६०२ ई० के नवम्बर में प्रकाशित 'हिंदी उर्दू' शीर्षक चित्र द्वारा तत्कालीन हिंदी उर्दू झगड़े की ओर संकेत मिलता है। इस चित्र के नीचे 'उर्दू और हिन्दी' संवाद इस रूप में रखा गया है—

हिन्दी उर्दू

'उर्दू—अरी क्यों री चुड़ैल। तू मर कर भी नहीं मरती।
हिन्दी—बेटी। तू जुग जुग जी, मुझे क्यों मारे डाले? मैंने तेरा क्या बिगाड़ा?
उर्दू—तेरे आछते मुझे राजगद्दी तो नहीं मिलती।
हिन्दी—ठीक है बेटी। कलियुग न है। तुझे इसी दिन के लिए बड़े साध से जन्माया था। अच्छा तेरे जी में आवे सो कह, पर मेरी तो माता की आत्मा ठहरी, मैं तो आसीस ही दूँगी।'[1]

ऐसे ही 'उपन्यासकार और उनकी कृति'[2] शीर्षक चित्र में तत्कालीन रद्दी उपन्यासों के पाठकों पर व्यंग्य है पर साथ ही उन उपन्यासों के लेखक की भी आलोचना है कि वे ऐसे उपन्यास लिखते हैं कि जिन्हें पूछने वाला शिक्षित नहीं अपितु पैसे वाले मात्र हैं। संवाद इस प्रकार है—
उपन्यासकार—बेटी तुझे कौन अधिक चाहते हैं।
बेटी—आँख के अंधे और गाँठ के पूरे।

'मदरसों में प्रचलित पुस्तक प्रणेता और हिन्दी' में पुस्तक प्रणेता हिन्दी रूपी नारी की पीठ में छूरा भोंकता दिखाया गया है।

व्यंग्य चित्रों के माध्यम से की गई उपर्युक्त समीक्षा का अचूक प्रभाव पड़ा होगा। बीस पृष्ठों की लंबी चौड़ी आलोचना जो काम नहीं कर सकती वह इन नन्हें से व्यंग्य चित्रों ने किया होगा। ये व्यंग्य चित्र इस युग की अपनी देन हैं। इसके द्वारा तत्कालीन साहित्य की पतनोन्मुख वृत्तियों को संकेत मिलने के साथ उन्हें सजग करने का भी स्तुत्य प्रयास है।

५. १. २४ इस युग में रचनाओं और रचनाकारों की तुलनात्मक समीक्षा भी आलोचना साहित्य की एक विशिष्टता है। तुलनात्मक आलोचना के लेखकों में पं० पद्मसिंह शर्मा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने तुलनात्मक दृष्टि से अनेक आलोचनाएँ लिखीं—'भिन्न भिन्न भाषाओं में समानार्थवाची पद्य,' 'संस्कृत और हिंदी कविता का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव।' किसी

१— 'सरस्वती, १६०२ ई०, पृ० ३५६।
२—वही, १६०३ ई०, पृ० ४४०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक कवि पर, अन्य कवियों से उसकी तुलना करते हुए विस्तृत आलोचना का कार्य 'विहारी सतसई' पर तुलनात्मक समालोचना लिखकर किया। इस प्रकार की आलोचना में एक ही समय के दो या अधिक साहित्यकारों के साहित्य, एक ही विषय की विभिन्न युगों की कृतियों, एक विषय या भाव पर लिखित विभिन्न भाषाओं की कृतियों का तुलनात्मक विश्लेषण किया जाता है। इस प्रकार की आलोचना में समता एवं विषमता दोनों ही का दिग्दर्शन कराना अपेक्षित होता है। जब आलोचक तटस्थ भाव से समान कृतियों के समान एवं असमान भावों की व्याख्या करता है, तो तुलनात्मक आलोचना अत्यंत उपयोगी होती है, विशेषकर विभिन्न भाषाओं के साहित्य का आनंद ग्रहण करने के लिए। किन्तु जब आलोचक किसी को उत्तम और दूसरे को उसकी अपेक्षा हीन बताता है, तो विवाद की सृष्टि हो जाती है, जो साहित्य के लिए वांछित नहीं है। शर्मा जी की 'बिहारी और देव' ने इसी प्रकार का विवाद उत्पन्न कर दिया। शर्मा जी रीतिकालीन शृंगारपरक रचनाओं के प्रेमी, ब्रजभाषा के हिमायती और मूलत: चमत्कारवादी आलोचक थे। उनका कहना था कि 'जिस काव्य में जितना चमत्कार होगा, वह उतना ही उत्कृष्ट और आदरणीय होगा।' इसी आधार पर उन्होंने बिहारी की प्रशंसा और उनकी तुलना में अन्य कवियों को नीचा दिखलाने में अतिशयोक्ति से काम लिया है। यह सब होते हुए भी शर्मा जी की यह तुलनात्मक समालोचना अत्यंत पांडित्यपूर्ण और अपने ढंग की अनूठी है।

मिश्रबंधुओं ने तुलनात्मक समीक्षा की यही पद्धति अपनाकर देव को बिहारी से बड़ा बताने का प्रयत्न किया। लाला भगवानदीन ने 'बिहारी और देव' लिखकर पुन: बिहारी की श्रेष्ठता दिखलाने की चेष्टा की।

५. १. २५ समीक्षा युग में टीका पद्धति पर तीन प्रकार की रचनाएँ हुईं—अर्थपरिचय, रचना परिचय और रचनाकार परिचय के रूप में। अर्थपरिचय की दृष्टि से इस युग की उल्लेख योग्य पुस्तक जगन्नाथदास रत्नकार की 'बिहारी रत्नाकर' है। इसमें अर्थ और अलंकार आदि की व्याख्या के अतिरिक्त कवि की भावनाओं का सूक्ष्म विश्लेषण भी हुआ है।

५. १. २६ टीका पद्धति के दूसरे प्रकार (रचना परिचयात्मक आलोचना) के भी तीन रूप हैं। पहला रूप पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सामयिक पुस्तकों का तथा स्वयं पत्र-पत्रिकाओं का है। 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका',

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"समालोचक', 'नवनीत', 'प्रभा', 'इंदु', 'स्त्री-दर्पण', 'सरस्वती' आदि लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं ने इस कार्य में योगदान दिया।

यथा–

'विहारी सतसई– कवि सम्राट् विहारी के सतसई पर हिन्दी संसार के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० पद्म सिंह शर्मा की अपूर्व समालोचना ने सोने में सुगन्ध पैदा कर दी है। संस्कृत, फारसी और उर्दू की कविताओं से तुलनात्मक लेख बड़े ही चित्ताकर्षक हैं। 'सतसई संहार' नामक निबन्ध जो किसी समय सरस्वती में छपा था, इसमें उद्धृत है। पुस्तक की भाषा सरस और सजीव है। समालोचना विषय की हिन्दी में अपूर्व पुस्तक है।[1]'

'अग्रवाल बन्धु – आगरे से प्रकाशित छोटे आकार का मासिक पत्र। सम्पादक परमेश्वरीसहाय अग्रवाल। वार्षिक मूल्य २)। इस पत्र का जन्म कार्तिक सं० १९७६ से हुआ। उद्देश्य नाम से ही प्रगट है। लेख साधारण है। भाषा की शुद्धता की ओर यदि विषेष ध्यान दिया जाय तो अच्छा हो।[2]'

'आनन्द––साप्ताहिक पत्र उर्दू बीबी के दुर्गमगढ़ रूपी लखनऊ नगर से प्रकाशित होता है इसकी लेखी शैली की सब वर्तमान लेखक सराहना कर चुके हैं, यदि हिन्दी भाषा के चटकीले लेख तथा नवीन समाचार पढ़कर हिन्दी की सहायता करना है तो इस पत्र के ग्राहक बनिए।

५. १. २७ टीका पद्धति का तीसरा रूप पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित परिचयात्मक लेखों का है। शेक्सपियर का 'हैमलेट',[3] बाणभट्ट की 'कादम्बरी',[4] "हिन्दी आईने अकबरी"[5] आदि इसी कोटि के लेख हैं। टीका पद्धति का तीसरा प्रकार रचनाकार परिचय भी हिन्दी के आलोचना साहित्य के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस पद्धति पर मिश्रबन्धुओं के 'महाकवि सेनापति',[6]

१–स्वार्थ, १९७६ ई०, पृ० ४३।
२–'खत्री हितकारी', ३१ जुलाई, १९०७।
३–सूर्यनारायण दीक्षित––'सरस्वती' १९०६, पृ० ४५२।
४–नरदेव शास्त्री–'सरस्वती' १९१४, पृ० ३७।
५– मुंशी देवीप्रसाद, पृ० ६४, सरस्वती १९१६।
६– ,, ,, ,, १२२ ,, ,,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र',[१] 'महात्मा सूरदास',[२] महाकवि 'केशवदास',[३] 'पद्माकर भट्ट',[४] 'रहीम',[५] 'सूदन',[६] 'लालकवि',[७] 'मलिक मुहम्मद जायसी'[८] हैं।

इन्हीं परिचयों के संस्कृत और वैज्ञानिक रूप ने रामचन्द्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में प्रत्येक अध्याय की भूमिका बनकर सामान्य परिचय का रूप धारण किया है।

५.१.२८ इस काल की समीक्षा में छन्द रचना तथा साहित्य की भाषा पर भी पर्याप्त विचार हुआ। हिन्दी में तुकान्तहीन पद्य रचना को देखकर लोगों ने भिन्न भिन्न ढंग से अपने विचार व्यक्त किया। यथा—

'किसी विषय को सीमाबद्ध कर देना युक्तिसंगत नहीं। सहृदय और प्रतिभावान पुरुष जिस छंद को हाथ में लेगा उसी में चमत्कार दिखला सकता है। छन्द या भाषा कंकालमात्र हैं—अथवा उनको शरीर कह लीजिए, भाव और विचार ही उनके प्राण हैं।...'

साथ ही यह भी लिखते हैं—'तुकान्त भी अलंकार है। अनुप्रास की गणना अलंकारों में है। यह आपको विदित है। भाषा कविता कामिनी सालंकार हमको दृष्टिगोचर हो चुकी है, अब जब वह अलंकारहीन हमारे सामने आती है तो प्यारी नहीं लगती। उसको देखकर हमारे हृदय की वही गति होती है, जो एक सालंकार देखी गई नायिका को बिना अलंकार देखने पर किसी की हो सकती है। किन्तु जब अधिकांश कविता इसी ढंग की होने लगेगी और हमारे श्रवणपुट और हृदय उसके आदी हो जावेंगे तो काल पाकर वह भी प्रिय लगेगी।'

आगे लिखते हैं—'मैं हिन्दी भाषा को नित नूतन अलंकारों से सज्जित करने का पक्षपाती हूँ। फिर चतुर्दशपदी कविता लिखकर उसके भण्डार की शोभा

१—	मुंशी देवीप्रसाद. पृ०	१६८	सरस्वती,	१९७६।
२—	,,	१९३	,,	,,
३—	,,	२४१	,,	,,
४—	,,	३०९	,,	,,
५—	,,	३३६	,,	,,
६—	,,	३९३	,,	,,
७—	,,	४४३	,,	,,
८—	,,	५०३	,,	१९१०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों वर्द्धित की जावे। चाहे कुछ भिन्नता हो, परन्तु हिन्दी में सैंकड़ों क्या सहस्रों भजन और विष्णुपद ऐसे हैं जिनको हम चतुर्दशपदी कह सकते हैं। सिक्खों के आदि ग्रन्थ में अष्टपदी, षोडशपदी, चतुर्दशपदी नाम की बहुत सी कविताएँ हैं।'[1]

हिन्दी में चतुर्दशपदी या sonnet का प्रचार अवश्य होना चाहिए। आपने तथा गुप्त जी ने कुछ चतुर्दशपदियाँ लिखी भी तो हैं। मेरी समझ में चतुर्दशपदी के लिए रोला छन्द विशेष रूप से और साधारणतः सभी छन्द उपयुक्त होंगे। मैं भाव के अनुसार भाषा और विषय के अनुसार छंद का पक्षपाती हूँ।'[2]

५. १. २६ 'अनस्थिरता' शब्द को लेकर द्विवेदी जी और बालमुकुंद गुप्त में जो ऐतिहासिक वाद-विवाद हुआ उसने सिद्धांतों की आलोचना प्रत्यालोचना का रूप धारण कर लिया। इसका प्रारंभ सरस्वती के ११ नवबर, १६०५ ई० के अंक में प्रकाशित 'भाषा और व्याकरण' शीर्षक से हुआ। शनैः शनैः इसमें तत्कालीन अनेक विद्वान् सम्मिलित होते गए जिनमें कुछ पक्ष में थे और कुछ विपक्ष में। पं० गोविंदनारायण मिश्र, पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी, पं० माधवप्रसाद मिश्र तथा जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी आदि लोगों ने इसमें प्रमुख रूप से भाग लिया। इस वाद-विवाद में भाग लेनेवाले पत्रों में सरस्वती, भारतमित्र, हिंदी बंगवासी, समालोचक और वैश्योपकारक प्रमुख थे। इस आलोचना-प्रत्यालोचना से भाषा और व्याकरण को तो एक नई व्यवस्था मिली ही साथ ही यह संघर्ष उस युग की साहित्यिक जागृति और तेजस्वी पत्रकारिता को भी द्योतित करता है। उस युग के पत्रकार औचित्य के आग्रही थे और उन्हें अपने दायित्व का ज्ञान था, इसके प्रति वे सदैव सचेत रहते थे। साथ ही इस प्रकार की आलोचना प्रत्यालोचना के द्वारा तर्क और विश्लेषण की प्रवृत्ति बढ़ी जिसने आगे की पीढ़ी का मार्ग निर्देशन भी किया।

५. १. ३० संक्षेप में इस युग के हिंदी साहित्य के समक्ष अनेक समस्याएँ थीं, जिनमें काव्य की विषयवस्तु के आदर्शमूलक विस्तार और उसकी संयत अभिव्यक्ति के साथ खड़ीबोली गद्य के परिमार्जन, नियमन तथा उसको काव्य भाषा के रूप में ग्रहण की थी। रीतिकालीन छंद आदि

१—हरिऔध, 'इंदु', किरण १, कला ६, खंड २, १६१५ ई०, पृ० ३८।
२—रूपनारायण पाण्डेय—वही, पृ० ४०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाह्य उपकरणों और अनावश्यक काव्यरूढ़ियों के परीक्षण, त्याग और ग्रहण के विषय में नए सिरे से विचार करना भी आवश्यक हो गया था। इन सब समस्याओं को सुलझाने के प्रयत्न में इस काल की आलोचना बाह्य-पक्ष प्रधान हो गई। पर यह नहीं भूलना चाहिए कि आधुनिक आलोचना संबंधी यह आरंभिक कार्य आगे की समीक्षा के विकास के लिए आधार प्रस्तुत करनेवाला और साहित्य के संवर्द्धन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण था।

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ अध्याय

उपन्यास विधा और पत्र-पत्रिकाओं का जगत

६. १. १ आलोच्यकाल की हिंदी पत्रकारिता पर दृष्टिपात करते समय जो बात सबसे पहले ध्यान में आती है वह है विषय वैविध्य की ओर झुकाव। इस काल की लगभग सभी प्रमुख पत्रिका विविध-विषय संबंधित पत्रिका थी जिसमें कविता, कहानी, नाटक, निबंध, आलोचना के साथ उपन्यास भी आते थे। यद्यपि उपन्यास पत्रिका का विषय नहीं है, पर अपने विषय-वैविध्य की विशिष्टता बनाए रखने के लिए इनमें कुछ उपन्यास भी निकले। कभी कभी तो इन पत्रिकाओं के पृष्ठों पर लंबे लंबे उपन्यासों को देख लोग विक्षुब्ध हो उठे। ऐसा ही विक्षोभ 'इंदु', सन् १९१४ के अप्रैल के अंक में प्यारेलाल गुप्त की एक आलोचना 'स्त्रीदर्पण' के प्रति निकला जिसमें पत्रिका में छपने वाले लंबें उपन्यासों की कटु आलोचना की गई।

६. १. २ इस काल में दो प्रकार की पत्रिकाएँ निकली थीं—एक विषय वैविध्यपूर्ण, दूसरी विशिष्टीकरण की प्रवृत्ति लिए हुए। जैसा कि स्वाभाविक था, उपन्यास क्षेत्र में ही विशिष्टीकरण की प्रवृत्ति विशेष सक्रिय रही। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में देवकीनंदन खत्री के 'तिलस्मी उपन्यास', 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' (सन् १८९१ ई०) 'नरेंद्र मोहिनी' (सन् १८९६ ई०), कुसुमकुमारी, चार भाग (सन् १८९९-१९०० ई०) और वीरेंद्र वीर (१८९८ ई०) लगभग पत्रिकाओं की सी आंशिक नियमितता के साथ प्रकाशित हो रहे थे और उन्हें पर्याप्त सफलता मिली थी। यह प्रवृत्ति पाठक वर्ग और लेखक वर्ग के विशिष्टीकरण की सूचना देती है। आलोच्यकाल में धारावाहिक उपन्यासों की कई पत्रिकाएँ सामने आईं, जैसे—'उपन्यास' (सन् १९०१), 'हिंदी नाविल' (सन् १९०१ ई०), 'उपन्यास लहरी' (सन् १९०२ ई०), 'उपन्यास सागर' (सन् १९०७ ई०), 'उपन्यास कुसुमांजलि' (सन् १९०४), 'उपन्यास बहार' (सन् १९०७ ई०) और 'उपन्यास प्रचार' (सन् १९१२ ई०)। ये पत्रिकाएँ अपेक्षित विकास नहीं कर सकीं, कुछ जल्दी ही बन्द हो गईं, कुछ लड़खड़ा लड़खड़ा कर चलती रहीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६. १. ३ उपर्युक्त दोनों प्रकार की पत्रिकाओं ने मिलकर निरन्तर वर्धमान पाठक वर्ग की मनोरंजन की प्यास को बुझाने वाला साहित्य पर्याप्त परिमाण में प्रस्तुत किया जिसे देख 'सरस्वती' ने कई व्यंग्य चित्र भी निकाले। यथा—'काशी के साहित्य वृक्ष'[1] शीर्षक चित्र में एक वृक्ष दिखाकर दिखाया गया है कि वृक्ष पर सब उपन्यास रूपी ही फल लगे हैं। सस्ते मनोरंजन की यह भूख तथा विवेक का अभाव देख एक व्यंग्य वार्तालाप के द्वारा पाठकों को सजग करता हुआ सम्पादक 'उपन्यासकार और उनकी कृति' में कहता है—

'उपन्यासकार—बेटी तुम्हें कौन अधिक चाहते हैं ?'
चाँदी की नली से फूँकते हुए कृति (चौथे मुख से)—
आँख के अंधे और गाँठ के पूरे ।'[2]

६. १. ४ इस युग तक आते-आते उपन्यास व्यावसायिकता के क्षेत्र में पदार्पण कर चुका था। उसके सामने स्पर्धा की दशाएँ थीं, अतः उसके लिए मनोरंजकता प्रथम शर्त थी। इस समय अधिकतर लोग उपन्यास का केवल मनोविनोद का साधन समझते थे। गदर के बाद हिंदी प्रदेश मे जिस शिक्षित मध्यवर्गीय समाज की सृष्टि हुई थी उसे डा० कृष्णलाल ने तीन श्रेणियों में बाँटा है—

'प्रथम श्रेणी में वे लोग थे जो अंग्रेजी आदि विविध विषयों की शिक्षा पाए हुए थे और जो सरकारी अथवा गैर सरकारी नौकरियाँ करते थे। ऐसे लोगों को पहले तो अवकाश ही वहुत कम मिलता था और जो कुछ मिलता भी था उसे वे हिन्दी की पुस्तकें पढ़कर नष्ट करना नहीं चाहते थे, वरन् अंग्रेजी के अभ्यास के लिए प्रायः अंग्रेजी के जासूसी उपन्यास अथवा कुछ और पढ़ा करते थे। दूसरी श्रेणी में वे लोग थे जो रामायण, महाभारत और पुराणों को छोड़ कर और कुछ पढ़ने को उद्यत न थे। उनके लिए ज्ञान का सारा भंडार इन्हीं प्राचीन पुस्तकों में निहित था। तीसरी श्रेणी में वे लोग थे जिन्होंने वहुत साधारण शिक्षा पाई थी और केवल हिन्दी ही लिख पढ़ सकते थे। ये लोग या तो छोटी-मोटी दुकान करते थे, अथवा खेती-बारी और इधर-उधर की मेहनत मजदूरी। उनको अपने अपने बचे हुए समय को बिताने के लिए किसी साधन की आवश्यकता थी। पारसी नाटक उनकी शक्ति के बाहर थे। अतः

१—'सरस्वती', सन् १९०३ ई०, पृ० २५८।
२—वही, पृ० ४४०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी अर्ध शिक्षित जनता की आवश्यकता-पूर्ति के लिए हिन्दी में उपन्यासों की रचना हुई'।[1]

६. १. ५ इनके साथ एक अन्य पाठक समूह का भी उल्लेख करना आवश्यक है। इस समूह में विद्यार्थी वर्ग और घर की चहारदीवारी में बंद रहने वाली स्त्रियाँ आती हैं। वस्तुतः यह पाठक समूह उपर्युक्त तीनों श्रेणियों में व्याप्त था। रोचक और मनोरंजक साहित्य, पुरुषों और अभिभावकों की नजरें बचाकर इस समूह में प्रवेश पाता था। इस विशिष्ट वर्ग के पाठक समूह को तृप्त करने के लिए जिस साहित्य का विकास हुआ वह था तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों का। यह नवनिर्मित और निरन्तर वृद्धिशील पाठक वर्ग को आकृष्ट करता हुआ त्वरित गति से विकास के पथ पर बढ़ा। खत्री जी के निम्न कथन से यह पूर्ण स्पष्ट होता है कि उस समय के पाठक वर्ग की रुचि किधर थी—

'मेरे कई मित्र आक्षेप करते हैं कि मुझे देशहित पूर्ण और धर्म-भावमय कोई ग्रंथ लिखना उचित था, जिससे मेरी प्रसरणशील पुस्तकों के कारण समाज का वहुत कुछ उपकार व सुधार हो जाता। बात वहुत ठीक है परन्तु एक अप्रसिद्ध ग्रन्थकार की पुस्तक को कौन पढ़ता है? यदि मैं चन्द्रकान्ता और सन्तति को न लिखकर अपने मित्रों में भी दो चार बातें हिन्दी के विषय में कहना चाहता तो कदाचित् वे सुनना पसन्द नहीं करते। 'गम्भीर विषय के लिए जैसे एक गम्भीर भाषा का प्रयोजन होता है वैसे ही विशेष पुरुष का भी। भारतवर्ष में विशेषता की अधिकता न देखकर मैंने साधारण बातें लिखनी ही आवश्यक समझीं'।[2]

६. १. ६ उपर्युक्त उद्धरण में वह अंश ध्यान देने योग्य है जहाँ खत्री जी कहते हैं—'गम्भीर विषय के लिए जैसे एक गम्भीर भाषा का प्रयोजन होता है वैसे ही विशेष पुरुष का भी'। उपन्यास रचना के माध्यम से साधारण वर्ग के अविशेष व्यक्ति की रुचि साहित्य की ओर करने का यह प्रयास श्लाघनीय है न कि आलोचना के योग्य। किसी भावी अमरता को छोड़कर वर्तमान का धर्म निबाहते हुए इतिहास के पन्नों में दब जाने की निर्भय तैयारी निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

१—आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० २८८—८६।
२—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—'आधुनिक हिंदी साहित्य', पृ० २११।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एक समय था कि लोग 'सिंहासन बतीसी', 'बैताल पचीसी' आदि की कहानियों को विश्रामकाल में रुचि से पढ़ते थे फिर 'चहारदरवेश' और 'अलिफ लैला' के किस्सों का समय आया, अब इस ढंग के उपन्यासों का समय है। अब भी वह समय दूर है जब लोग बिना किसी न्यूनाधिकार के ऐतिहासिक पुस्तकों को रुचि से पढ़ें। जब वह समय आवेगा उस समय कथासरित्सागर के समान 'चन्द्रकान्ता' बतलावेगी कि एक वह भी समय था जब इस प्रकार के ग्रन्थों में ही वीरप्रसू भारतभूमि की सन्तान का मनोविनोद होता था। भगवान उस समय को शीघ्र ला दें'।[1]

६. १. ७ उपर्युक्त उद्धरण में खत्री जी ने एक प्रकार से पाठकों के रुचि परिवर्तन के इतिहास का काल विभाजन-सा कर दिया है। पहला काल वह था जब संस्कृत के आख्यायिका साहित्य से कथा की माँग पूरी होती थी, फिर फारसी की दास्तानों का समय आया, उसके बाद इस ढंग के उपन्यासों का। ये 'इस ढंग के उपन्यास' कैसे थे? यह तो स्पष्ट है कि मनोरंजन प्रधान थे। हिन्दी उपन्यास के इतिहास में इन उपन्यासों का महत्व इस कारण है कि सर्वप्रथम इन्होंने ही इस नये साहित्यांग के प्रति जनता की रुचि बढ़ायी। वस्तुतः परवर्ती युगों में इससे हिन्दी उपन्यास के भावी विकास की दृष्टि से बहुत लाभ हुआ।

६. १. ८ इस प्रकार के उपन्यास के विषय में सामान्य धारणा यह है कि इसमें केवल कथायोजना ही है, पात्र अथवा चरित्रयोजना नहीं। यह कथन या धारणा किसी सीमा तक न केवल संकुचित है, वरन् भ्रामक एवं निराधार है, क्योंकि जिस उपन्यास में भी पात्रों की योजना की जायगी उसमें उनका चरित्रांकन भी होगा, यद्यपि उसकी कथात्मक विशेषताओं का उनमें अपेक्षाकृत अभाव होता है। परन्तु चरित्र - चित्रण उनमें भी होता है। चरित्र–चित्रण उपन्यास का उतना ही अनिवाय तत्व है जितना कि कथानक। यह अवश्य है कि ऐसे कथानक काल्पनिक अधिक होते थे, परन्तु ऐसा भी नहीं है कि उनमें केवल कोरी कल्पना ही हो। इन उपन्यासों में जिन तिलिस्मों और गुप्त खजानों का वर्णन है वे पूर्णतः काल्पनिक नहीं हैं। इस तरह के तिलिस्म पुराकाल में गुप्त खजानों की रक्षा के लिए बनते थे। खत्री जी के 'चन्द्रकान्ता' सन्तति के महत्व के विषय में श्री सूर्यनाथ तकरू ने लिखा है–

१–डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय–आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० २१२।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रोचकता की तो उस पुस्तक में हद है। ड्यूमा या वाल्टर स्काट को छोड़ कर इतना रोचक लेखक मुझे और कोई नहीं मिला । आप उनकी पुस्तकें पढ़िए। कभी ऊबिएगा नहीं। ये केवल मनोरंजन के लिए लिखते थे और उसमें पूर्णतः सफल भी हुए। ये रोमा रोलाँ, टाल्सटाय या गोर्की के ढर्रे के लेखक नहीं थे। इनकी श्रेणी स्काट या ड्यूमा की श्रेणी है। आजकल के कुछ उपन्यास समालोचक उन बातों को असम्भव कहकर चल देते हैं। इस संबंध में स्वर्गीय खत्री जी ने लिखा है– कौन सी बात हो सकती है, इसका विचार प्रत्येक पुरुष की योग्यता और देश–काल–पात्र से संबंध रखता है । फिर जब तक मनुष्य कौतूहल को कुप्रवृति नहीं मान लेता, तब तक कौतूहलमयी रचनाएँ भी बुरी नहीं मानी जा सकतीं। स्काट का सभी कृतियाँ, ड्यूमा के सभी ग्रंथ, वेल्स और चेस्टर्टन की अनेक कृतियाँ क्या सभी सम्भव हैं ? क्या समूची अरेबियन नाइट्स सम्भव है ? पर क्या आप उन पर हँस सकते हैं। क्या केवल इसलिए कि वह आपके घर का सिद्ध पुरुष है। इसी तरह लोग खत्री जी की कृतियों में अश्लीलता का आरोप करते हैं। इनमें से कितने ही ऐसे हैं, जो खत्री जी की रचनाओं से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। मैं उन्हें निमन्त्रण देता हूँ कि वे इस आक्षेप को कहीं से सिद्ध करें । यह आक्षेप सर्वथा मिथ्या है। पहले यह कुत्सित उद्देश्य से फैलाया गया था, पर अब तो लिखी लकीरों की फकीरी की जाती है[१] ।'

६. १. ९ किसी भी भाषा के साहित्य में उपन्यास का प्रधान उद्देश्य होता है मनोरंजन अर्थात् उसका मुख्य ध्येय होता है जीवन की वास्तविकता से ऊबी जनता को कल्पना लोक की उस मनोरमता में विचरण कराना जहाँ वह अपनी वास्तविकता की कटुता से राहत पाकर कल्पना निर्मित स्वर्गलोक का सुख अनुभव कर सके। उपन्यास की इस ध्येय-पूर्ति के लिये आवश्यकता होती है कथावस्तु के उस क्रमबद्ध सुंदर चुनाव की जो पाठकों को पूर्णरूपेण रसमग्न कर देने की क्षमता रखता हो। रसानुकूल माँग की यह पूर्ति इन तिलिस्मी और ऐय्यारी उपन्यास द्वारा पूर्ण होती दिखायी देती है।

६. १. १० खत्री जी के पश्चात् हिंदी का उपन्यास-साहित्य गहमरी जी के आविर्भाव के साथ ही तिलस्मी एवं ऐय्यारी के चमत्कार को छोड़कर

१– 'विशाल भारत', मई सन् १९३४ ई०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक नवीन मोड़ लेता दिखालई पड़ता है, जो तिलिस्मी काल्पनिकता को जीवन की वास्तविकता की ओर ले जाता है। जीवन की इस वास्तविकता ने घटनाओं के कार्य-कारण संबंध में भी एक संबद्धता ला दी। फलस्वरूप गहमरी जी के समय का उपन्यास-साहित्य बुद्धिप्रधान तर्क की अपेक्षा करने लगा। यही कारण है कि गहमरी जी के समय तक उपन्यास लेखकों पर खत्री जी के उपन्यासों की अपेक्षा अंग्रेजी उपन्यासकारों—रेनाल्ड्स, ब्लेक, शरलक होम्स आदि की रचनाओं का ही अधिक प्रभाव पड़ा। मानव क्रिया-कलाप पर आधारित ये जासूसी उपन्यास, मानव संवेदनाओं को जाग्रत करने की अधिक क्षमता रखते हैं। यद्यपि इन जासूसी उपन्यासों में भी थोड़ी बहुत रहस्यात्मकता विद्यमान रहती है, परन्तु इन रहस्यों का उद्‌घाटन तर्क-बुद्धि-सम्मत होता है, जिसकी अपेक्षा तिलिस्मी उपन्यासों में बिल्कुल नहीं होती।

६. १. ११ हिंदी के तिलिस्मी एवं जासूसी उपन्यासों की उपर्युक्त परंपरा के पश्चात् उसके विकास-क्रम को एक विशेष महत्वपूर्ण नवीन मोड़ देनेवाले महानुभाव के रूप में पं० किशोरीलाल गोस्वामी का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने सर्वप्रथम मन तक की अछूती पड़ी रहनेवाली सामाजिक समस्याओं को अपनाया। सत्य तो यह है कि इनकी रचनाओं में हमें उत्तरकालीन समृद्ध उपन्यासों के बीज दिखलाई पड़ते हैं। यद्यपि उसे पूर्णतः कृतकार्य होने के लिये तब तक प्रतीक्षा करनी पड़ी, जब तक प्रेमचंद का आविर्भाव नहीं हुआ। प्रेमचद युग के उपन्यासों की सामाजिक समस्याएँ सर्वप्रथम हमें गोस्वामी जी की रचनाओं में ही देखने को मिलती हैं। गोस्वामी जी के ही उपन्यासों ने रहस्यात्मकता एवं कुतूहल के स्थान पर सामाजिक समस्याओं की ओर लेखकों का ध्यान आकृष्ट किया। जिस प्रकार वृक्ष की महानता बीज की कोटि एवं प्रकार पर निर्भर करती है, उसी प्रकार प्रेमचंद के उपन्यासों की सफलता गोस्वामी जी के उपन्यासों पर आधारित कही जा सकती है।

६. १. १२ गोस्वामी जी के साथ ही कुछ और जागरूक लेखकों ने युग के प्रभाव को आत्मसात् किया। इन्होंने अपनी सीमाओं के अंदर ही रहते हुए कतिपय ज्वलंत सामाजिक प्रश्न भी इन उपन्यासों के माध्यम से परिवारों की चहारदीवारी के अंदर पहुँचाने का प्रयास किया। यद्यपि इस समय तक उपन्यास कला का कोई उल्लेखनीय विकास नहीं हुआ था, परंतु फिर भी उपन्यासकारों की दृष्टि व्यावहारिक जीवन की समस्याओं की ओर रहती थी। कुछ लोगों के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतानुसार प्रेमचंद ही प्रथम समस्यामूलक उपन्यासकार माने जाते हैं। परंतु आलोच्य युग के उपन्यासों की सामाजिक समस्या का आधार लेकर चलने वाली रचनाओं की विवेचना द्वारा यह कथन सत्य प्रतीत नहीं होता। प्रेमचंद जी के सर्वप्रथम सामाजिक समस्यामूलक उपन्यास 'प्रेमा' के प्रकाशन के पूर्व ही सन् १९०४ ई० में लाला देवराज रचित 'कर्कशा सास' प्रकाशित हो चुकी थी, जिसकी प्रमुख समस्या थी दहेज न मिलने के काए विधवा की दुर्दशा। सन् १९०४ में गहमरी जी की 'तीन पतोहू' निकली जिसे हम समस्यामूलक उपन्यास कह सकते हैं। भारतीय समाज के विविध वर्गों में व्याप्त विभिन्न कुरीतियाँ और दोष भिन्न-भिन्न सामाजिक समस्याओं के रूप में इस काल में लिखे गए उपन्यासों में समाविष्ट किए गए। कुछ तत्कालीन लेखकों ने भी अपनी पुस्तक की भूमिका में स्पष्ट रूप से इस कथन की पुष्टि की; यथा गोपाल-राम गहमरी कृत 'अलबेला रागिया' की भूमिका की निम्न पंक्तियों में इसे स्वीकार किया गया है—

'इस उपन्यास में मैंने प्रचलित कुचालों एवं बिगड़े हुए चरित्रों का नमूना दिखाते हुए अपने स्वदेशी भाइयों का ध्यान देश की बिगड़ी हुई दशा पर आकर्षित करने का उद्योग किया है। भाइयो, ऐसे लोगों को शिक्षा देने और भावी भारत संतान को सजग करने के निमित्त मैंने इस पुस्तक में कई चित्र खींचे हैं'।[1]

६. १. १३ किशोरीलाल गोस्वामी ने भी अपनी पुस्तक 'चपला' की भूमिका में उसकी रचना का उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है—

'...एक दीन हीन परिवार की शोचनीय स्थिति के साथ वर्तमान समय का शिथिल उच्छृंखल और बंधुविहीन समाज का चित्र इस इच्छा से चित्रित किया गया है कि हमारे आर्य-भ्राता लोग इस विशृंखल समाज को सुशृंखला बद्ध करने के लिए मनसा-वाचा-कर्मणा प्रयत्न करने में तत्पर हों[2]।'

लाला भगवानदीन के 'अघट घटना' नामक उपन्यास के विज्ञापन की इन पंक्तियों से भी इस बात की पुष्टि होती है—

'... इसमें मनोरंजन के अलावा उत्तम शिक्षण की भी पूर्ण मात्रा है। कोई परिच्छेद ऐसा नहीं जिसके पढ़ने से कोई उत्तम शिक्षा न मिलती हो[3]..।'

---

१. अलबेला रागिया।
२. 'चपला'।
३. 'लक्ष्मी', जनवरी सन् १९१७ ई०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस युग में समस्याओं का विश्लेषण अभी उस मनोवैज्ञानिक आधार पर नहीं हुआ जो परवर्ती युग के उपन्यासकारों द्वारा संभव हो सका। इस युग के उपन्यासकार विविध सामाजिक समस्याओं के केवल वाह्य रूप को ही सामने रख पाये, जिनमें दृष्टकोण की रूढ़िगतता का भी दोष विद्यमान था। यदि उनमें किसी सामाजिक कुरीति की भर्त्सना की जाती थी तो उसका भी दुराग्रह मात्र होता था। भारतेन्दु युग में लिखे गए उपन्यासों में दृष्टिकोणगत रूढ़िवादिता इस सीमा तक विद्यमान थी कि उपन्यासकार अपने कथन की पुष्टि में प्राचीन नीति कथाओं से भी उद्धरण प्रस्तुत करता था और इस प्रकार से अपने मंतव्य का दृढ़तापूर्वक पोषण करता था। इस काल में भी उन्यासकारों ने भिन्न-भिन्न प्रकार की संकुचित भावनाओं, विशेष रूप से धार्मिक भावनाओं का आधार लेकर सामाजिक समस्याओं को उठाया। इसके साथ ही साथ इसका एक रूप प्रति-क्रियात्मक था और उसमें प्रायः धार्मिकता विरोधी प्रवृत्ति प्रबल थी। यदि एक ओर हिंदुओं के वैदिक धर्म के सम्यक् रूप में पुष्टीकरण के प्रयत्न हुए हैं तो दूसरी ओर अछूतोद्धार, हरिजनोद्धार एवं अन्य धर्मावलंवी संप्रदायों के कार्य-कलाप और उनके द्वारा आविर्भूति समस्याओं का चित्रण भी किया है। सामा-जिक संक्रमण के इस युग में रूढ़िवादिता और रूढ़ि विरोध का द्वन्द्व विद्यमान था जो शनैः शनैः उपन्यासों में स्थान ग्रहण करता गया। उपन्यासों में द्वन्द्व का प्रारंभ यहीं से समझना चाहिए।

६. १. १४ उपन्यासों की लोकप्रियता देखकर कुछ धर्मप्राण लेखकों ने इसे प्रचार एवं उपदेश का उचित माध्यम समझ कर अपनाया। इनमें किशोरीलाल गोस्वामी तथा लज्जाराम मेहता का नाम उल्लेख योग्य है। सनातन धर्म की रूढ़ियों के प्रति इनमें बड़ा प्रबल मोह था। इनके उपन्यासों में पर्दा प्रथा उठाने का तथा विधवा विवाह के विरोध से साथ सती प्रथा के दैवी गुणों का बखान दिखाई देता है। यहाँ तक कि वेश्या जीवन को घृणित मानते हुए भी उसे समाज के लिए अनिवार्य और उपयोगी बताते हैं। गोस्वामी जी ने बहुविवाह प्रथा तक का समर्थन किया है। नारी शिक्षा के प्रेम में चिट्ठी तथा रामायण पढ़ने से अधिक इन लेखकों को कोई और जरूरत नहीं जान पड़ती। अस्पृश्यता निवा-रण के प्रश्न पर अधिक से अधिक इन्होंने द्विजेतरों के प्रति मौखिक सहानुभूति भर दी है। इन्हें समानाधिकार देने की कोई चेष्टा नहीं है। राजनैतिक क्षेत्र में इन्होंने राजभक्ति के दायरे के अन्दर रहने की प्रवृत्ति दिखाई है। अंग्रेजों ने नौकरशाही के रूप में जिस जटिल राजतन्त्र की रचना की थी उसका तिलिस्म

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन लेखकों की समझ में नहीं आया था। वे यही समझ बैठे थे कि अंग्रेज तो अच्छा है, प्रजापालक, उदार तथा न्यायप्रिय है। बुराई केवल हमारे भाई बन्दों में है जो सरकारी कर्मचारी हैं। वे लोग महान् न्याय प्रेमी सरकार की आँखों में धूल झोंक कर भ्रष्टाचार करते हैं। इन उपन्यासों में एक ही बात महत्व की दृष्टिगोचर होती है, वह है आत्मनिष्ठता की जो आगे चलकर कुछ उपन्यासों का मार्गदर्शक बन सकी।

६.१.१५ एक तरफ जब इस प्रकार कुछ उपन्यासकारों द्वारा अपने विचारों का प्रतिपादन हो रहा था उसी समय दूसरी तरफ कुछ उपन्यासकार अपनी रचनाओं में समाज सुधार की माँग कर रहे थे। इन लोगों ने अनुभव किया कि यद्यपि समाज की अधिकांश प्रथाएँ मानव और समाज के हित के लिए बनाई गई थीं, तो भी परिस्थितियों के बदल जाने से कई प्रथाओं के सुधार की आवश्यकता है। इसलिए उस युग के उपन्यासों में जहाँ एक ओर समाज सम्मत आचरण करने वालों के आदर्श जीवन का चित्रण मिलता है, वहाँ दूसरी ओर विकृत संस्कारों और कुप्रथाओं के कारण होने वाले अनर्थों का वर्णन करके सुधारों की माँग भी बड़े जोर से व्यक्त की गई है।

६.१.१६ इस युग में एक और प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हुई। दूर अतीत में ले जाने के लिए ऐतिहासिक रोमांस लिखे गये। इन उपन्यासों से कोई नवीन ऐतिहासिक खोज प्रकाश में आई हो वह बात नहीं। पर आगे आनेवाले ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रेरणा स्रोत अवश्य ये उपन्यास बन गये। इन उपन्यासों का लक्ष्य प्राचीन युग के प्रति औत्सुक्य का भाव उत्पन्न करना मात्र था। इनमें उपन्यासकार ऐतिहासिक पात्रों के देश काल और परिस्थिति चित्रण के अतिरिक्त इनके व्यक्तित्व-चित्रण की ओर विशेष रूप से प्रवृत्त रहा। इन ऐतिहासिक उपन्यासों में उल्लेख योग्य हैं, 'झाँसी की रानी'[1], 'पति हत्या में पातिव्रत'[2], 'उदयबाल चरित'[3]। उदय सिंह और पन्ना के कथानक को लेकर कई लघु उपन्यास लिखे गये।

६.१.१७ 'झाँसी की रानी' में प्रारम्भ में विस्तृत ऐतिहासिक विवरण है।

१—'मित्र', अप्रैल सन् १९०६, पृ० १३।

२—ठकुरानी शिवमोहिनी : 'इन्दु', सन् १९१५ ई०, पृ० १२५।

३—रूपनारायण पाण्डेय—'इंदु', सन् १९१३ ई०, पृ० ३७५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिवृत्तात्मकता के कारण यह कोरा इतिहास सा प्रतीत होता है पर व्यक्तित्व चित्रण की ओर लेखक विशेष रूप से सजग है। बाल सुलभ भोलेपन के साथ चरित्रगत दृढ़ता की अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियों में देखिए—

'विवाह में वधू वर का गँठजोड़ा होना सब में प्रचलित है। सो मनुबाई ने गँठ-जोड़े के समय कहा कि 'जरा मजबूत गिरह देना।' यह सुनकर लोग चकित हुए और जिन लोगों ने इस गूढ़ बात का मतलब समझा वे स्तब्ध हो बैठे।'[1]

उपर्युक्त लघु उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आगे चलकर सन् १९४६ में यह भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध ऐतहासिक उपन्यास 'झाँसी की रानी' का प्रेरणा स्रोत बना। सम्भवतः इसी को आधार भूमि बनाकर उन्होंने उस वृहत् उपन्यास की रचना की।

'पति हत्या में पातिव्रत' एक लघु उपन्यास है। लेखिका में अतीत के वातावरण को सजीव कर देने की कल्पना शक्ति का अभाव है। पर क्षत्राणियों के स्वाभिमान को लेकर रानी सारन्धा का चरित्र बड़ा सशक्त हुआ है। 'उदय बाल चरित' भी एक लघु उपन्यास है। इस उपन्यास के चरित्र भी सशक्त बन पड़े हैं। इसके पात्रों में सजीवता है। इसका प्रधान विषय है 'पन्ना दाई' की स्वामिभक्ति। पन्ना दाई और उदय को लेकर कथा निर्मित की गई। उपन्यास के सभी पात्रों की व्यक्तिगत विशेषताएँ हैं। चित्तौड़ की राजनैतिक परिस्थिति की एक मार्मिक झलक देने में भी लेखक सफल है।

६.१.१८ आलोच्यकाल में अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों की भी रचना हुई, जो भाव, भाषा एवं कथानक की दृष्टि से सुन्दर एवं महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। इस काल की पत्रिकाओं में आए हुए ऐतिहासिक उपन्यासों में बैनलाल रचित 'कलावती' नामक उपन्यास भी उल्लेख योग्य है।

इस उपन्यास का कथानक अफगानिस्तान के सुल्तान द्वारा गुर्जर प्रान्त पर किये जाने वाले आक्रमण की घटना से सम्बन्धित है। अफगानिस्तान का सेनापति जमाल गुर्जर-प्रदेश की प्राकृतिक सुन्दरता एवं गुर्जर-रमणी की विश्वासपूर्ण क्षोभयुक्त वाणी से प्रभावित होकर अपने सेनापति—पद का परित्याग कर देता है। गुर्जर—प्रान्त के प्रसिद्ध मन्दिर सोमनाथ की अपार धनराशि ही जमाल तथा उसके साथियों को वेष बदल कर गुर्जर भूमि की ओर जाने की

१—'मित्र', अप्रैल सन् १९०६ ई०, पृ० १३।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेरणा देनी है। गुप्त रूप में उस पवित्र भूमि की जानकारी प्राप्त करने वाले इन विदेशी निवासियों की एक गुर्जर–वाला से कहा–सुनी हो जाती है। गुर्जर–रमणी और विदेशियों की कहासुनी ही दो विरोधी मतावलम्बियों के प्राण लेने देने की नौवत ला खड़ी करती है। अवसर की खोज में रहने वाले विदेशियों द्वारा खींची गई तलवार गुर्जर–रमणी द्वारा पकड़ ली जाती है। परिणामस्वरूप गुर्जर की पवित्र भूमि रक्तपात से बच जाती है। जमाल, गुर्जर–रमणी के इस आदर्श एवं वीरता से प्रभावित हो उठता है। क्रोधित जमाल के प्रश्नों के उत्तर में दिए गये गुर्जर–रमणी के निम्न प्रभावशाली शब्द जमाल के हृदय को पूर्णरूपेण परिवर्तित कर देते हैं—

'...गुर्जर की यह पवित्र भूमि किसी विदेशी के रक्त से रंजित न हो यही हमारी इच्छा थी, और इसीलिए हमने तुम्हारे हाथ से तलवार ले ली[1]।'

गुर्जर को पदाक्रान्त करने की लालसा रखनेवाला जमाल इस घटना के बाद सुल्तान को तलवार लौटा कर अपनी स्वाधीनता की घोषणा करता है—

'जमाल-रुस्तम-स्वाधीन अफगानिस्तान मेरी जन्मभूमि है और मैं एक स्वाधीन नराधिप के क्रोड में आजन्म परिपालित हुआ हूँ। वह स्वाधीनता मैं नहीं छोड़ सकता। सुल्तान को मैंने अपना देह बेच दिया, अपने विवेक को नहीं बेचा। इस देह पर सुल्तान का पूरा अधिकार है, पर मेरा विवेक स्वाधीन है[2]...'।

जमाल का गर्वोन्मत्त मस्तक गुर्जर वाला की सत्यता, नम्रता एवं उदारता के समक्ष आदर से नत हो जाता है। अफगानिस्तान के बादशाह शाह जमाल के पास जमाल की वगावत के साथ ही गुर्जर रानी कमला की सुन्दरता की बात भी पहुँचती है और वह क्रोध से पागल हो उठता है। शाह जमाल पुनः दूसरी वार पूरी तैयारी के साथ गुर्जर प्रान्त पर आक्रमण करता है। इस चढ़ाई में जमाल का एकमात्र ध्येय था—कमला को प्राप्त कर गुर्जर प्रान्त को श्मशान वना डालना। देखिए उसके ही शब्दों में—

'अबकी बार हम गुर्जर का एकदम ध्वंस कर डालेंगे। उसे एकवार ही श्मशान बना देंगे। जिस प्रदेश को, तुम देख लेना, प्रेतभूमि वनाकर छोड़ेंगे[3]।'

१—माधुरी, सन् १९१३ ई०, पृ० ४८४।
२— वही।
३— माधुरी, सन् १९१३ ई०, पृ० ६१९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलस्वरूप गुर्जर का शांत वातावरण युद्धवाद्य की गम्भीर ध्वनि से गूँज उठता है। नित्यप्रति युद्ध की वढती भयंकरता गुर्जर के भावी पतन की सूचना दे रही थी। गुर्जर की रक्षा के निमित्त युद्धभूमि में जाते हुए गुर्जर कुमार, गुर्जर-लक्ष्मी कमला को अपनी मृत्यु की सूचना पाते ही विषपान की राय देते हैं, परन्तु कमला का सौभाग्य कहा जाय अथवा मुसलमानों का दुर्भाग्य कि दूसरी बार भी गुर्जर विदेशियों द्वारा पदाक्रान्त होने से वचा लिया गया। शाह जमाल हारकर पुनः चढ़ाई करने की आशा लिए निराश हृदय अपने देश को लौट जाता है। उपन्यास के अंत में कुमार एवं कमला का विवाह हो जाता है।

सम्पूर्ण कथानक वड़े ही आकर्षक ढंग से लिखा गया है। घटनाओं की सुसम्वद्धता एवं उनका चुनाव, कथानक की सुन्दरता के सर्वथा अनुकूल है।

६.१.१९ चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उपन्यास के प्रमुख पात्रों में जमाल, शाह जमाल एवं कुमार सिंह का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जमाल एक सच्चा वीर, देशभक्त युवक है जिसकी आत्मा वास्तविक स्वतंत्रता के महत्व से अच्छी तरह अभिज्ञ है। वह एक सच्चा वी रहै जो स्त्री-मर्यादा की रक्षा, देशकाल और जाति-वंधन से परे रहकर भली भाँति करना चाहता है। शाह जमाल एक कट्टर मुसलमान है जिसकी दृष्टि में अन्य धर्मों के प्रति उदारता उचित नहीं। कुमार सिंह एक वीर क्षत्रिय युवक है जिसमें वीर हृदय के समस्त गुण विद्यमान हैं। स्त्री-पात्रों में कमला एक सच्ची देशभक्त गुर्जरवाला के रूप में हमारे समक्ष आती है। देशभक्ति के साथ ही उसमें वीरता की मात्रा भी कम नहीं। निम्नांकित पंक्तियों में उसके हृदय की महान भावधारा द्रष्टव्य है --

'कुमार ! तुम इसका भय मत करो। मैं राजपूत कन्या हूँ, मैं अपना धर्म भली भाँति जानती हूँ। समय आने पर हम लोगों के लिए चिताग्नि चंदन लेप के समान शीतल हो जाती है[1]'।

६. १. २० प्रस्तुत पुस्तक द्वारा अफगानिस्तान के सुलतान शाह जमाल द्वारा भारत तथा गुर्जर प्रदेश पर किए गए आक्रमणों का पता चलता है। मुसलमानी शासकों के अत्याचार, लूटखसोट और निर्दयता का परिचय भी हमें आक्रमणकारियों के चरित्र द्वारा मिलता है। इसके अतिरिक्त गुर्जर निवासियों की अतिथि सेवा, निश्चलता एवं उच्च आदर्शवादिता का उल्लेख भी

१– 'माधुरी' सन्, १९१३ ई०, पृ० ५६९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है। अफगानों की कट्टरता, धार्मिक असहिष्णुता, क्रूरता एवं विलासिता का परिचय शाह जमाल तथा उसके सैनिकों के चरित्र वर्णन में मिलता है। देश-काल की दृष्टि से इसे हम सफल रचना कह सकते हैं।

'कमलावती' उपन्यास की रचना का प्रमुख उद्देश्य है--कमला की देश-भक्ति के साथ ही भारतीय नारी के आदर्श को स्पष्ट करना। इसके अतिरिक्त भारतीय आदर्श की श्रेष्ठता दिखलाकर विदेशी सत्ता की हीनता का प्रदर्शन भी लेखक का उद्देश्य है।

६. १. २१ हम देखते हैं कि सन् १९१८ ई० में प्रेमचन्द के 'सेवासदन' के आविर्भाव के पूर्व ही उन कथाओं की आधार भूमि बन गई थी, जिनपर प्रेमचन्दयुगीन उपन्यास साहित्य का प्रतिष्ठापन होना था। बहुधा ऐसा कहा जाता है कि परवर्ती उपन्यास ने स्वयं अपने रूप निर्धारण का कार्य किया एवं उसके पूर्ववर्ती कथा-साहित्य ने अपनी देन के रूप में भावी उपन्यास के लिए कोई भी धरोहर नहीं छोड़ी अथवा मार्ग निदर्शन नहीं किया। यह भी कहा जाता है कि प्रेमचन्दयुगीन उपन्यास साहित्य में उसके पूर्वकालीन उपन्यासों का कोई योग नहीं था। वस्तुतः यह एक भ्रामक स्थापना है और थोड़ा ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। प्रेमचंद युग के प्रारंभिक वर्षों में प्रायः उन्हीं समस्याओं और विषयों को लेकर उपन्यासों की रचना की गई, जो पूर्व-काल में ही निश्चित हो चुके थे। यही कारण है कि विषय की मौलिकता की दृष्टि से इस युग के कथा-साहित्य को कोई श्रेय नहीं दिया जा सकता।

६. १. २२ आलोच्य युग के उपन्यासों में इस बात का आभास मिलने लगा था कि आगे हिन्दी उपन्यास किन दिशाओं को ग्रहण करेगा। यह काम निराधार प्रतीत होता है कि सारे उपन्यास लक्ष्यहीन हैं, इनका कोई निश्चित उद्देश्य नहीं है। इस युग में उपन्यास का साहित्यिक दृष्टि से कोई महत्व न तो पाठक वर्ग ही भली भाँति समझता था और न लेखक वर्ग। इसे केवल मनोरंजन का एक साधन माना जाता था। इसलिए मनोरंजन ही इसका उद्देश्य था। निष्कर्ष रूप में इन उपन्यासों के कथानक के आधार पर कोई उपेक्षात्मक तथ्य निकालने का प्रयत्न किया जाता था और कुछ के पीछे समाज में प्रचलित कुरीतियों के विरोध की भावना भी थी। लेकिन ये गौण उद्देश्य थे। प्राथमिक महत्व जिस उदेश्य को दिया जाता था, वह मनोरंजन ही था। जो लोग इस पृष्ठभूमि की उपेक्षा करके भी कलात्मकता और प्रौढ़ता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बात करते हैं, उन्हें यह समझना चाहिए कि किसी एक युग के कथा-साहित्य को सभी पैमानों पर नहीं कसकर परखा जा सकता।

६. १. २३ इस काल के उपन्यासों के विषय में सामान्य धारणा यह है कि इसमें केवल कथायोजना ही है, पात्र अथवा चरित्र-योजना नहीं। जिस उपन्यास में भी पात्रों की योजना की जाएगी उसमें उनका चरित्रांकन भी होगा। चरित्र-चित्रण उपन्यास का उतना ही अनिवार्य तत्व है जितना कि कथानक। इस काल में चरित्रचित्रण विस्तार से न कर, कोई मनोवैज्ञानिक पद्धति न उठाकर भी लेखकों ने मात्र नाम के ही द्वारा अपने पात्रों की संपूर्ण चरित्रगत विशेषताओं का उद्घाटन कर दिया। यथा चन्द्रकान्ता, भूतनाथ, क्रूरसिंह आदि। कहीं-कहीं वार्तालाप के मध्य भी चरित्रगत विशेषताएँ उभारने का प्रयास किया गया है। क्षत्रियबाला कमलावती की चरित्रगत दृढ़ता, धर्म रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना निम्न वार्तालाप में दृष्टिगत होती है—

'कुमार! तुम इसका भय मत करो। मैं राजपूत कन्या हूँ। मैं अपना धर्म भली भाँति जानती हूँ। समय आने पर हमलोगों के लिए चिताग्नि चंदन प्रलेप के समान शीतल हो जाती है[1]।'

अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णु कट्टर मुसलमान शाह जमाल की चरित्रगत क्रूरता, नृशंसता वार्तालाप की इन पंक्तियों में देखिए—

'हाँ रुस्तम! अबकी बार हम गुर्जर का एकदम ध्वंस कर डालेंगे। उसे एक बार ही श्मशान बना देंगे। जिस प्रदेश की प्राकृतिक शोभा ने कभी हमें मुग्ध कर दिया था, हम उसी प्रदेश को, तुम देख लेना, प्रेतभूमि बनाकर छोड़ेंगे।'[2]

६. १. २४ इस काल के प्रारंभ में पात्रों के शील-स्वभाव की सूचना अधिकतर लेखक के द्वारा ही दी जाती थी, पर शनैः शनैः इसका विकास हुआ और यत्र-तत्र मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होने लगी जो आगे चलकर पूर्ण विकसित हुई। समाज द्वारा दंडित मनोरमा वृद्धपति की हृदयहीनता एवं क्रूरता से घबड़ाकर उसका त्याग कर प्रोफेसर रामेश्वर के साथ भाग जाने का निश्चय कर लेती है परंतु उसका हृदय अपने इस निश्चय पर तर्क-वितर्क करता है—

१—'माधुरी', सन् १९१३ ई०, पृ० ५६९।
२—'माधुरी', सन् १९१३ ई०, पृ० ४८४।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'—देवताओं का व्यभिचार उन्हें देवत्व से परिभ्रष्ट नहीं कर सकता, वैभवशालिनी ललनाओं का व्यभिचार उन्हें समाजच्युत नहीं कर सकता, तब क्या मेरे लिए ही, दरिद्रा मनोरमा के लिए ही विधि निषेध है। न–न इस लोक परलोक के ढकोसले को नहीं मानूँगी। पातिव्रत्य और अत्याचार इन वंधनों में वँध कर नहीं रहूँगी[1]।'

६. १. २५ कुछ लेखकों ने उपन्यास में नाटकीय ढंग से संभाषण एवं स्वतंत्र चिंतन का समावेश किया है, जिसे उपन्यास-कला की प्रगति में एक विशेष चरण समझना चाहिए, इन संभाषणों में कहीं-कहीं पर्याप्त सजीवता भी है। कुसुम और नरेंद्र नदी में डूबने से वचाकर वनारस के मजिस्ट्रेट के सामने लाए जाते हैं। अधकचरी हिंदी वोली जाननेवाले अंग्रेज मजिस्ट्रेट के संभाषण को वड़ी सजीवता से निम्न पंक्तियों में व्यक्त किया गया है—

'मजिस्ट्रेट—वेल टुमार नाम ?

टुम वड़ा गफलट किया जो डूवटे मुसाफिर का वखूवी खवर नेईं लिया। टुम अगर फिर ऐसा गफलट किया तो काम से मुअट्टल होगा।'

६. १. २६ इस युग का प्रथम चरण कथा प्रधान था, पर शनैः शनैः शैली में भी परिपक्वता आई और लेखक वर्णनात्मकता तथा गद्य पद्य मिश्रित प्रयोग से चित्रात्मकता तथा मनोविश्लेषणात्मकता की ओर उन्मुख होता है। इस युग की प्रारंभिक रचनाओं में कथा कहने की प्रवृत्ति के कारण लेखक स्वयं अपने श्रोताओं को कहानी सुनाता हुआ तथा यथास्थान उनको संवोधित भी करता चलता है। यथा—

'प्यारे पाठक ! इधर का तो यह हाल था, अव उधर का सुनिए कि जोहरा के जाने के वाद घंटे भर तक वेगम चुपचाप वैठी हुई तालाव की ओर और कभी कभी अपनी सहेलियों की ओर निहारती रही।'[2]

६. १. २७ कथा-क्रम में लेखक पांडित्य प्रदर्शन का अवसर भी हाथ से जाने नहीं देता था और प्रायः सभी विषय को लेकर टीका-टिप्पणी करने लगता था। कहीं-कही तो लेखक स्वयं दर्शक वनकर अपनी भावनाओं का वर्णन करने लगता था। यथा—

---

१. 'मनोरमा', पृ० ६८।

२. किशोरीलाल गोस्वामी—रजिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हाय-हाय ! यह नारकीय पिशाच क्या किया चाहता है ? क्या यह नर-राक्षस इस घर को श्मशान बनावेगा । असह्य असह्य !!'[१]

कथा प्रसंगों के वर्णन में प्रायः अनुपात का अभाव लक्षित होता है। किसी महत्वहीन प्रसंग का अनावश्यक विस्तार हो गया है और किसी महत्वपूर्ण एवं मार्मिक प्रसंग की नितांत उपेक्षा हो गई है। पात्रों के संभाषण में कहीं कहीं गद्य-पद्यात्मक मिश्रित प्रयोग हुए । यथा—

'दोनों बरसात की बहार निहार रही थीं किंतु चपला ऊपर के मन से और चमेली मन के चाव से । देखते देखते चमेली ने चपला का हाथ थाम कर हँसते हँसते कहा—

देख चपला बादल की गर्जन सुनिय तर्जन मोरन की ।
चपला ने चिहुँक कर कहा—तो इसमें संदेह क्या ?
तर्जन घन चपला, चमकि विरहिन दे हक ।
चमेली—और भी करे पपीहा बावरो पिया पिया की टेर
चपला—तब कैसे निवहै ए सखी—
चपला—प्यारी, वे, मन कहा बसाय ।'[२]

६. १. २८ शनैः शनैः इस प्रकार की शैली में सुधार हुआ और लेखक चित्रात्मकता तथा मनोविश्लेषण की ओर बढ़ा जो विकास का चिह्न था तथा जिससे प्रेरणा लेकर भावी पीढ़ी ने सफलतापूर्वक अपना विकास किया । चित्रात्मक शैली उपन्यास की सफलता की प्रतीक है । इस शैली के माध्यम द्वारा लेखक का वर्णित विषय पाठक की आँखों के समक्ष साकार रूप धारण कर लेता है । 'अब्दुल्ला का खून' में गुप्त जी ने इसी शैली का सहारा लेकर प्रातःकालीन शीतल वायु का सजीव चित्र प्रस्तुत किया—

'सुबह का सुहावना समय था । ठंडी ठंडी हवा पहाड़ों से टक्कर खाती जंगली वृक्षों के पत्रों को हिलाती, गिरे हुए सूखे पत्तों को उड़ाती, चित्त में प्रसन्नता लाती हर हर शब्द के साथ चल रही थी ।'[३]

---

१. तरुण तपस्विनी, पृ० २० ।

२. मदन मोहिनी ।

३. अब्दुल्ला का खून ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६. १. २९ निम्न पंक्तियों में रानी सारन्धा की कष्टसाध्य यात्रा का सजीव चित्रण देखिए—

'दोपहर का समय था। सूर्य मध्य आकाश में आकर आग की वर्षा कर रहे थे। देह झुलसानेवाला लू मैदान व जंगल में आग लगाती फिरती मानो अग्निदेव की सारी सेना गरजती हुई चली आती है। पृथ्वी से आकाश तक जलती हुई धूल का मेघ छाया हुआ था, रानी सारंधा घोड़े पर सवार चंपतराव को लिए पश्चिम की ओर चली आ रही थी। ओरछा दस कोस पीछे छूट गया था और यह विचार कि अब हम भय के परिधि से बाहर निकल आयें—दृढ़ता पकड़ता जाता था। राजा पालकी में बेसुध पड़े हुए थे और कहार पसीने से नहा उठे थे। पालकी के पीछे पाँच सवार घोड़ा बढ़ाये चले आते थे। प्यास के मारे सारे टोली का बुरा हाल था। कलेजा मुख को आ रहा था। सायेदार पेड़ और कूंवे की खोज में आँखें दौड़ रही थीं।'[1]

विकास की मंजिल तय करती शैली क्रमश सूक्ष्म मनोभावों का विश्लेषण भी करने लगी। निम्न पंक्तियों में रानी सारंधा के हृदय में उठनेवाले द्वंद्वों का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण हुआ है—

'रानी सारंधा ध्यान में डूबी। शाही सेनापति से यह प्रण किस प्रकार कराएँ कौन संदेश लेकर जाएगा। और वह अन्यायी ऐसी प्रतिज्ञा करने ही क्यों लगे। उन्हें तो पूर्ण विश्वास है कि दो चार दिन में हमें विजय प्राप्त हो जायगी। वह हमारी ओर से आधीनता का संदेशा क्यों मागेंगे। जब उनको मालूम हो जायगा कि हमें धोखा दिया गया है तब तो इन बेचारों के सिर पर आफत आ जायगी। मेरे यहाँ, ऐसा वाणीभूषण, मामिला समझनेवाला ऐसा कौन है जो इस कठिन समस्या को सुलझा सके[2]।'

६. १. ३० भाषा की दृष्टि से इस युग के उपन्यासों में पर्याप्य विविधता मिलती है। विविध प्रवृत्तियों के अंतर्गत आने वाले उपन्यासों, विविध

१. श्रीमती ठकुरानी शिव मोहिनी—'पतिहत्या में पातिव्रत', 'इंदु', जुलाई-अगस्त, सन् १९१५, पृ० १३४।
२. श्रीमती ठकुरानी शिवमोहिनी—'पतिहत्या में पातिव्रत', 'इंदु' जुलाई—अगस्त, सन् १९१५, पृ० १३३।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाओं के अनुवादों तथा विविध विषय के उपन्यासों में अलग-अलग प्रकार की भाषा का व्यवहार हुआ है। यों इस युग में भाषा का स्वरूप निर्धारण हो रहा था। अतः उसमें अधिक गुणों के मिलने की आशा नहीं करनी चाहिए, परंतु भाषा के विकास की प्रारंभिक अवस्था की दृष्टि से वह सफल ही कही जानी चाहिए। संक्षेप में, इस युग के उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा के तीन रूप मिलते हैं—संस्कृत गर्भित, व्यावहारिक तथा उर्दू प्रधान।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तम अध्याय

नाटक की पठनीयता में पत्रपत्रिकाओं का सर्जन

७.१.१ भारतेंदु युग की विस्तृत और सुस्पष्ट नाट्य रचना की पृष्ठभूमि पर आलोच्य-काल के नाटकों की रचना हुई। इस काल के अधिकांश नाटककार विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से संबद्ध थे। अतः लगभग सभी विवध-विषय-समन्वित पत्रिकाओं में नाटक निकले। इन नाटकों का अध्ययन करने पर एक बात जो सबसे महत्वपूर्ण दिखाई दी वह यह कि पारसी रंगमंच के लिए नाटक लिखने वालों में अचानक एक ऐसे वर्ग का उदय हुआ, जो मनोरंजन के साथ सामाजिक उद्देश्य को भी मान्यता देता था। भारतेंदु युग के बहुसंख्यक नाटकों, विशेषकर प्रहसनों में प्रदर्शन की व्यावहारिकता की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। कोई-कोई प्रहसन तो तीन-चार पृष्ठ का ही होता था और उसमें पात्रों की भरमार होती थी, पर इस काल के नाटककारों ने रंगमंच की ओर भी ध्यान देने का प्रयास किया।

७.१.२ आधुनिक काल में नाटक गद्य-साहित्य की एक विधा के रूप में आया। अतः अब नाटकों के लिए यह आवश्यक नहीं रह गया कि उसका रसास्वादन प्रेक्षागृह में बैठकर ही किया जाय। आज के अधिकांश नाटक पुस्तक के रूप में पढ़े जाते हैं, और पाठक स्वयं रंगमंच की कल्पना करके उनसे रस ग्रहण करता है। वस्तुतः पुस्तक रूप में पढ़ी जानेवाली नाट्य-कृति और रंगमंच परस्पर संबद्ध होते हुए भी अलग-अलग विवेचन की वस्तु हैं। मात्र अभिनेयता की कसौटी पर कसने से इन दोनों की ऐतिहासिक देन को आँकने में बहुत बाधा पड़ सकती है। आज के तकनीकी विकास ने यह सिद्ध कर दिया है कि कोई भी नाट्य कृति अभिनेय हो सकती है। यही नहीं, शायद कुशल संपादन और निर्देशन के बल पर नाटकीय गुणों से भरपूर कहानियाँ और उपन्यास नाटकों से अधिक अच्छी तरह मंच पर उतारे जा सकते हैं, जबकि अक्सर ऐसे नाटक देखने में आते हैं, जिन्हें पात्रों के नाम छोड़कर लगातार पढ़ा जाय तो ये सीधे-सादे गद्य खंड प्रतीत होते हैं।

७.१.३ कहने का तत्पर्य यह है कि इस युग में नाटक अपने नये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में विकसित हुआ। पुरानी कठोर नियंत्रण की संस्कृत पद्धति छूटने लगी और नये ढंग के नाटक लिखे जाने लगे। नई समस्याएँ, विचारधारा एवं गद्य की शिष्ट भाषा का प्रयोग प्रारंभ हुआ। शालाओं में अभिनय योग्य नाटक, एकांकी, संवादों, प्रहसनों और दृश्यों का विशेष रूप से निर्माण हुआ। विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा सामाजिक उत्सवों पर जनसमुदाय के मनोविनोद के लिये नाटकों का अभिनय आवश्यक समझा जाने लगा। इस काल के कुछ लेखकों ने विद्यार्थियों के आत्मविकास में नाटक को आवश्यक समझा। यथा––

'मेरी समझ में नाटकाभिनय इतना आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यार्थी को यह जानना चाहिए। नाटक खेलने से हावभाव प्रकट करने की योग्यता होती है, वृहत् जनसमुदाय के समक्ष अपने विचार स्वतंत्रता से प्रकट करने का साहस होता है, तथा यदि नाटक अच्छे लेखकों के द्वारा लिखे गए हों तो अभिनेताओं को अच्छे भाव सीखने का अवसर प्राप्त होता है।'[1]

१. १. ४ आलोच्य काल में नाटकों का अभाव न था। जो नाटक लिखे गए उनसे उनके विकास की मंजिल पर आगे बढ़ने की संभावनाएँ दिखने लगती हैं। गद्य की अन्य दूसरी विधाओं की भाँति नाटक के क्षेत्र में भी विकास की ओर अग्रसर होने की भावना व्याप्त थी। भारतेन्दु युग से नाटक के क्षेत्र में प्रसाद के आविर्भाव तक नाटक सतत विकास के पथ पर अग्रसर ही दिखाई देता है। नाटक के इस विकास में आलोच्य काल की पत्र-पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। अन्य विधाओं के समान ही नाटक भी पृथक् रूप से व्यावसायिकता की कसौटी का सामना करने की अपेक्षा विविध-विषय-समन्वित पत्रिकाओं के माध्यम से शिक्षित समाज में आसानी से पहुँच गया। पुस्तक के रूप में मुक्त स्पर्धा की दशाएँ थीं, जबकि पत्रिकाएँ अपनी समग्र सामग्री के आधार पर शिक्षित समाज में आदर के साथ पढ़ी जाती थीं। इन पत्रिकाओं के माध्यम से नाटक को विकास का अवसर मिला, उसका रूप परिमार्जित होने लगा। पुस्तक रूप में अधिकांश नाटक परिचित कथानकों और पिछले हास्य एवं अश्लील गीतों के साथ जनता का मनोरंजन करके व्यावसायिक लाभ अर्जित कर रहे थे। इस वातावरण में साहित्य की सृजन–

१–श्री नर्मदा प्रसाद मिश्र : 'सरल नाटक माला', सन् १९१७, पृ० ६।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिभा ने नाटक-रचना के क्षेत्र में जो माध्यम चुना वह था पत्र-पत्रिकाओं का। 'इन्दु', 'मर्यादा', 'सरस्वती', 'प्रभा' आदि लगभग सभी प्रमुख पत्रिकाओं ने इसमें सहयोग दिया। फलतः इन पत्रिकाओं के पृष्ठों पर नाटकों की बदलती हुई प्रवृत्ति तथा विकास के चिह्न बिखरे पड़े हैं।

७. १. ५ इसी युग में पारसी रंगमंच के नाटककारों में आगा हश्र काश्मीरी, नारायण प्रसाद बेताब, राधेश्याम कथावाचक, कृष्णचंद जेवा, हरिकृष्ण जौहर एवं तुलसीदास शैदा हुए, जिन्होंने पारसी रंगमंच के मनोरंजनात्मक उद्देश्य को पूर्ण करते हुए सामाजिक जागरूकता का परिचय दिया। इनके नाटकों के पात्र अब मात्र रीतिकालीन नायक नायिका नहीं रह गए। उनमें श्रवणकुमार, भगीरथ, भीष्म, सीता, प्रह्लाद, सूरदास आदि का समावेश हुआ। इन्होंने ऐसे कथानकों पर कौतुकपूर्ण नाटकों की रचना की जिनसे उस काल की अधिकांश जनता परिचित थी। ये कथानक अधिकांशतः पुराणों से लिए गए हैं। इन कथानकों का चुनाव जनता में सत्प्रवृत्तियों को जगाने के विचार से ही किया गया है, जैसा कि कतिपय शीर्षकों से ही स्पष्ट है, यथा 'श्रवणकुमार', 'गंगावतरण', 'भीष्म प्रतिज्ञा', 'सीता बनवास', भक्त प्रह्लाद' और 'सूरदास' आदि। यह बात और है कि इन कथानकों के निर्वाह में ये नाटककार अपनी दर्शक-मंडली की रुचियों से बहुत बँधे हुए थे। फिर भी अपनी सीमाओं के घेरे में रहते हुए भी इन्होंने जनता को शिक्षा देने और उस तक सुधार के स्वरों को पहुँचाने का प्रयास किया।

७.१.६ इन नाटककारों ने अपनी सामाजिक जागरूकता का परिचय एक अत्यन्त मौलिक सूझ द्वारा दिया था। यह सूझ थी प्रधान कथानकों में गौण कथानकों के गुम्फन की। चूंकि प्रधान कथानक अधिकांशतः पौराणिक कथाओं से लिए जाते थे इसलिए उनमें फेरफार की संभावनाएँ सीमित थीं। इन नाटककारों ने प्रधान कथानकों के संदेश को और स्पष्ट करने के लिए उनमें समसामयिक समाज के व्यंग्य-चित्रों के कथानक गौण रूप से जोड़ दिए थे। ये हास्यपूर्ण प्रसंग, जो कि इन नाटककारों की मौलिक रचनाएँ थीं, प्रायः मूल नाटक से अधिक आकर्षक होते थे और खेल में दर्शक वृन्द की पूरी रुचि रहती थी। जो भी हो, इन कम्पनियों का व्यावसायिक दृष्टिकोण किसी प्रकार स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। इनका चरम लक्ष्य पैसा कमाना ही था। देशवासियों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सांस्कृतिक परिष्कार इनकी कल्पना के वाहर की वस्तु थी। फलस्वरूप आलोच्य काल की अनेक पत्रिकाओं में इनकी कड़ी आलोचना हुई। हिन्दी प्रदीप (सन् १९०३ ई०) में इसी प्रकार की पारसी थियेटर पर एक आलोचना निकली जिसका परोक्ष रूप से वड़ा प्रभाव पड़ा। रंगमंच की दृष्टि से इसने एक नयी विचारधारा को जन्म दिया। लोगों ने पारसी थियेटर के विरोध में नई नाटक मंडलियाँ स्थापित करने का विचार करना प्रारम्भ किया। इस समय कानपुर, प्रयाग और काशी हिन्दी के तीन प्रमुख केन्द्र थे। कानपुर में भारतेन्दुकाल में, कुछ नाटक मंडलियाँ स्थापित की गई थीं, किन्तु वे अकाल में काल कवलित हो गईं। सन् १८९८ ई० में प्रयाग में रामलीला नाटक मंडली स्थापित की गई। सन् १९०८ ई० में इस मंडली का पुनरुद्धार माधव शुक्ल ने किया। इस मंडली ने 'महाराणा प्रताप' और माधव शुक्ल का 'महाभारत' आदि नाटकों को रंगमंच पर सफलतापूर्वक खेला।

७.१.७ नाटक मंडली की स्थापना में काशी के लोगों में अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक उत्साह था। सन् १९०८ ई० में स्थानीय हिन्दू स्कूल में राधाकृष्णदास का 'राणा प्रताप' खेला गया। इस नाटक को देखने के लिए काशी के प्रसिद्ध रईस बीसू जी के पौत्र वा० कृष्णदास साह गए हुए थे। वा० कृष्णदास जी उस नाटक से इतने प्रभावित हुए कि दूसरे दिन हरिदास माणिक तथा धर्मदत्त शास्त्री को बुलाकर 'राणा प्रताप' के अभिनय के सम्बन्ध में परामर्श किया। उनका विचार था कि इसका अभिनय कहीं शहर में किया जाय। अर्थाभाव के कारण माणिक जी तथा शास्त्री जी ने इसके अभिनय में असमर्थता व्यक्त की। इस सम्बन्ध में काशी के रईसों की एक सभा बुलाई गई और एक नाट्य-मंडली की स्थापना की गई। इसका नाम रखा गया 'नागरी नाट्य प्रवर्त्तक मंडली'। इस मंडली के संस्थापक भारतेन्दु जी के परिवार के उत्साही युवक बृजचन्द जी थे। ये मण्डलियाँ देश के सुसंस्कृत समाज को साहित्यिक नाटकों का रसास्वादन कराती रहती थीं। वाद में आपसी मतभेद के कारण यह नाटक-मंडली दो मंडलियों में विभक्त हो गई—नागरी नाटक मंडली तथा भारतेन्दु नाटक मंडली। माधव शुक्ल ने कलकत्ते में 'हिन्दी नाट्य परिषद्' के नाम से एक नाटक मंडली की स्थापना की, जबकि तत्कालीन शिक्षित और सुसंस्कृत समाज की अभिनय के प्रति अरुचि थी। नाटक में अभिनय करना हीन दृष्टि से देखा जाने लगा था। समाज की इस प्रवृत्ति की ओर श्री बदरीनाथ भट्ट ने अपने एक लेख में इस प्रकार संकेत किया है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उत्तम नाटकों का साधन उत्तम नाटक-मंडलियाँ हैं, जिनमें देश के पढ़े-लिखे आदमी शरीक हों। उनके अभाव में उत्तम तथा दोष रहित नाटक नहीं लिखे जा सकते · · ·हमारा प्रान्त इस विषय में बहुत पिछड़ा हुआ है। समर्थ तथा शिक्षित सज्जनों से प्रार्थना है कि वे अब सोई हुई अभिनय-कला को फिर से जगावें और इस विषय में मरहठे, गुजराती और बंगाली भाइयों से शिक्षा लें। जबतक वे ऐसा न करेंगे तबतक हिन्दी में अच्छे और निर्दोष नाटक न बनेंगे। और बिना पढ़े लिखे भाइयों में उत्तम विचारों का प्रचार न हो सकेगा। नाटकों द्वारा आप अपने विचारों को सजीव करके दर्शकों के हृदय में मानो उसके लिए घर बना देते हैं। जातीय जागृति और एकता के लिए इस बात की बड़ी आवश्यकता है[1]।'

७. १. ८ इन नाटक मंडलियों के लिए लिखे गए नाटक रंगमंचीय नाटक थे, जो पारसी थियेटर से अभ्यस्त जनता को धीरे-धीरे नई सांस्कृतिक रुचि की ओर मोड़ रहे थे। इन नाटकों ने पारसी थियेटर के वाह्य उपकरणों को तो ग्रहण किया पर उनकी आत्मा उससे सर्वथा भिन्न थी। विषय तथा उनका प्रतिपादन दोनों दृष्टियों में इनमें पर्याप्त गम्भीरता का पुट दिखाई पड़ेगा। उर्दू की शैली और बाजारू गाने के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं था। इनका हास्य अपेक्षाकृत गंभीर और संयत है। इन नाटकों द्वारा सबसे महत्वपूर्ण कार्य जो हुआ वह है मर्यादित रुचि का निर्माण। हिंदी के भावी नाटकों के लिए इसने भूमि भी तैयार की। साथ ही इनके अथक प्रयास से हिंदी नाट्य-रचना की धारा और रंगमंचीय नाट्य-रचना की धारा एक दूसरे के निकट आई, जिनका रूप आलोच्य काल की पत्रिकाओं में भी द्रष्टव्य है। इन पत्रिकाओं में आए हुए नाटकों में अखौरी कृष्णप्रकाश सिंह का 'पन्ना[2]' नाटक विशेष उल्लेख योग्य है। इस नाटक से तत्कालीन रुचि परिष्कार के साथ नाटकों के भावी विकास की संभावनाएँ भी दृष्टिगत होती हैं।

७. १. ९ यह नाटक 'इंदु' के कई अंकों में पूर्ण हुआ। इसकी कथावस्तु ऐतिहासिक है, जो राणा संग्राम सिंह की मृत्यु के पश्चात् चित्तौड़ में राजनैतिक संघर्ष के समय की है। कथा में 'पन्ना बाई' की स्वामिभक्ति, देशभक्ति का ही प्रमुखतः निरूपण हुआ है। पन्ना दाई के त्याग और उत्सर्ग की ही यह

१—'सरस्वती', जून १९१५ ई०, पृ० ३२४

२—'इंदु', मई १९१५ ई०, पृ० ४६२।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी है। बालक उदय की प्राण रक्षा के समय पन्ना मातृत्व, स्नेह और कर्तव्य के द्वन्द्व में झूलती है पर अन्त में कर्तव्य की वेदी पर मातृत्व का बलि-दान करती है। यहाँ पन्ना के मानसिक संघर्ष का बहुत ही सुन्दर चित्रण हुआ है। यथा—

'पन्ना–(उदय की ओर देखकर) बच्चा, हृदय का टुकड़ा! जाओ! संग्राम की प्रतिकृति, जाओ। फल की चंगेरी में दीनहीन पिता के पुत्र से सोने, जाओ। मेवाड़ भाग्य के सूर्योदय! बप्पा की तथा पूर्वजों के रक्त से अभिषिक्त क्रीड़ाभूमि को सदा के लिए अंधकार में डुबोते जाओ। जाओ बेटा क्षत्रिय वंश-धर होकर भी आर्त की नाईं दूसरे का मुख जोहने जाओ। जाओ प्यारे! जगत कर्ता ईश्वर की यही आज्ञा है। मेरे लाल! मैं तेरी बलइया लूँ, मेरी आयु का भाग ले चिरायु हो। (उन्मत्त की नाईं) पन्ना, डाइन पन्ना, अपना कर्तव्य खूब जानती है। बनवीर! हिंसक! राक्षस! नीच जारजा देख एक शुद्ध क्षत्राणी का कर्तव्यपालन देखो। हे दिक्पालगण! हे सूर्य्य! हे चंद्रमा! हे संसार के भले बुरे कार्यों के साक्षी! तुम्हें अपने अजस्र परिश्रम के कारण 'कमल' की देते समय और मेरे लेते समय की बातें स्मरण हों कि न हों, पर मुझे भूला नहीं है। उसने कहा था—'पन्ना, मेरी थाती सहेजो' और मैंने सानंद उसे स्वीकार किया था। क्या कहा? थाती! अयँ, थाती! हाँ थाती! आह कठिन प्रतिज्ञा? असाधारण व्रत! पराये की थाती घर में मौजूद, मेरा अनन्त धन भण्डार भी वहीं है, लुटेरे आते हैं किसकी रक्षा करूँ? देखो कर्तव्य हृदय में खट-खट कर तार दे रहा है। क्या कहता है? कहता है थाती उठाकर भागो। ह ह ह (हँसना) अपनी सम्पत्ति छोड़ दूँ। हाँ छोड़ना पड़ेगा। कर्तव्य देव की आज्ञा है। अच्छा यही सही! ठीक है शुद्ध क्षत्राणी निर्बलता को कहाँ फटकने देती है'।[1]

ऐसी विक्षिप्त मनःस्थिति में कर्तव्य के प्रति जागरूकता, क्षत्रियगत दृढ़ता चरित्र की सशक्तता की द्योतक है। तीन अंकों के इस नाटक में लेखक ने दृश्य विभाजन के साथ वर्जित दृश्यों का भी ध्यान रखा है। चन्दन का वध, चिता का जलना सब संकेत के द्वारा व्यक्त किए गए हैं। कहीं-कहीं लेखक ने गीतों के प्रयोग किए हैं, पर पारसी रंगमंच के समान अश्लील नहीं। अपने बेटे को

१—'इन्दु', १९१५ ई०, पृ० ५६१।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्तव्य की वलिवेदी पर चढ़ाने के पश्चात् उसकी चिता की अग्नि वुझाती हुई माँ के हृदय से निःसृत इस गीत की एक-एक पंक्ति की करुणा द्रष्टव्य है—

(प्रिय) तुम विनु वन अन्ध रही हौं !
सब प्यारी सखी अंजन डारती घिसि घिसि नेक जरी हौं।
पै उनको नहिं ज्ञात अहै प्रिय ! धूल वियोग परी हो ।।
अंजन ते नहिं धूल जात प्रिय जौ लौ न फूंक परी हो।
किन्हें मिलन मुख फूंक में देरी नयन गर्द हमरी हो ।।
नैन गए पै मैं शोच करूँ नहिं लाऊँ नहीं दुख भरि हो ।
उन नयनन को काज कहाँ है जिन नयनन में न तू हो ।।
जो मोहिं तुम बिन अन्धी कहते नहीं वे भूल करी हो।
अहे ठीक पुतरी बिनु अन्धे नयनन जो उजरी हो ।।[१]

७. १. १० इस युग में पं० वदरीनाथ भट्ट ने भी भारतेन्दुकालीन समाजपरकता और पारसी नाटकों की मंचीयता दोनों ही से अपनी रचना के तत्व जुटाये। उनके पौराणिक और सामाजिक दोनों ही प्रकार के नाटकों में वर्तमान के प्रति सजगता मिलती है जिसे देखकर यह कहा जा सकता है कि भट्ट जी भारतेन्दुकालीन समाजपरकता और परवर्ती नाट्य-रचना के वीच की कड़ी हैं। तत्कालीन समाज और नाट्य-प्रचलन पर उनकी पूरी दृष्टि थी, इसलिए उनमें जहाँ एक ओर समाज सुधार के प्रति निष्ठा और कथावस्तु को लोकरुचि के अनुकूल बनाने की प्रवृत्ति मिलती है, वहीं शेरबाजी, उछलकूद, कालदोष आदि बातें भी मिलती हैं।

७. १. ११ भट्ट जी ने प्रहसन के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किया। इस क्षेत्र में इस काल की पत्रिकाओं में सबसे अधिक रचनाएँ जी० पी० श्रीवास्तव की निकलीं। रंगमंच की दृष्टि से श्रीवास्तव जी के प्रहसन पर्याप्त सफल रहे। सामयिक सामग्री के आधार पर नाटकों और एकांकियों का प्रारम्भ श्री जी० पी० श्रीवास्तव द्वारा ही हुआ। 'इंदु' में इनके कई प्रहसन निकले यथा—'मार मारकर हकीम[२]', 'दौलत घसीट[३]', 'हवाई डाक्टर[४]', 'गड़बड़झाला'[५] आदि।

१—'इन्दु,' १९१५ ई०, पृ० ५९३।
२— इंदु, जुलाई १९१३ ई०, पृ० १५।
३— वही, नवम्बर १९१३, पृ० ४८९।
४— वही, जून, १९१४ ई०, पृ० ५९४।
५— वही, जनवरी १९१३ ई०, पृ० २०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस काल के प्रहसनों में यथार्थ जीवन की अनेक विसंगतियों पर करारे व्यंग्य किए गए हैं। चरित्र–चित्रण में अतिरंजना है । नाटककार को अपने इर्द-गिर्द समाज में मिथ्याचार अथवा पाखंड दिखाई दिया उनका व्यंग्यात्मक चित्रण ही इन प्रहसनों की आधारशिला है। साधु वेश में देश में फैले हुए ठगों के ऊपर विश्वम्भर सहाय व्याकुल के 'बुद्धदेव'[१] शीर्षक प्रहसन में अच्छा व्यंग्य है। अधकचरी शिक्षा पर अम्बिकादत्त व्यास के 'पढ़े पढ़े पत्थर'[२] में करारा कटाक्ष है। इन प्रहसनों का बहुत बड़ा योगदान यह रहा कि इनसे सामाजिक नाटकों की नींव पड़ी।

७. १. १२ यथार्थ जीवन को लेकर लिखे गए नाटकों में अधिकतर नारी जीवन पर आधारित नाटक लिखे गए। इनका विषय था बाल, वृद्ध और अन-मेल विवाह, जाति बिरादरी की संकुचितता, वेश्यागमन, दहेज, धार्मिक पाखंड आदि । इन नाटकों में उमादेवी नेहरू का 'अभागी नैन[३]', रामनाथ दर का 'मोहनी की जीत',[४] 'प्रियावत्ती'[५] आदि उल्लेख योग्य हैं। नाटकों की यह यथार्थवादी धारा भारतेन्दु बाबू द्वारा ही प्रदर्शित थी, जो उत्तरोत्तर विकसित होती हुई इस युग में भी दिखाई पड़ती है । भारतेन्दु बाबू के 'भारत दुर्दशा', 'अंधेर नगरी' और 'प्रेमयोगिनी' में इस यथार्थवाद का प्रारम्भिक रूप दिखाई पड़ता है। इन नाटकों के माध्यम से पाठक उस काल की काशी की गली तथा मंदिरों का यथार्थ रूप देख सकता है। यही नहीं, समाज में फैली हुई अराजकता पर 'अंधेर नगरी' में अच्छा प्रकाश डाला गया है।

७. १. १३ इस युग में दूसरी भाषाओं के अनेक नाटक अनूदित होकर इन पत्रिकाओं में आए। इनमें बंगाली, मराठी, अंग्रेजी सभी भाषाओं के नाटक थे । इन नाटकों के अध्ययन से इस युग के नाटककारों को अपनी त्रुटियों का भान हुआ, जिससे रूढ़ियों में शिथिलता आई। पाश्चात्य नाटकों के अध्ययन से नाट्य शिल्प पर पाश्चात्य नाटकों का प्रभाव पड़ने लगा।

१– 'ललिता', अक्टूबर १९१८ ई०, पृ० २११।
२– पीयूष प्रवाह, सं० १९६८ वि० पृ० ६।
३– 'स्त्री दर्पण', जनवरी १९१७, पृ० २९ ।
४– 'स्त्री दर्पण', जनवरी १९१७, पृ० ४३।
५– 'चाँद', नवम्बर १९१५ ई०, पृ० २७ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव, भाषा, शैली सभी क्षेत्रों में परिवर्तन दृष्टिगत होने लगे। दूसरी भाषाओं के नाटकों के सम्पर्क में आने से रंगमंच के क्षेत्र में उनकी परिवर्तित गति-विधि की भी जानकारी हिन्दी नाटककारों को हुई। इस समय मराठी साहित्य में नाट्य साहित्य की उन्नति के लिए नए-नए उपाय सोचे जा रहे थे। पूना में 'भारत नाट्य समाज' की स्थापना लगभग १९०८ ई० में हुई। उसके अनेक उद्देश्यों में यह भी उद्देश्य था कि नाट्य विषयक आलोचनात्मक साहित्य की भी सृष्टि की जाय और पाश्चात्य देशों के नाट्य आदर्शों से लाभ उठाया जाय। इस नाट्य-समाज के प्रबन्ध से महाराष्ट्र में समय-समय पर नाट्य सम्मेलन हुआ करते थे तथा उनमें महत्वपूर्ण नाट्य-साहित्य से संबन्धित निबन्ध पढ़े जाते थे। सन् १९१३ ई० तक 'भारत नाट्य समाज' के सात आठ सम्मेलन हो चुके थे। सन् १९२३ ई० में इस संस्था ने एक पुस्तक प्रकाशित की जिसका नाम 'नाटकीय विषयक सुशिक्षित चर्चा' था। इसमें इन सम्मेलनों के कई सभापतियों के नाटकों पर भाषण, नाट्य-कला पर निबंध तथा अभिनय संबंधी लेखों का संग्रह किया गया था—नाटक क्या वस्तु है? उससे क्या लाभ है? उसका प्रचार भारत में कब से है? नाटक के गुणदोष क्या हैं[1]?

७. १. १४ इस युग में द्विवेदी जी भी नाट्य-कला की उन्नति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। उन्होंने स्वयं नाट्यशास्त्र पर लिखा। इसके अतिरिक्त काशीनारायण मालवीय का एक निबंध 'नाटक'[2] निकला। इन निबंधों में नाटक से संबंध रखने वाली बातें रूपक, उपरूपक, पात्र-कल्पना, भाषा, रचना-चातुर्य, वृत्तियाँ, अलंकार, लक्षण, यवनिका, पर्दे, रंगमंच, वेशभूषा, दृश्यकाव्य, काल विभाग आदि अनेक तत्वों का विवेचन किया है। जो लोग नाटक मंडलियाँ स्थापित करके अच्छे नाटकों द्वारा देश में सुरुचि का बीजा-रोपण कर रहे थे उन्हें इन निबंधों में किए गए संकेतों से विशेष लाभ पहुँचा।

७. १. १५ इस युग का सबसे बड़ा योगदान यह है कि १९०० से १९२० तक के अल्पकाल में ही एक युग की समाप्ति तथा दूसरे युग का उदय होता है। इस युग के पूर्वकाल में भारतेन्दु का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है; यहाँ तक कि 'प्रसाद' की आरम्भिक रचना 'सज्जन' भी भारतेन्दु के प्रभाव

१—'सरस्वती', १९१३ ई०, अंक ५।
२—'मर्यादा', १९१४ ई०, पृ० २६५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अछूती नहीं रही। पर शनैः शनैः यह प्रभाव दूर होता है और प्रसाद की प्रतिभा एक नये युग के सूत्रपात में संलग्न हो जाती है। पारसी कंपनियों ने जो अपयश कमा रखा था, उसका फल इन अपेक्षाकृत अच्छे नाटककारों को भी भुगतना पड़ा। साहित्यिक अध्येतागण इन नाटककारों की कृतियों में अवगुण ही अवगुण देखते थे, परंतु समय बीतने के साथ ही इस वर्ग के नाटकों में जो परिवर्तन आया था, उसकी ओर देखने से हमें इनमें बहुत कुछ सराहना योग्य भी मिल सकता है।

७. १. १६ प्रथम महायुद्ध के पूर्व ही मनोरंजन के मंच पर सिनेमा के प्रादुर्भाव ने मंच नाटकों को उनके क्षेत्र से अपदस्थ कर दिया। अतः नाटक का क्षेत्र साहित्यिक नाटकों के रूप में सीमित हो गया। पर ऐसे ही समय नाटक के क्षेत्र में 'प्रसाद' का आगमन हुआ। प्रसाद जी के नाटकों के बारे में ये बात बार-बार दुहराई गई है कि वे रंगमंच के अयोग्य हैं। यह बात एक एक अंश में सही है, क्योंकि तत्कालीन रंगमंच और दर्शक जनता के देखते हुए ये नाटक अवश्य ही रंगमंच के अयोग्य थे, परंतु इन्हें सिरे से रंगमंच मात्र के अयोग्य नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः आधुनिक रंगमंच में निर्देशक के योग ने एक मौलिक महत्व अर्जित कर लिया है। एक कुशल निर्देशक नाटक लेखक से केवल एक वस्तु की माँग करता है, वह है उसकी नाट्य-चेतना। यदि नाटककार घटनाओं के विकासक्रम को दिखाने के साथ-साथ भावनाओं के घात प्रतिघात की उचित संयोजना कर सका है, यदि उसकी चरम स्थितियाँ नाटकीय प्रभाव में सार्थक योगदान दे सकी हैं, और सबसे बढ़कर यदि नाटककार चरित्रों की सृष्टि करने में सफल हो सका है, तो शेष सब बातें कुशल निर्देशक के लिए केवल ऐसी हैं जिन्हें वह अपनी निर्देशन-कुशलता से संभाल सकता है; यहाँ तक कि भाषा भी इस दिशा में कोई बहुत बड़ा अवरोध नहीं उपस्थित कर सकती, क्योंकि भाषा में आवश्यक फेर बदल करके ही नहीं बल्कि संवादों की वास्तविक ध्वनियों को प्रेषित करके भी कुशल निर्देशक अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ हो जाता है। जहाँ तक दृश्यादि की अवतारणा की कठिनाइयों का या देशकाल के संकलन की कमियों का प्रश्न है, ये बातें आधुनिक रंगमंच के लिए बहुत जटिल नहीं रह गई हैं क्योंकि वह वास्तविकतावादी रंगमंच की मंजिल से आगे बढ़ गया है। यह तो हुई आधुनिक रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में प्रसाद के नाटकों की चर्चा। पर प्रसाद के नाटक उस युग में भी खेले गये, और सफलतापूर्वक खेले गये। भारतेन्दु नाटक मंडली ने प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सफलतापूर्वक खेला था। यह वह समय था जब स्त्री पात्रों के रूप में भी पुरुषों को ही आना पड़ता था। फिर भी यह नाटक सफलतापूर्वक खेला गया था। ध्वनियों के उतार चढ़ाव के द्वारा भाषा की कमी भी पूरी करने का सफल प्रयास हुआ था।

७. १.१७ जो भी हो, प्रसाद के नाटकों का प्रयोग अधिकांशतः पाठ्य सामग्री के ही रूप में हुआ। इस काल तक आते-आते नाटकों का प्रयोग अधिकतर पाठ्य साहित्य के रूप में ही होने लगा था, इसका पता निम्न पंक्तियों से और स्पष्ट होता है—

'नाटक देखने की चीज है, काव्य की तरह पढ़ने की नहीं। अतएव जो नाटक सफलतापूर्वक खेला जा सके, वह उतना ही अच्छा है। पर इधर हमारे यहाँ वहुत दिनों से नाटक खेलने की प्रथा उठती जा रही है। लोग नाटक को पढ़कर ही उसके असली आनन्द प्राप्त करने के आदी हो गये हैं।[१]'

प्रसाद के नाटक पाठ्य-सामग्री के लिए उपयुक्त माने गये यह भी कोई कम संतोष की बात नहीं थी, क्योंकि इसके कुछ समय पूर्व ही सन् १८७६ ई० में कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुंतल' का राजा लक्ष्मण सिंह का किया हुआ अनुवाद आई० सी० एस० के पाठ्य-क्रम में संमिलित किया गया जिस पर उन्होंने संतोष व्यक्त करते हुए लिखा—

'मुझे आशा न थी कि मेरा किया हुआ 'शकुंतला' का अनुवाद कुछ भी बड़ाई पावेगा। परंतु प्रथम बार के छाप से कई वरस पीछे जब विद्या विभाग के अधिकारी राजा शिवप्रसाद जी ने अपने गुटके (संग्रह) में रखकर उसे प्रकाशित किया तो जाना गया कि हिन्दी जाननेवालों में उसका आदर हुआ। फिर कुछ काल पीछे अर्थात् सन् १८७६ ई० में इस बोली के परम रसिक अतिगुणज्ञ प्रतिष्ठित विद्वान फ्रेडरिक पिनकाट महाशय ने इंगलिस्तान से इसे कुछ शोध करके छपवाया और अपनी भूमिका में इसकी भाषा की इतनी प्रशंसा की जितनी की कदाचित् वह योग्य न थी। और इंगलिस्तान के हिन्दी जाननेवालों ने उनके साथ सम्मति की। निदान इस पुस्तक को इंगलैंड में यहाँ तक आदर मिला कि हिंदुस्तान की सिविल सर्विस के परीक्षा ग्रथों में नियत हो गई।[२]'

---

१. बदरीनाथ भट्ट : 'सरस्वती', जून १९१५ ई०, पृ० ३२४।

२. श्रीकृष्णदास—'हमारी नाट्य परंपरा', पृ० १० पर उद्धृत।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त उद्धरण में नाटक के छपने और पाठ्यक्रम में लगने पर जो संतोष व्यक्त किया गया है, वही आगे चलकर प्रसाद के नाटकों की भी नियति बना। यही नहीं, आज भी महाविद्यालयों के अध्यापकों और छात्रों का हिन्दी के नाटक के नाम पर अधिकतर प्रसाद के नाटकों से ही संपर्क होता है।

७. १. १८ प्रसाद का आविर्भाव हिंदी नाट्य साहित्य में एक नया अध्याय जोड़ता है। प्रारम्भ में हिन्दी साहित्य जगत को प्रसाद के नाटकों से परिचित कराने का संपूर्ण श्रेय 'इंदु' को है। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता है कि यह भारतेंदु और प्रसाद के बीच की कड़ी बना। नाटचक्षेत्र में दोनों ही प्रतिभा का अप्रतिम योगदान है। दोनों से दो युग निर्मित हुए। एक ने हिंदी जगत को गद्य की एक विधा के रूप में नाटक का परिचय दिया तो दूसरे ने उसके संपूर्ण विकास का श्रेय लिया। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि दोनों ही युग के निर्माण का कार्यभार उठाया पत्र-पत्रिकाओं ने। प्रसाद की प्रतिभा के उन्नयन का श्रेय मिला 'इंदु' और 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' को, क्योंकि प्रसाद के प्रारम्भिक पाँच नाटक इन्हीं दोनों पत्रिकाओं में निकले।

७. १. १९ भारतेन्दु ने नाटच-शिल्प के क्षेत्र में प्राचीन पद्धतियों का यथार्थ की दृष्टि से मूल्यांकन किया। उन्होंने अपने समकालीन नाटककारों को संस्कृत नाटच-रूढ़ियों से मुक्त करके उनके हाथों विवेक का अस्त्र देते हुए कहा—

'अब नाटक में कहीं आशी: प्रभृति नाटचलंकार, कहीं प्रकटी, कहीं विलोमन, कहीं सफेट, कहीं पंचसंधि वा ऐसे अन्य विषयों की आवश्यकता नहीं रही। संस्कृत नाटक की भाँति इनका हिन्दी नाटक में अनुसंधान करना, वा किसी नाटकांग में इनको यत्नपूर्वक रखकर हिन्दी नाटक लिखना व्यर्थ है, क्योंकि प्राचीन लक्षण रखकर आधुनिक नाटकादि की शोभा संपादन करने से उल्टा फल होता है और यत्न व्यर्थ हो जाता है।'

७. १. २० इस प्रकार भारतेन्दु द्वारा दिशा निर्दिष्ट हुई और पूर्ण लाभ उठाया प्रसाद ने। 'सज्जन'[1] प्रसाद का प्रथम मौलिक एकांकी है। 'सज्जन' की कथा महाभारत से संबद्ध है जिसमें युधिष्ठिर की सज्जनता

---

१. 'इन्दु', फाल्गुन-ज्येष्ठ, सं० १९६७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का वर्णन है। युधिष्ठिर के उज्ज्वल चरित्र से कवि ने मानव जीवन के आदर्श की व्याख्या की है। नाटक में पाँच दृश्य हैं तथा प्राचीन नाट्य परम्परा के अनुसार नान्दीपाठ, मंगलाचरण, भरतवाक्य आदि हैं। पात्रों का संभाषण भी पद्यबद्ध है तथा कहीं कहीं लम्बे लम्बे स्वगत कथन भी हैं। इसमें प्राचीन तथा नवीन नाट्य-प्रणालियों का सम्मिश्रण किया गया है। इस एकांकी के द्वारा हमें उनके प्राचीन से अर्वाचीन की ओर उत्तरोत्तर विकास की प्रथम अवस्था का परिचय प्राप्त होता है। यद्यपि इसकी रचना संस्कृत तथा प्राचीन हिन्दी नाट्य शैली पर है, फिर भी कथोपकथन सादे और संक्षिप्त हैं। पात्रगण सारयुक्त वार्तालाप करते हैं। अभिनय की उद्भावना एवं सक्षिप्त कथोपकथनों के उपकरण आधुनिकता की सूचना इस प्रथम कृति में ही देने लगते हैं। उदीयमान प्रतिभा के बीज यहाँ दिखलाई देने लगे।

७. १. २१ 'प्रायश्चित्त'[१] छः छोटे छोटे दृश्यों से युक्त एक लघु नाटक है, जिसमें जयचन्द के कुचक्र के कारण पृथ्वीराज की मृत्यु की कथा है। कगार नदी के किनारे श्मशान भूमि में पृथ्वीराज की चिता देखकर जयचंद प्रसन्नता से पाशविक अट्टहास करता है किन्तु जब आकाश-वाणी द्वारा उसे ज्ञात होता है कि उसकी पुत्री संयोगिता भी पृथ्वीराज के साथ सती हो गई तब वह उसके प्रति किये गए घोर अन्याय की ग्लानि से भर जाता है। उसके प्रायश्चित्त का चित्रण ही यहाँ प्रमुख है क्योंकि अन्त में वह गंगा में कूद कर आत्महत्या कर लेता है। यह नाटक प्रसाद की राष्ट्रीय भावना से परिचालित है जिसे इतिहास से कुछ कथा-सूत्र लेकर कल्पना द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

'प्रायश्चित्त' का नाट्य-विधान पूर्णरूपेण विदेशी है। यह एक दुःखान्त नाटक है। सम्भवतः यह हिन्दी की प्रथम मौलिक त्रासदी है। इसमें न नान्दी है, न प्रस्तावना, न पद्यमय वार्तालाप, न संगीत और त्रासदी होने के कारण न अन्त में भरतवाक्य ही है। 'सज्जन' में किसी प्रकार की कोई विचारधारा नहीं है। प्रायश्चित्त में जीवन दर्शन के कुछ कण मिलने लगते हैं, जो लेखक के चिन्तनशीलता की ओर उन्मुख होने की सूचना देते हैं। यथा–

---

१. 'इन्दु', माघ सं० १६६९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जिस दिन से कोई जाति अपने आत्मगौरव का अपने शत्रु से बदला लेना भूल जाती है, उसी दिन उसका मरण हो जाता है।'

७. १. २२ नाटक विधान की दृष्टि से 'सज्जन' से 'प्रायश्चित्त' आगे बढ़ा है। इन दोनों नाटकों के अध्ययन से पता चलता है कि 'प्रसाद' के मस्तिष्क में दो विभिन्न नाट्य-विधानों का संघर्ष चल रहा था। बाद में इन्हीं के सम्मिलित रूप से प्रसाद की नाट्य-कला का विकास हुआ।

७. १. २३ 'करुणालय'[1] एक गीति नाट्य है। शिल्प की दृष्टि से हिन्दी में यह भी एक नया प्रयोग था। पश्चिम में डब्ल्यू० बी० यीट्स एवं टी० एस० इलियट को गीति नाट्य का नया निर्माता स्वीकार किया जाता है। इलियट ने काव्य को 'नाटक' का सर्वोत्कृष्ट माध्यम स्वीकार किया है। उनके विचार से जब तक नाटक में आन्तरिक यथार्थ का प्रकाशन नहीं होगा तबतक गीति-नाट्य अपनी पूर्णता पर नहीं पहुँच सकता। हिन्दी में प्रसाद के 'करुणालय' से यह परंपरा प्रारंभ होकर निराला के 'पंचवटी प्रसंग', उदयशंकर भट्ट की 'मत्स्यगंधा', 'राधा', 'विश्वामित्र', आदि से होती हुई 'अंधायुग', 'संशय की एक रात', 'एक कंठ विषपायी' की समृद्धि तक पहुँची है।

७. १. २४ 'करुणालय' की कथा पौराणिक आधार लिए हुए है। राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र न होने पर उसने वरुण के पास मनौती मानी थी कि अगर उसे पुत्र होगा तो वह उसे वरुण को बलिस्वरूप भेंट करेगा। आगे चलकर रोहित नामक पुत्र उत्पन्न होता है। बड़े होने तक राजा मनौती पूरी नहीं करता। रोहित को जब यह बात ज्ञात होती है तो वह वन में भाग जाता है। बाद में रोहित अजीगर्त से शुनःशेप को बलि देने के लिये खरीद लेता है। बलि-यज्ञ के समय विश्वामित्र उससे प्रार्थना करने के लिये कहते हैं तथा बाद में उसे बन्धन-मुक्त करके 'देवरात' नाम से अपना पुत्र मान लेते हैं। इस कथा का सम्बन्ध वैदिक युग से है। प्राचीन पौराणिक आख्यानों एवं संस्कृत साहित्य में प्रसाद की रुचि आरंभ से ही रही। प्रसाद एक आस्थावादी साहित्यकार थे। भारतीयता एवं प्राचीन संस्कृति के संदर्भ में नवीन विचारों का प्रतिपादन इनके भविष्य का प्रमुख

१– 'इन्दु', फरवरी, सन् १९१३ ई०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[library stamp]

उद्देश्य रहा। यहाँ प्रसाद ने पौराणिक कथावस्तु का उपयोग एक जीवन-दर्शन प्रस्तुत करने के लिये किया है। तत्कालीन युग में मानव मूल्यों तथा नैतिकता का विघटन हो रहा था, इसका प्रमाण हरिश्चन्द्र, वशिष्ठ, रोहित एवं अजीगर्त के चरित्र हैं, जिन्हें अन्त में करुणा दर्शन का समभागी बना लिया गया है। सभी पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार उच्चतर मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है।

७. १. २५ पात्रों में मानसिक संघर्ष भी दिखाने का प्रयास है, जो आगे चलकर पूर्ण कलात्मक अभिव्यक्ति के साथ उनके नाटकों में दिखाई देता है। राजा हरिश्चन्द्र ममता एवं कर्त्तव्य के द्वन्द्व में झूलते हुए एक ऐसे मानव के रूप में प्रस्तुत किए गये हैं जो प्रजात्मक होते हुए भी ममता में अन्धे होकर कर्त्तव्य को विस्मृत कर देते हैं। भावना एवं कर्त्तव्य का यह द्वन्द्व और परिपक्व होकर उनके नाटकों में दिखाई देता।

७. १. २६ कथानक में शिथिलता होते हुए भी कथा में अनेक मोड़ ऐसे भी हैं, जो उसे नाटकीयता प्रदान करने में समर्थ हैं। कथा में आकस्मिकता के तीन मुख्य क्षण आते हैं। पहला उस समय जब हरिश्चन्द्र को आकाशवाणी द्वारा उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाया जाता है। दूसरा रोहिताश्व को शुनःशेप की प्राप्ति और तीसरा विश्वामित्र का आगमन। इसमें जो अन्तिम मोड़ है वहाँ प्रसाद जी ने कई आकस्मिकताएँ लाकर कथा को दुःखान्त से सुखान्त में परिवर्तित कर दिया है और इस प्रकार 'करुणालय' में भावान्विति की स्थापना हो सकी है, जो गीतिनाट्य की सफलता के लिये अनिवार्य है।

७. १. २७ 'कल्याणी परिणय'[1] का विकसित रूप ही प्रसाद की सबसे प्रौढ़तम कृति 'चन्द्रगुप्त' है। यह नौ दृश्यों में लिखा गया एक छोटा सा नाटक है। यह नाटक चन्द्रगुप्त मौर्य और सिल्यूकस की पुत्री कल्याणी के प्रणय और परिणय की कथा है, जिसमें सिल्यूकस और चन्द्रगुप्त का युद्ध, सिल्यूकस की पराजय, विजित और विजेता में संधि, फलस्वरूप सिल्यूकस की कन्या कार्णेलिया एवं भारत सम्राट् चन्द्रगुप्त का कल्याणमय परिणय दिखाया गया है।

१– नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सन् १९१२ ई०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७. १. २८ 'कल्याणी परिणय' और 'चन्द्रगुप्त' की तुलना करने पर कहीं कहीं पदावली में भी पूर्णतया साम्य दिखलाई पड़ता है। चाणक्य विदेशी आक्रमणकारी सिल्यूकस को पराजित कर भारत और यूनान में मैत्री स्थापित करने का संकल्प कर रहा है। चन्द्रगुप्त भी अपने व्यक्तित्व के द्वारा सैन्य सचय करता है। और उसे युद्ध में विजयश्री के साथ-साथ जीवन सहचरी भी प्राप्त हो जाती है। आगे चलकर यही कथानक 'चन्द्रगुप्त' नाटक का अंश बन जाता है। इसके तीन गीत चन्द्रगुप्त में भी अत्यन्त कम परिवर्तन के साथ ले लिए गए हैं। यथा—

(१) 'कैसी कड़ी रूप की ज्वाला'
(२) 'बज रही वंशी आठो याम की'
(३) 'अली नहीं एक कली का'

७. १. २९ 'राजश्री' इतिहास प्रसिद्ध महाराजा हर्षवर्धन की बहन राजश्री के जीवन का चित्रण है। तीन अंकों के इस नाटक में प्रसाद की नाट्य-कला ने एक मार्ग अपनाने का निर्णय ले लिया प्रतीत होता है। यह पहला नाटक है जिसमें कथावस्तु अंकों में विभाजित हुई है। इसके पूर्व के सभी नाटकों में दृश्य ही दृश्य हैं। 'राजश्री' के आरम्भ में केवल नान्दी है, प्रस्तावना नहीं है। अन्त में भरतवाक्य है—

करुणा कादंबिनी बरसे।
दुख से जली हुई यह धरणी प्रमुदित हो सरसे।
प्रेम प्रचार रहे जगती-तल दया दान दरसे।
मिटे कलह शुभ शान्ति प्रकट हो अचर और चर से।

यह प्रसाद साहित्य का सर्वश्रेष्ठ भरत वाक्य है और उसके आदर्शों का पूर्ण रूप से निरूपण करता है। इसमें यत्र-तत्र काव्यकलियाँ एवं विचार कण भी आए हैं। राजश्री देवदत्त से कहती है—

'हरिणी को बाण-विद्ध करके अहेरी पूछता है—'तुम्हें चोट तो नहीं लगी ? अधखिली वसन्त की कली को जलती हुई धूल में पटककर गर्मी का अंधड चिल्लाकर पूछता है—'तुम कैसी हो ?'—यह अंश पर्याप्त काव्यमय है।

१—'इन्दु', सन् १९१४।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाणिनि-कन्या-महाविद्यालय लिपी भारती पुस्तकालय 1244

७. १. ३० प्रसाद ने अब जीवन पर विचार करना आरम्भ कर दिया। समाज की अव्यवस्था पर निम्न अंश अत्यन्त प्रबल प्रकाश डालता है—

'जिनके पाप का कटोरा भरा हुआ छलक रहा है, वे ही समाज के नेता हैं। जिनके सर्वस्व-हरणकारी करों से कितनों की पूर्णाहुति हो चुकी है, वे ही मान्य महाजन हैं। जिनके दंडनीय कार्यों का पुरस्कार निर्धारण करने में परमात्मा को भी समय लगे, वे ही दूसरों के दण्ड विधायक हैं।'

७. १. ३१ यद्यपि 'सज्जन' में भी परिहास है, परन्तु 'राजश्री' ही में पहली बार प्रसाद के हास्य का सुचारु रूप से प्रारम्भ होता है। इस हास्य में परम्परा का ही पालन नहीं हुआ है, यह जीवन का अंग होकर आया है। यह शिष्ट एवं साहित्यिक है—

'मधुकर—आप इतनी रात को अतिथि।

विकट घोष—में शीघ्र चला जाऊँगा।

मधुकर—हाँ, अधिक कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। आपको दूर जाना भी होगा?

विकट घोष—चुप रहो, पहले यह तो पूछा ही नहीं कि तुम क्यों आये थे?

मधुकर—आप जाइए, मैं पूछ लूंगा। इधर (राह दिखाता है)।

विकट घोष—मुझे तुम्हारी महारानी से मिलना है।

मधुकर—तब तुमको उस ठाट से आना चाहिए था। यह भयानक दाढ़ी और बिच्छू की दुम—नहीं नहीं, डंक-सी-मूँछ। उहुँ। आप तनिक भी सहृदय नहीं। इसे कुछ नीचे कीजिए।'

७. १. ३२ यद्यपि ये पाँचों नाटक 'प्रसाद' के आरम्भिक प्रयोग मात्र हैं, पर उनके विकास के बीज इनमें ही निहित हैं। डा० वच्चन सिंह के अनुसार 'आगे चलकर इनकी कृतियों में जिस आनन्दवाद, जीवन के प्रति एक अडिग आस्था, आसुरी आचार के प्रति घृणा, प्रेम की शुभ ज्योति आदि के जो रमणीय चित्र मिलते हैं उनका आदि उत्स यहीं देखा जा सकता है।'

७. १. ३३ इस प्रकार हम देखते हैं कि इस काल की पत्र-पत्रिकाओं द्वारा नाटकों में मनोरंजन के साथ सामाजिक सोद्देश्यता की भावना आई। इन पत्रिकाओं में समय-समय पर निकलने वाले लेखों के द्वारा लोगों को पारसी थिएटर की कुत्सित रुचि का ज्ञान हुआ और उन्होंने ऐसी नाटक मंडलियों की स्थापना पर जोर दिया जिससे जनता की रुचि के परिष्कार के साथ उसका मनोरंजन भी होता रहे। तीसरा महत्वपूर्ण कार्य हुआ भारतेन्दु से प्रसाद तक नाटकों के शिल्प-विकास में सतत योगदान का।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टम अध्याय

उपसंहार

८.१.१ उपलब्धियों की दृष्टि से सन् १९०० से १९२० तक का काल हिन्दी साहित्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस युग में कविता, कहानी, निबन्ध रेखाचित्र, समालोचना, उपन्यास तथा नाटक सभी साहित्य विधाओं का विकास हुआ। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने इन विधाओं के विकास के लिए ठोस पृष्ठभूमि का कार्य किया। अबतक मह मान्यता थी कि इस काल में साहित्य की सभी विधाओं का विकास आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी सम्पादित 'सरस्वती' के द्वारा हुआ है। यह स्वीकृत तथ्य है कि 'सरस्वती' उस काल की प्रमुख पत्रिका थी, लेकिन 'नवनीत,' 'इन्दु', 'प्रभा', 'मर्यादा,' 'चाँद,' 'स्त्री-दर्पण', 'हिन्दीप्रदीप, 'भारतमित्र' आदि अन्य पत्रिकाओं के साहित्यिक योग-दान की भी अवहेलना नहीं की जा सकती। इनमें से कई 'सरस्वती' के समान ही विविध विषय समन्वित पत्रिकाएँ थीं। दूसरा वर्ग विशिष्टीकरण वाली पत्रिकाओं का था। 'उपन्यास' (१९०१), 'हिन्दी नाविल' (१९०१), 'उपन्यास लहरी' (१९०२), 'उपन्यास और 'उपन्यास प्रचार' (१९१२) आदि विशिष्टी-करण की प्रवृत्तिवाली पत्रिकाएँ केवल एक ही साहित्य विधा के लिए पाठक तैयार कर रही थीं। 'नागरीप्रचारणी पत्रिका' मुख्यतः अन्वेषण प्रधान पत्रिका थी। विशिष्टीकरण की प्रवृत्ति वाली इन पत्रिकाओं को अपने क्षेत्र में मुक्त होकर कार्य करने का अवसर मिला। दूसरी ओर विशिष्ट सिद्धांत को लेकर चलने वाली पत्रिकाएँ थीं; इनमें 'इन्दु' और 'भारतमित्र' का उल्लेखनीय स्थान है। द्विवेदी जी के सम्पादन में 'सरस्वती' पूर्ण रूप से नैतिकता-वादी पत्रिका बन चुकी थी। एक तरह से यह पत्रिका साहित्य प्रकाशन और साहित्यिक अनुशासन दोनों दायित्वों को निभा रही थी। भाषा की दृष्टि से भी इसके बन्धन बड़े कड़े थे। 'इन्दु' ने 'द्विवेदी जी' की नैतिकता के विपरीत मुक्त रचनात्मकता को महत्व दिया। दरअसल इस पत्रिका ने छायावाद विरोधियों के खिलाफ एक तरह की साहित्यिक मोर्चेबन्दी की। व्यक्तिवादी साहित्य के प्रचार प्रसार में 'इन्दु' की भूमिका प्रशंसनीय है।

८.१.२ 'सरस्वती' के द्वारा खड़ीबोली काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई। प्रारम्भ में यह भाषा अव्यवस्थित और भावों को वहन करने में अक्षम थी, पर धीरे-धीरे द्विवेदी जी के प्रयत्नों से इसका परिष्कार हुआ। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जब खड़ीबोली का विस्तार हुआ तो काव्य के साथ-साथ गद्य की भी निबन्ध, नाटक, उपन्यास, कहानी, आलोचना जैसी विधाएँ साहित्यिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने लगीं। वास्तव में 'सरस्वती' खड़ीबोली को कालभाव की महत्ता दिलाने के साथ ही गद्य-विधाओं के उन्नयन का भी कार्य कर रही थी।

इस प्रकार खड़ीबोली का क्षेत्र बढ़ता जा रहा था। ब्रजभाषा के पुराने पड़ने और साहित्यिक क्षेत्र से हटने के लक्षण द्विवेदी युग में स्पष्ट हो गए थे।

८.१.३ इस काल में काव्य के क्षेत्र में मानवतावादी दृष्टि और नवीन जीवन मूल्यों के प्रति जिज्ञासा बढ़ी। दलित और उपेक्षित वर्ग के प्रति नयी संवेदना के उद्भव के कारण साहित्यिक दृष्टि में परिवर्तन आया। आकस्मिक नहीं था कि निरन्तर शोषण के बीच जीवनयापन करनेवाले अशिक्षित किसानों और श्रमिकों के जीवन, हिन्दी कवियों के वर्णन विषय बन गए। कवियों का ध्यान समाज की समस्याओं की ओर भी गया। समाज में प्रचलित वर्ग भेद तथा नारी पर हो रहे अत्याचार का कवियों ने खुलकर विरोध किया। उर्मिला और कर्ण जैसे पुरामिथकों के चरित्रों को नयी संवेदना के परिप्रेक्ष्य में करना परिवर्तमान अन्तर्दृष्टि का ही परिणाम था।

८.१.४ इस युग में कवियों की सीमित हृदय परिधि का विस्तार भी हुआ। इन्होंने स्थूल से सूक्ष्म की ओर उठने के प्रयत्न में प्रेम और सौन्दर्य की वृत्तियों का परिष्कार किया। आदिकाल से उद्दीपन के रूप में प्रयुक्त प्रकृति को भी आलम्बन के रूप में चित्रित किया गया। श्रीधर पाठक, हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी, गुप्त जी, प्रसाद आदि अनेक कवियों ने प्रकृति प्रेम के आकर्षण से अभिभूत होकर उससे रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया। ऐसे स्थान पर मानव हृदय का अनुराग प्रकृति को आत्मीय बनाने में संलग्न हो जाता है। प्रकृति के साथ साहचर्य की यही भावना आगे चलकर छायावाद युग के कवियों की मूल भावना बन गई। छायावाद युग की सारी सम्भावनाएँ इस युग की उत्पत्ति हैं।

८.१.५ गद्य क्षेत्र में गुलेरी, प्रेमचन्द तथा प्रसाद की कहानियों के प्रादुः

१३

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्भाव के पूर्व कहानी किस प्रकार की रचना प्रक्रिया से गुजरी यह एक रोचक विषय है। इसका अनुशीलन आलोच्य काल की पत्रिकाओं को देखने से आसानी से होता है। हिन्दी कहानी–शिल्प का पहला लक्ष्य करने योग्य रूप हमें सन् १६०० ई० की 'सरस्वती' में निकली किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' में मिलता है। यह लक्ष्य करने की बात है कि कथानक या किस्से को कहानीकला के रूप में विकसित करने का कार्य इसी काल की देन है। प्रारम्भ में लेखक इतिवृत्तात्मक ढंग से कहानी लिखता था, जिसमें चरित्र का कोई स्थान नहीं था। कथानक ही प्रमुख था। वास्तव में शिल्प की दृष्टि से अभी तक कहानी में प्रयोग ही हो रहे थे पर इन प्रयोगों ने आगे आनेवाली कहानियों के लिए दिशा दी। रचनात्मकता के विकास की दृष्टि से देखें तो 'नवनीत' में रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे कृत 'केवल कर्तव्य के लिए' में व्यवहृत चित्रण प्रसाद की कहानियों की रचनाशैली का मार्गदर्शन करता हुआ जान पड़ता है। प्रसाद की प्रथम कहानी 'ग्राम' का वस्तु-चित्रण बहुत कुछ इसी कहानी की अनुकृति है। इसी प्रकार 'मित्र' में छपी 'झाँसी की रानी' तथा 'मर्यादा' में बद्रीनाथ भट्ट कृत 'शाहजहाँ का अंतिम काल' के कथोपकथन क्रमशः वृन्दावनलाल वर्मा तथा गुलेरी द्वारा कुछ शब्दों के परिवर्तन के साथ ज्यों के त्यों अपना लिए गए हैं। वास्तव में निर्माणाधीन कला के सारे लक्षण इस काल की पत्रिकाओं में बिखरे हुए हैं। पत्रिकाओं की साक्षी से यह समझ लेना आसान है कि भाषा और साहित्यविधाओं में परिवर्तन के सारे संधिकालीन स्तर इसी युग की उपलब्धियाँ हैं।

८.१.६ निबन्ध के क्षेत्र में द्विवेदी युग के प्रारम्भिक चरण में हम भारतेन्दु युग की अनेक विशेषताओं को सक्रिय पाते हैं। भारतेन्दु युग में उद्भूत निबन्ध साहित्य को इस काल में परिपक्वता मिली। वस्तुतः निबन्ध पत्रकारिता के बहुत निकट है। व्यक्तित्व और निजीपन दोनों आवश्यक तत्व निबन्ध को साहित्यिक स्तर देते हैं। इस युग की निबन्ध रचना के प्रसंग में यह बात विशेष रूप से दिखाई देती है कि उसमें क्रमशः समाचार तत्व की कमी होने लगी थी। जहाँ भारतेन्दु युग की विचारधारा का प्रमुख विषय सामाजिक था वहाँ इस काल के निबन्धकारों का विषय साहित्यिक होता जा रहा था। इस प्रसंग में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पद्मसिंह शर्मा, श्यामसुन्दर दास, मिश्रबंधु, शिवपूजन सहाय और हरिऔध आदि की निबन्ध रचना का उल्लेख किया जा सकता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८. १. ७ पत्रिकाओं द्वारा बहुमुखी विकास प्रक्रिया में अनेक विधाओं का जन्म ही हुआ, जिनमें रेखाचित्र भी एक है; यह निबन्ध की सीमारेखा को छूता हुआ एक नया साहित्यिक रूप है। इतिहासकारों ने 'मर्यादा' (सन् १९१८ ई०) में प्रकाशित बनारसीदास चतुर्वेदी के 'औरंगजेब' शीर्षक रेखा-चित्र को हिन्दी का प्रथम रेखाचित्र माना है। पर किसी भी विधा का विकास समय की जटिल प्रक्रिया के भीतर से होता है। वास्तव में रेखाचित्र का लक्षण 'भारतमित्र' में प्रकाशित बालमुकुन्द गुप्त के 'शिवशंभु के चिट्ठे' में ही स्पष्ट होने लगा था।

८. १. ८ इन पत्रिकाओं के माध्यम से सर्वप्रथम पारंपरिक विषयों, रूढ़ियों और अंधविश्वासों का उच्छेदन कर जीवन के साथ समीक्षा का अविच्छेद्य संबंध स्थापित हुआ। भारतेन्दु युग में तीक्ष्ण व्यंग्यात्मकता के साथ सीधे संबोधित करने की प्रवृत्ति थी। आलोच्यकाल में समीक्षा का रूप परिवर्तित हुआ, और सैद्धांतिक आलोचना के साथ ही व्यावहारिक आलोचना का भी पूर्ण विकास हुआ। भारतेन्दु युग के ठीक बाद जिन प्रतिभाओं ने हिन्दी आलोचना को समृद्ध करने का प्रयास किया उनमें पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, पं० गोविन्द नारायण मिश्र, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, बाबू श्यामसुंदर दास, मिश्रबन्धु आदि प्रमुख हैं। ये विद्वान् भारतेन्दु युग के संस्कारों में पले थे और क्रमशः अपने युग के अनुरूप भारतेन्दु युग की विरासत का विकास कर रहे थे। परिवर्तन-कालीन साहित्य में समीक्षा का दायित्व बहुत बढ़ जाता है। वह साहित्य की परम्परा का मूल्यांकन करती हुई तत्कालीन स्थिति के अनुरूप उसका रूप निर्धारित करती है। इस युग में साहित्यालोचन को सामान्य लोगों तक पहुँचाने के लिये तथा जनता की अभिरुचि जगाने के लिये सिद्धांत की अपेक्षा विश्लेषण को अधिक प्रमुखता दी गई। समीक्षा का उद्देश्य साहित्य की उन्नति, उपयोगिता तथा दिशा निर्देशन हो गया। सामाजिकता की इस स्वीकृति के कारण रस को कसौटी मान लिया गया। साहित्य के लिये रस अनिवार्य बन गया, जिससे काव्य सामान्य जनता के स्तर पर आया।

८. १. ९ आलोच्यकाल में विशिष्टीकरण की प्रकृतिवाली पत्रिकाओं का भी प्रकाशन होता था। 'उपन्यास' ऐसी ही पत्रिका थी। इसके अतिरिक्त विविध विषय समन्वित पत्रिकाओं में भी यदाकदा उपन्यास निकलते थे, उपन्यास अपने आकार के कारण पत्रिकाओं के लिए उपयुक्त नहीं थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन पाठकों में उपन्यास के प्रति आकर्षण था। यह पाठक वर्ग 'कथा' की दुर्दमनीय प्यास लेकर सामने आ रहा था। इसके मानस में एक ओर 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी', 'किस्सा तोता मैना', 'सारंगा सदावृज', 'तिलिस्म-ए-होशरुबा' आदि आख्यान तरंगें लेते थे तो दूसरी ओर सामाजिक पत्रों की बाढ़ के कारण समाचार चेतना भी उद्वेलनशील हो उठी थी। इस वर्ग में किसी और बात से अधिक घटनाओं की आनुक्रमिकता के प्रति उत्सुकता थी। 'फिर क्या हुआ' के सामने वह 'क्यों' और 'कैसे' पर अधिक ध्यान नहीं देना चाहता था। निरन्तर वर्धमान पाठक की इस मनोरंजन की प्यास को बुझाने के लिये पर्याप्त साहित्य का निर्माण होना ही था। इसीलिए इस युग में मनोरंजक साहित्य के रूप में तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों की एक बड़ी संख्या सामने आ गई। सामाजिक प्रश्नों को लेकर लिखे गए उपन्यासों का प्राधान्य बाद में हुआ। सामाजिक उपन्यासों में प्रामाणिकता और उपयोगिता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थी परन्तु वे उतने रोचक और कुतूहलवर्धक नहीं थे। तत्कालीन सुधार भावना के कारण आचार और नैतिकता जैसे समकालीन मूल्य तत्कालीन मनोरंजक उपन्यासों में भी मिलते हैं। देवकीनंदन खत्री सब पात्रों से यथासमय संध्या तर्पण कराते हैं और अवसर पड़ने पर पूजा प्रचार भी। उनके ऐयारों की अपनी आचार संहिता है जिसका वे सावधानी से पालन करते हैं। कई ऐयार किसी अकेले ऐयार पर आक्रमण नहीं करते, पकड़े जाने पर जान से नहीं मारते। खत्री जी विशेष रूप से वासनापूर्ण चित्रणों से बचते हैं। कहा जा सकता है कि जहाँ उस युग के सामाजिक उपन्यास तत्कालीन सामाजिक सोद्देश्यता को प्रतिबिम्बित करते हैं वहीं तिलिस्मी उपन्यासों में तत्कालीन समाज की रुचियाँ प्रतिबिम्बित हैं।

८. १. १० नाटक रचना के क्षेत्र में द्विवेदी युग में मौलिक रचनाओं का अनुपात अपेक्षया कम था। अंग्रेजी और बंगला से अनुवाद करने की प्रवृत्ति अधिक थी। इस काल की सबसे महत्वपूर्ण देन यह थी कि पारसी रंगमंच के लिए नाटक लिखनेवालों में अचानक एक ऐसे वर्ग का उदय हो गया जो मनोरंजन के साथ सामाजिक उद्देश्य को भी मान्यता देता था। नाटककारों की दृष्टि से नाटकों का प्रणयन किया गया। संस्कृतकालीन कठोर नियन्त्रण शिथिल हुए और नये ढंग के नाटकों का आविर्भाव हुआ। शालाओं में अभिनय योग्य नाटक, एकांकी, संवादों, प्रहसनों और दृश्यों का विशेष रूप से प्रणयन हुआ। अन्य विधाओं के समान ही नाटकों के विकास के लक्षण पत्रिकाओं में मिलते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पत्रिकाओं में आए हुए नाटकों में अखौरी कृष्णप्रकाश सिंह का 'पन्ना'[1] नाटक विशेष उल्लेख योग्य है। इस नाटक का 'प्रसाद' के ऊपर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। 'प्रसाद' के इस समय तक कई नाटक 'सज्जन', 'प्रायश्चित्त' 'करुणालय', 'कल्याणी परिणय', 'राजश्री' आदि 'इन्दु' के ही पृष्ठों पर आ चुके थे। 'करुणालय' तथा 'कल्याणी परिणय' में कहीं कहीं मानसिक संघर्ष दिखाया भी गया पर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में वाह्य और आंतरिक द्वन्द का जैसा सुन्दर चित्रण 'पन्ना' में हुआ उसका 'प्रसाद' की नाट्य शैली के विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। पात्रों की मनःस्थिति पर प्रकाश डालने वाले 'पन्ना' के गीत भी आगे विकसित होनेवाली 'प्रसाद' की कला के आधार वने।

८.१.११ नाटक की दृष्टि से इस युग का सवसे वड़ा योगदान भारतेन्दु के प्रभाव की समाप्ति तथा प्रसाद के आविर्भाव में है। प्रसाद के प्रथम नाटक में ही प्रसाद की उदीयमान प्रतिभा के वीज दिखलाई देने लगे थे। शैली की दृष्टि से प्रसाद ने अनेक नये प्रयोग किए। नाटक की कथावस्तु में अंक-विभाजन का कार्य प्रसाद ने ही प्रारंभ किया। नाटकों में प्रथमतः अंतर्द्वन्द का समावेश, परिष्कृत हास्य तथा पाश्चात्य तथा प्राचीन भारतीय नाट्य कल्प का समन्वय स्थापित करने का कार्य भी प्रसाद ने 'सज्जन' से ही प्रारंभ कर दिया था। इसके उपरांत इनके 'प्रायश्चित्त', 'करुणालय', 'कल्याणी परिणय', 'राजश्री' तथा कृष्णप्रसाद अखौरी कृत 'पन्ना' आदि सभी में इसी प्रकार का समन्वय मिलने लगा। इस प्रकार इस काल की पत्र-पत्रिकाओं में प्रयोग के विभिन्न सोपानों को पार करते हुए 'प्रसाद' ने जिस मौलिक मार्ग का अन्वेषण किया उसका उत्कृष्ट रूप हमें उनके बाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त' आदि में मिला।

---

१. 'इन्दु', मई सन् १९१५, पृ० ४६२।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट

सहायक साहित्य

पत्र-पत्रिकाएँ

१—अबला हितकारक—१९१२ ई०, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
२—अभ्युदय —१९०६–७–८ ई०, कलाभवन, बी० एच० यू०, वाराणसी।
३—आर्य वनिता —१९०६ ई०, ,, ,, ,,
४—आनन्दकादम्बिनी—१९०४, ६,७,८ ,, ,, ,,
५—आर्यदर्पण —१९०५ ई० ,, ,, ,,
६—आज —१९२० ई० ,, ,, ,,
७—औदुम्वर —१९१२–१३ ई० ब्रजभूषणदास जी, बुलानाला, वाराणसी।
८—इन्दु —१९१० से १५ ई० तक, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
९—उपन्यासवहार —१९०७ ई०, कलाभवन, बी० एच० यू०, वाराणसी।
१०—उषा —१९१४,१५ ई० नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
११—उपन्यास सागर—१९०३,४,५ ई० नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
१२—उदय —१९०६ ई०, कलाभवन, बी० एच० यू०, वाराणसी।
१३—कमला —१९०७, १९१६ ई० ब्रजभूषणदास जी, बुलानाला वाराणसी।
१४—कलवार क्षत्रिय मित्र—१९१८–१९ ई०, भारती भवन, इलाहाबाद।
१५—कन्या सर्वस्व —१९१३ ई० नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
१६—कलाकुशल —१९०६ ,, ,, ,,
१७—कवीन्द्र वाटिका—१९०७–८ ,, ,, ,,
१८—किसानोपकारक—१९१९–२० ,, ,, ,,
१९—कन्या मनोरजन—१९१४ से १९१९ ई० तक ,, ,,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

१२४५

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२०–श्रीकृष्ण चैतन्य चन्द्रिका—१६११ ई० । जभूषणदास जी, बुलानाला, वाराणसी ।

२१–गृहलक्ष्मी —१६११, १२, १३, १४ ई० नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

२२–गृहस्थ —१६१५-१६ ई० नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

२३–चाँद —१६१०, ११, १२, १३ तथा १६१६ ई० ,, ,,

२४–चित्रमय जगत —१६२० ई०, ब्रजभूषणदास जी, बुलानाला, वाराणसी

२५–छत्तीसगढ़ मित्र —१६०० तथा १६०२ ई० ,, ,,

२६–जैन पथ प्रदर्शक—१६२० ई० ,, ,, ,,

२७–देवनागर —१६०५ ई०, वड़ा वजार पुस्तकालय, कलकत्ता ।

२८–देहाती —१६११,१३ ई०, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

२६–धर्माभ्युदय —१६१८,१६ ई०, भारती भवन, इलाहावाद ।

३०–नृसिंह —१६०७ ई०, वड़ा वाजार पुस्तकालय, कलकत्ता ।

३१–नवनीत —१६१३, १४, १५ ई०, ब्रजभूषणदास जी, बुलानाला, वाराणसी ।

३२–निगमागम चन्द्रिका–१६०२,१७ ई०, कलाभवन, वी०एच०यू०, वाराणसी ।

३३–नागरीप्रचारिणी पत्रिका–१६१० से १६१६ तक, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

३४–नागरी हितैषिणी पत्रिका–१६०६ ई०, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

३५– पाटलिपुत्र —१६१४ ई०, कलाभवन, वी०एच०यू०, वाराणसी ।

३६–प्रभा —१६१३,१४, १५, २० ई०, श्यामसुन्दरदास खत्री, कलकत्ता ।

३७–प्रतिभा —१६१८ ई०, ब्रजभूषणदास जी, वुलानाला, वाराणसी ।

३८–प्रताप —१६१४–१५ ई०,कलाभवन, वी०एच०यू०, वाराणसी ।

३६–परोपकारी —१६०८,१६०६ ई०, नागरीप्रचारिणी सभा,वाराणसी ।

४०–प्रियम्वदा —१६०६, १४ ई० ,, ,, ,,

४१–वाल प्रभाकर --१६०७,८,१० ई० ,, ,, ,,

४२–ब्राह्मण सर्वस्व —-१६०५,६,७,१२,१४,१५ ई०, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

४३–बालहितैषी —-१६११,१२,१३ व १५ ई०, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४४–भास्कर —१९११ से १९२० तक ,, ,,
४५–भारती सर्वस्व —१९०५ ई०, कला भवन, बी०एच०यू०, वाराणसी
४६–भारत भानु —१९०६ ई० ,, ,, ,,
४७–भारतोदय —१९११,१३, १९ ई०; भारती भवन, इलाहाबाद।
४८–भारतभगिनी —१९०५ ई०, ब्रजभूषणदास जी, बुलानाला, वाराणसी
४९–भारतजीवन —१९०६ ई० भारती भवन, इलाहाबाद।
५०–भारतमित्र —१९०३,४,५, ६ ई०, बड़ाबाजार पुस्तकालय, कलकत्ता।
५१–भाषाचन्द्रिका —१९०० ई०, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
५२–भारतेन्दु —१९०५,६,८ ई०, कलाभवन, बी०एच०यू० वाराणसी।
५३–मर्यादा —१९११ से १९२० ई०, बड़ावाजार पुस्तकालय, कलकत्ता।
५४–मनोरमा —१९१२, १३, १४, १८ नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
५५–मनोरंजन —१९१३,१४,१५,१६ ,, ,, ,,
५६–माधुरी —१९१३ ई०, ,, ,, ,,
५७–मित्र —१९०६,१५ ई०, कलाभवन, बी० एच० यू०, वाराणसी।
५८–भारतेन्दु —१९०९ ई० ,, ,, ,,
५९–राजपूत —१९०१,२,३,८ बड़ाबाजार पुस्तकालय, कलकत्ता।
६०–रसिक रहस्य —१९०७, ८, ९, १० नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वाराणसी।
६१–ललिता —१९१८ ई०, ब्रजभूषणदासजी, बुलानाला, वाराणसी।
६२–लक्ष्मी —१९०८ से १९२० तक, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
६३–वैष्णवसर्वस्व —१९१५ ई०, कलाभवन, बी०एच०यू०, वाराणसी।
६४–वैश्योपकारक —१९०५,६ ई०, बड़ाबाजार पुस्तकालय, कलकत्ता।
६५–विश्वमित्र —१९१५ ई० ,, ,, ,,
६६–सरस्वती —१९०० से १९२० ई०, कलाभवन, बी० एच० यू०, वाराणसी।
६७–स्वदेश बान्धव —१९०५, १७ ई०, बड़ा बाजार पुस्तकालय, कलकत्ता।
६८–समालोचक —१९०२ ई०, कलाभवन, बी० एच० यू०, वाराणसी।
६९–स्त्रीधर्मशिक्षक —१९०३,९,१०,१९ नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७०–सारस्वत खत्री सेवक—१९१४,१७,१८,१० ई०, बड़ाबाज़ार पुस्तकालय।
७१–साधु —भारतीभवन, इलाहाबाद।
७२–सुदर्शन — " "
७३–सुवर्णमाला —१९१५ ई०, कला भवन, बी० एच० यू०, वाराणसी।
७४–हिन्दी प्रदीप —१९०१ से १९०७ ई०, भारती भवन, इलाहाबाद।
७५–हितवार्ता — " "
७६–हिंदी बंगवासी— " "
७७–हिन्दी ग्रंथमाला —१९०६ ई० " "
७८–हिन्दी केसरी —१९०७ ई०, कलाभवन, बी एच० यू०, वाराणसी।
७९–हरिश्चन्द्र चन्द्रिका—१९०७ ई० " " "
८०–क्षत्रिय हितकारिणी—१९१८,१९ ई०, भारती भवन, इलाहाबाद।
८१–क्षत्रिय हितकारी —१९१५,१७,१८,२० " "
८२–ज्ञानशक्ति —१९२० ई०, व्रजभूषणदास जी, बुलानाला, वाराणसी।

सहायक पुस्तकें

१–हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास–डा० प्रतापनारायण टंडन।
२–हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास–डा० लक्ष्मीनारायण लाल।
३–महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग–डा० उदयभानु सिंह।
४–द्विवेदीयुगीन हिन्दी उपन्यास–डा० शारदा अग्रवाल।
५–आज की हिन्दी कहानी : विचार और प्रतिक्रिया–मधुरेश।
६–हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास –डा०सुरेश सिनहा।
७–आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका–डा० शम्भुनाथ पांडेय।
८–The Rise and Growth of Hindi Journalism, Ram Ratan Bhatnagar.
९–साहित्य निबंध –डा० गणपति चन्द्र गुप्त।
१०–हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ–शिवकुमार शर्मा।
११–समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ–डा० प्रतापनारायण टंडन।
१२–आधुनिक हिन्दी साहित्य–लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।
१३–हिन्दी रेखाचित्र—सिद्धांत और विकास–डा० मक्खनलाल शर्मा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४–The History of Literature : Hudson.
१५–हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद–डा० त्रिभुवन सिंह।
१६–हिन्दी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
१७–हिन्दी साहित्य–डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।
१८–आलोचना : इतिहास और सिद्धान्त–एस० पी० खत्री।
१९–आधुनिक साहित्य–नन्ददुलारे वाजपेयी।
२०–बीसवीं शताब्दी– ,, ,,
२१–आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास–डा० कृष्णलाल।
२२–नई समीक्षा–अमृतराय।
२३–काव्य और कला तथा अन्य निबंध–जयशंकर प्रसाद।
२४–हिंदी उपन्यास–शिवनारायण श्रीवास्तव।
२५–आधुनिक कथासाहित्य–श्री गंगा प्रसाद पांडेय।
२६–हिंदी पत्रकारिता–डा० कृष्णबिहारी मिश्र।
२७–हिंदी साहित्य––परिवर्तन के सौ वर्ष–ओंकार नाथ श्रीवास्तव।
२८–समाचारपत्रों का इतिहास–अम्बिका प्रसाद वाजपेयी।
२९–विशाल भारत–सन् १९३४–ई०।
३०–हिंदी का सामयिक साहित्य–आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र।
३१–अतीत के चल चित्र–महादेवी वर्मा।
३२–भारत वर्ष–सन् १८८२।
३३–कविवचन सुधा–सन् १८७४।
३४–हरिश्चन्द्र चंद्रिका–१८७६ ई०।
३५–हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास–राम बहोरी शुक्ल।
३६–हिंदी साहित्य का इतिहास–नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।
३७–द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ।
३८–सरस्वती (हीरक जयंती अंक)।
३९–हिंदी समाचारपत्र निर्देशिका–श्री वेंकटलाल ओझा।
४०–पत्र और पत्रकार–कमलापति त्रिपाठी।
४१–British Paramountsy and Indian Renaissance : Edition, Dr. B.C. Majumdar.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1244

विषय.............

पुस्तक सं०.............

भारती पुस्तकालय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

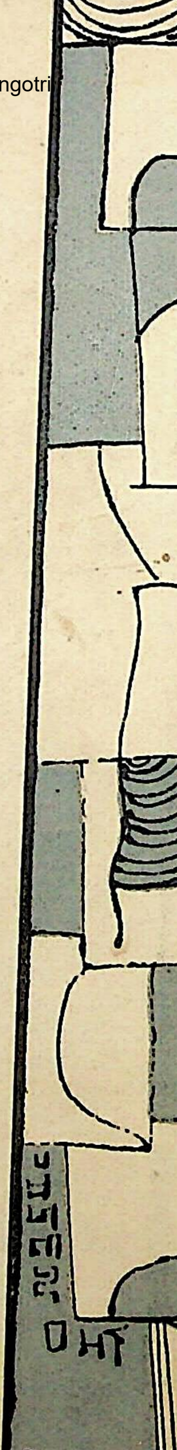

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.